

कृषि-कोश

प्रथम खण्ड

('अ' से 'घ' तक)



सम्पादक

डॉ० विश्वनाथप्रसाद

अनुसन्धान-सहायक

श्री श्रुतिदेव शास्त्री : श्री राधावल्लभ शर्मा

कृषिकोश

[भाषाविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार बिहारी बोलियों के विविध क्षेत्रों से संगृहीत जन-समाज में प्रचलित कृषि-सम्बन्धी शब्दों का उनके स्थानीय तथा वैयुत्पत्तिक पर्याय-सहित प्रामाणिक सचित्र अभिधान]

प्रथम खण्ड

['अ' से 'ब' तक]

सम्पादक

डॉक्टर विश्वनाथ प्रसाद

अनुसन्धान-सहायक

श्रीश्रुतिदेवशास्त्री : श्रीराधावल्लभ शर्मा



बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना-४

© बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

प्रकाशक : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग
सैदपुर, पटना - ८०० ००४

द्वितीय संस्करण : विक्रमाब्द २०५७, ई० सन् २००१

मूल्य : १२५.०० रुपये

मुद्रक : इन्द्रप्रस्थ इन्टरनेशनल
द्वारा तरुण प्रिन्टर्स, शाहदरा, दिल्ली-३२

द्वितीय संस्करण की भूमिका

किसी भी भाषा की जीवंतता उसके संवर्द्धनशील शब्दकोश की संपन्नता से निर्धारित होती है। इसके अनेक स्रोतों में सबसे प्रमुख स्रोत है आंचलिक शब्द-स्रोत।

यह सोचते हुए तकलीफ होती है कि शहरीकरण और प्रौद्योगिक विकास की अंधी दौड़ में अपनी-अपनी बोलियों से, अपने-अपने लोकगीतों और संस्कार-गीतों से हमारी नयी पीढ़ी का संपर्क टूट रहा है।

इसका जो दुखद परिणाम है वह है : हिंदीभाषा में आंचलिक शब्दों का अवरुद्ध प्रवाह, गत्यवरोध और इनके प्रति दयनीय उदासीनता।

ऐसी स्थिति में **कृषिकोश**— जैसे शब्दशोधक ग्रंथ का महत्त्व असंदिग्ध रूप से बढ़ जाता है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने सामूहिक प्रयास और कठिन परिश्रम से कृषिकोश तैयार करवाया था। बिहार की क्षेत्रीय बोलियों में कृषि-संस्कृति में प्रचलित (और अब लगभग विस्मृत) शब्दों का प्रस्तुत कोश परिषद् के शोधकार्यों में उल्लेखनीय माना जाता है।

कृषिकोश के दो खंड क्रमशः प्रकाशित किये गये थे। प्रस्तुत प्रथम खंड में 'अ' से 'घ' तक के शब्द गृहीत हुए हैं। वर्णमाला के शेष शब्द द्वितीय खंड में समाहित हैं।

आशा है, ग्रामीण अंचलों में प्रचलित शब्दों के अर्थ और तत्संबंधी विमर्श की जब भी अपेक्षा होगी, प्रस्तुत कोश निश्चय ही उसमें सहायक होगा।

रामधारी सिंह दिवाकर
(निदेशक)

दीपोत्सव
विक्रम सं० २०५०
२६ अक्तूबर, २०००

वक्तव्य

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के लोकभाषा-अनुसन्धान-विभाग द्वारा जो 'कृषिकोश' तैयार कराया जा रहा है, उसका यह पहला खण्ड हिन्दी-संसार के सामने उपस्थित है। मैथिली, मगही और भोजपुरी के क्षेत्रों से संगृहीत—'अ' से 'घ' तक के—शब्द इसमें हैं। उनके अर्थ, व्युत्पत्ति, पर्याय आदि के अतिरिक्त वस्तु-विशेष का बोध करानेवाले शब्दों से सम्बद्ध आवश्यक चित्र भी दिये गये हैं।

इस कृषिकोश के आगामी खण्ड वक्ष्य में क्रमशः निकलते जायेंगे। उनके प्रिन्सिपल और सम्पादन में जो कठिनाइयाँ हैं, उन सबका अनुमान सम्पादकीय 'निवेदन' और 'प्रस्तावना' पढ़कर किया जा सकता है। तब भी दूसरा खण्ड, जिसमें 'घ' से 'न' तक के शब्द होंगे, सम्पादित हो रहा है और आशा है कि अगले साल तक वह तैयार हो सकेगा। इस तरह का कोश बनाना बड़ा बीहड़ काम है, इसलिए सभी खण्डों के निकलने में काफी समय लगने की संभावना है।

इसमें तो केवल तीन ही क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द हैं। वे भी सीमित जनपद से ही संकलित हैं। फिर भी, कई शब्द ऐसे सुघड़-सलोने दीख पड़े हैं, जो शिष्ट साहित्यिक भाषा में जड़े जाने योग्य हैं। यदि कृषिप्रधान भारतवर्ष की अन्यान्य क्षेत्रीय भाषाओं के भी कृषि-विषयक शब्दों के ऐसे कोश प्रकाशित हो जायें, तो साहित्य की शब्द-सम्पत्ति बहुत अधिक बढ़ जायगी। जब खेती के घन्चे की तरह दूसरे शब्दों के शब्द-कोश भी निकल जायेंगे, तब ऐसा प्रतीत होता है कि जनसाधारण के लिए तथाकथित आंचलिक भाषाओं में लिखे और छापे जानेवाले साहित्य—कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि—की सैरगिक शोभा निखर उठेगी।

लोक-भाषाओं का जो साहित्य लोक-कण्ठों में बसा हुआ है, उसका उद्धार और प्रचार भी धीरे-धीरे हो रहा है। पारखियों का ध्यान उनके शब्दों, मुहावरों, कहावतों, गीतों आदि की ओर तेजी से जा रहा है। साहित्यानुरागी पाठक भी लोक-साहित्य के गुजराही होते जा रहे हैं। यह शुभ लक्षण है।

विश्वविद्यालयों के साथ-साथ आकासवाणी-केन्द्रों में भी लोक-भाषाओं को आदर मिल रहा है। साहित्य-संसार के विद्वान अनुसन्धायक उनपर शोध, विचार-विमर्श, आलोचन-विवेचन तथा ग्रन्थ-लेखन-कार्य बढ़ी लगन से करने लगे हैं। समा-सम्मेलनों और पत्र-पत्रिकाओं में भी उनकी महत्ता प्रकट हो रही है।

किन्तु, लोक-भाषाओं का महत्त्व वहीं तक मान्य होना चाहिए, जहाँ तक वे जनसम्पर्क बढ़ाने, भारत की मौलिक लोक-संस्कृति की सुरक्षा, लोक-कलाओं के विकास और साहित्य की समृद्धिवाली बनाने में सहायक हों। पर यदि राजनीतिक स्वार्थ साधने के उद्देश्य से उनके प्रति अवांछनीय आग्रह दिखाया जायगा, तो देश के स्वयं-संरक्ष हो जाने की आशंका है। भाषाचार-प्रान्त-निर्माण का दुष्परिणाम प्रकट हो चुका है। पुनः लोक-भाषाओं के आधार पर टुकड़ों में बँटनेवाले देश की कल्पना अतिशय भयावह है।

यह बात जानकार विद्वानों को मालूम है कि अखिलभारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के एक चिरस्मरणीय सभापति ने डॉक्टर प्रियर्सन को पत्र लिखकर उनसे पूछा था कि आपने भारत में तो २४४ भाषाएँ खोज निकालीं, पर यह बताइए कि आपके योरोप और ब्रिटेन में कितनी भाषाएँ हैं। इस जिज्ञासा को डॉक्टर प्रियर्सन ने केवल खेद-प्रकाश द्वारा ही शान्त किया था। तब निष्कर्ष यह निकाला गया कि उन्हें अपने देश में बन्दर-बिट-नीति बरतना अभीष्ट नहीं था। किन्तु भारत में भाषाओं और धार्मिक सम्प्रदायों अथवा मतमतान्तरों का संख्या-बाहुल्य सारे संसार को दिखाने में चाहे उनका जो भी उद्देश्य निहित रहा हो, यह तो मानना ही पड़ता है कि अँगरेजी लिखे-पढ़े भारतवासियों में लोकभाषाओं के अध्ययन-अनुशीलन का अनुराग उत्पन्न करने का श्रेय योरोप के कतिपय विद्वानों को ही है, जिसके लिए उपर्युक्त भारतवासी आज भी उनका सादर स्मरण करते हैं।

भारत-संघ के सभी राज्यों में लोक-भाषाएँ हैं। सबके बिखरे साहित्य का संग्रह और अध्ययन होना चाहिए। इससे प्रान्तीय राजभाषाएँ शुष्ट-शुष्ट होंगी और आदान-प्रदान के चक्र-प्रवर्तनानुसार उनसे राष्ट्रभाषा हिन्दी भी रस-सम्पन्न करके लाभान्वित होगी। यहाँ एक बात और भी विद्वानों के लिए विचारणीय है। प्रान्तीय स्वतंत्रता के संरक्षण की दृष्टि से संविधान-स्वीकृत राजभाषाओं को शिक्षा अथवा राजकाज का माध्यम बनाना समीचीन समझा जा सकता है, पर मातृभाषा की परिभाषा को अतीव संकीर्ण करके लोक-भाषाओं का प्रयोग राजभाषा के रूप में करना राष्ट्र की संघ-शक्ति को क्षिन्न-भित्त कर डालने के समान है। राष्ट्रीय एकता को अक्षण्ड रखने के विचार से सावधान रहते हुए लोक-भाषाओं को उचित उत्तेजन अवश्य मिलना चाहिए।

अस्तु; इस कोश के प्रस्तुत प्रथम खण्ड के सुयोग्य सम्पादक डॉक्टर विद्वनाथप्रसाद सारन-जिले के छपरा-नगर-निवासी और हिन्दी-संसार के भाषाविज्ञान-शास्त्रियों में परम प्रसिद्ध हैं। आप संस्कृत के साहित्याचार्य और हिन्दी के साहित्यरत्न, संस्कृत और हिन्दी के एम्. ए. तथा पी. एच्. हैं। लन्दन-विश्वविद्यालय से आपने पी-एच्. डी. की उपाधि पाई है। सन् १९५५-५६ ई. में आप डेकन-कॉलेज (पूना) के पोस्ट ग्रेजुएट ऐण्ड रिसर्च इंस्टिट्यूट (राकफेलर फाउण्डेशन, यू. एस्. ए.) में लिक्विस्टिक्स के प्रथम विजिटिङ्ग प्रोफेसर थे। आप पटना-विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभागाध्यक्ष हैं, पर इस समय अवकाश लेकर आगरा-विश्वविद्यालय में के. एम्. मुन्शी इंस्टिट्यूट ऑफ हिन्दी स्टडीज ऐण्ड लिक्विस्टिक्स के डायरेक्टर पद पर आसीन तथा उसके त्रैमासिक मुखपत्र 'भारतीय

साहित्य' के प्रधान सम्पादक भी हैं। आपके द्वारा सम्पादित 'भोजपुरी कवि और काव्य' नामक पुस्तक गत वर्ष परिषद् से ही प्रकाशित हो चुकी है। जब आप परिषद् के लोक-भाषा अनुसन्धान-विभाग के अध्यक्ष थे, तब आपके ही तत्त्वावधान में मगही-संस्कार-मीतों का एक सटीक संग्रह-ग्रन्थ तैयार हुआ था। आपके द्वारा सम्पादित उस ग्रन्थ का प्रकाशन निकट भविष्य में ही होनेवाला है। आपको इस कोश के सम्पादन-कार्य में अपने बिन अनुसन्धान-सहायकों का सहयोग प्राप्त हुआ है, उनकी योग्यता आदि के विषय में आप स्वयं लिख चुके हैं। उनमें श्रीधृतिदेव शास्त्री भागलपुर-जिले और श्रीराधावल्लभ शर्मा बम्भारन-जिले के निवासी हैं।

आशा है कि यह कोश लोकभाषाओं के गुणज्ञों को प्रचुर प्रेरणा और प्रोत्साहन प्रदान करेगा। साथ ही, हमें यह भी आशा है कि साहित्य के अम्युदय की आकांक्षा रखनेवाले सुधी सज्जन इस प्रथम प्रयास की त्रुटियों से हमें अवगत कराके अपनी स्वाभाविक सहृदयता का परिचय देने की कृपा करेंगे।

श्रीरामनवमी, शकाब्द १८८१

सन् १९५९ ई०

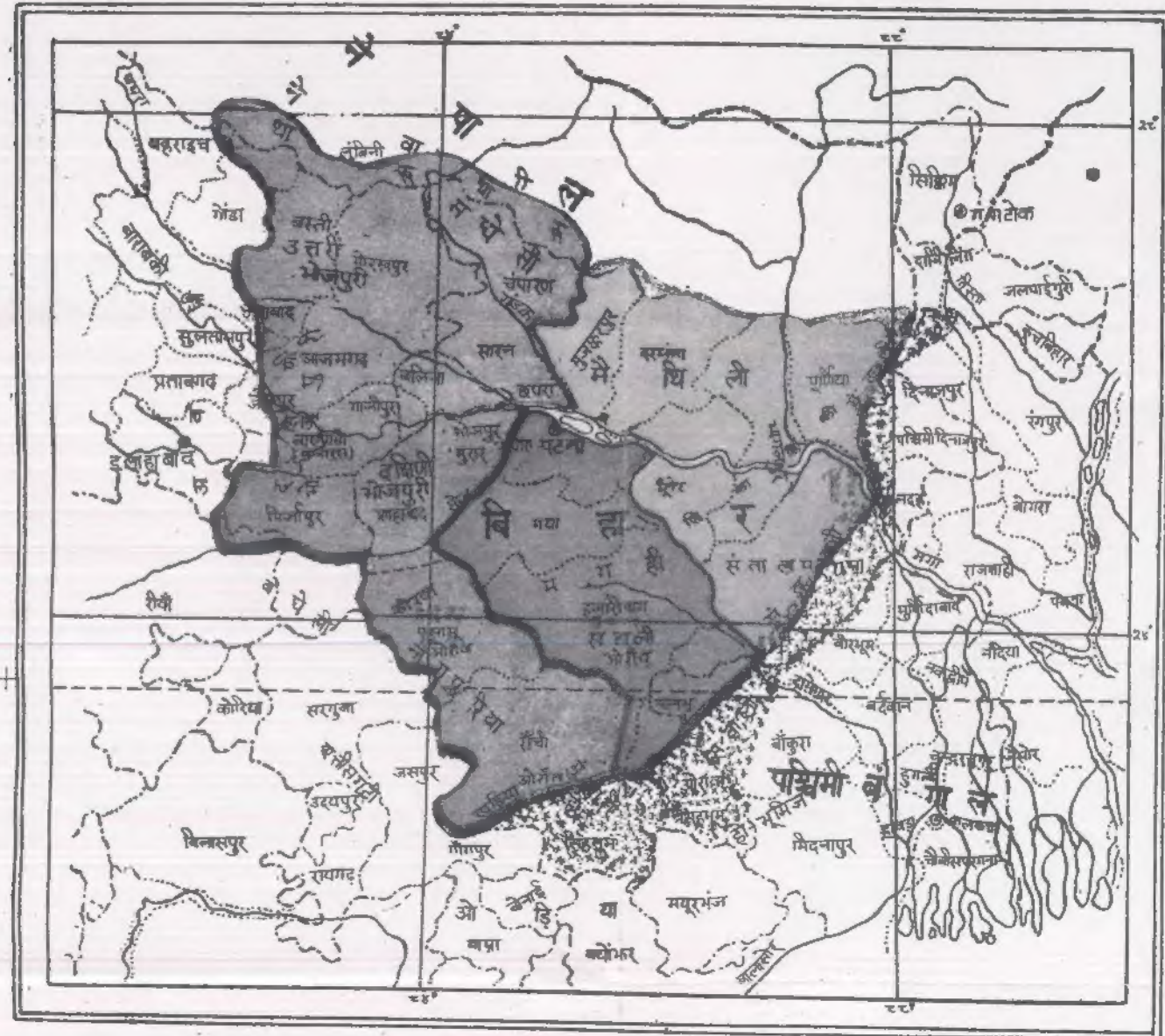
शिवपूजनसहाय

(संचालक)

बिहार की अन्य डेलियों के साथ-साथ भोजपुरी के क्षेत्र, सीमा तथा उसके भौगोलिक भेदों का

मानचित्र

माप-एक इंच = ७० मील



निवेदन

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के जन्म के तीन-चार साल पहले ही मेरे मन में यह विचार उठा था कि इस प्रकार का एक प्रामाणिक पारिभाषिक कोश तैयार हो, जिसमें जन-समाज में प्रचलित विभिन्न व्यवसायों के सजीव शब्दों का वैज्ञानिक ढंग से संग्रह हो; क्योंकि मेरी यह निश्चित धारणा रही है कि हमारी पारिभाषिक शब्दावली के अभाव को केवल अँगरेजी के उच्चार या अनुवाद से नहीं भरा जा सकता, बल्कि यह दारिद्र्य तो दूर हो सकता है—हमारी अपनी ही चिरसंचित शब्द-संपत्ति से, जो हमारी जनपदीय बोलियों में खोई-खोई-सी पड़ी हुई है। उसका उद्धार करके उसमें नई प्राण-शक्ति भरी जा सकती है, जिसे वह एक विस्तीर्ण धरातल पर हमारी आवश्यकता की पूर्ति कर सके। उस समय उस विचार को क्रियान्वित करने के लिए मैंने जो एक छोटी-सी योजना बनाई थी, उसमें मुझे विशेष प्रेरणा दो हितचिन्तकों से मिली थी—एक तो पूज्यचरण आचार्य श्रीबदरीनाथ वर्मा से और दूसरे स्वर्गीय श्रीरामचारी प्रसाद से। इनके अतिरिक्त इस कार्य में मुझे पुनः प्रवृत्त करने में बिहार के चिरस्मरणीय शिक्षा-सचिव श्रीजगदीशचन्द्र माथुर, आई० सी० एस्० का, जो इस समय आकाशवाणी के डाइरेक्टर जनरल हैं, विशेष हाथ था। आप सबके प्रति परम अक्षुण्ण कृतज्ञता व्यक्त करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

जब से मैंने यह कार्य प्रारंभ किया, तब से मेरी प्रेरणा के स्रोतों में प्रमुख स्थान रहा है, बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् के सुयोग्य संचालक श्रीशिवपूजनसहायजी का। उनका विशेष सहयोग और साहाय्य न मिला होता, तो इसमें पग-पग करके आगे बढ़ना और आज इस स्थिति में पहुँचना कि इसका प्रकाशन हो सके, मेरे लिए कदापि संभव न होता। इसके संपादन में मुझे अपने आदरणीय श्रीलक्ष्मीनारायण 'सुवांशु' और श्रीरामचारी सिंह 'दिनकर' से भी पर्याप्त बल और सहायताएँ मिलती रही हैं। उनके सुझावों से हमने बहुत लाभ उठाया है। इनके अतिरिक्त परिषद् के वर्तमान अध्यक्ष श्रीकुमार गंगानंद सिंह, श्रीराजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, बन्धुवर श्रीरामदत्त श्रेष्ठ कुमार गंगानंद सिंह, श्रीराजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, बन्धुवर श्रीरामदत्त बेनीपुरी, विद्वद्वर श्रीराहुल सांकृत्यायन, डॉ० कामिल मुल्के, पं० छविनाथ पाण्डेय प्रभृति महानुभावों से हमें जो बहुमूल्य प्रोत्साहन और समर्थन प्राप्त होता रहा है, उसके लिए आप सबके प्रति सादर आभार प्रकट करना मेरा कर्त्तव्य है।

परिषद् के प्रकाशन-विभाग का भी जो सक्रिय सहयोग हमें मिलता रहा है, उसके लिए श्रीरघुनन्दलाल मण्डल और श्रीहवलदार बिपाठी 'सहृदय' को मेरे हार्दिक धन्यवाद हैं।

परन्तु उन्हें किन शब्दों में धन्यवाद दूँ, जो मेरे हाथों-पायों हाथ की तरह प्रारंभ से अवतक अनवरत मेरे साथ इस काम में लगे रहे हैं। क्या उनके बिना यह कार्य इस रूप में संभव हो सकता था ! मैं यहाँ अपने कार्य के अभिन्न अंग श्रीभुतिदेवशास्त्री (पालि-साहित्याचार्य, न्यायाचार्य, व्याकरण शास्त्री, प्रभाकर, पूना स्कूल ऑफ लिबरलिटीज द्वारा प्रशिक्षित तथा श्री राधावल्लभशर्मा साहित्यालंकार, पूना स्कूल ऑफ लिबरलिटीज द्वारा प्रशिक्षित का उल्लेख कर रहा हूँ। कितनी लगन से आप दोनों ने मेरे साथ इस कार्य को आरंभ किया था ! मेरे स्नातकोत्तर कक्षा के अन्य छात्रों तथा अनुसंधित विद्यार्थियों की ही तरह सदा मेरे साथ कोश-विज्ञान के इस नये विषय के अध्ययन तथा शानार्जन में तत्पर, सदा इस लोक-विद्या के अम्बुसय में निरत, सदा मेरे निर्देशों के यथावत् पालन में तन्मय भाव से जिन आप दोनों की प्रशंसनीय प्रगति का पता मुझसे अधिक और किसको होगा ! इस कार्य में भुतिदेवजी का विशेष स्नेह था—व्युत्पत्ति निर्वचन और राधावल्लभजी का क्षेत्रीय संग्रह का परीक्षण। हमें अभी कृषि-कोश के दूसरे और तीसरे खंडों को भी, जो प्रायः समाप्तप्राय हैं, अविलम्ब प्रकाशित करना है। आप दोनों की दक्षता और कार्य-तत्परता का हमें पूरा भरोसा है और आशा है कि आप सकलता के साथ इस कार्य के संपादन में दक्षिण रहेंगे।

इस कोश-कार्य में अपने सभी सहायकों का उल्लेख करना मैं यहाँ आवश्यक समझता हूँ :—

सहायक

अनुसन्धान और सम्पादन

१. श्रीभुतिदेव शास्त्री

२. श्रीराधावल्लभ शर्मा

३. श्रीचिकमादित्य मिश्र

संग्रह

१. श्रीगणेश चौबे—आप धरमपुर जिले के निवासी हैं। आप लोक-साहित्य के अनेक विद्वान् हैं और 'इंडियन फोकलोर' (कलकत्ता) के संपादक-मण्डल में इस क्षेत्र के प्रतिनिधि भी हैं। आप बहुत दिनों से विहारी लोक-साहित्य पर कार्य कर रहे हैं। इस कार्य में हमें आपसे सभी तरह की बहुमूल्य सहायता मिली है। लोक-साहित्य के संग्रह आदि में आप सदा सहर्ष सहायता देने को प्रसन्न रहते हैं।

२. श्रीश्रीकांत शास्त्री—एकंगरसराय (पूर्वी पटना) के रहनेवाले विद्वान् हैं और सदा जागरूक रहकर मगही-साहित्य के उत्थान में तत्पर रहते हैं। आपने लोक-भाषा और लोक-साहित्य के विविध अंगों का संग्रह करके परिषद् को दिया है और हमारी सहायता की है। आप सदा हमारा हाथ बढ़ाते रहे हैं।

३. श्रीसुरेश्वर पाठक—आप दक्षिणी मुँगेर के निवासी हैं और आजकल यही पटना में वयस्क-शिक्षा-विभाग में अधिकारी हैं। आप हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने दक्षिणी मुँगेर के शब्दों, कहावतों आदि का संग्रह करके परिषद् को दिया है। आप से हमें बराबर उचित सहायता मिलती रही है।

आप तीनों हमारे विशिष्ट सहायक हैं। इनके अतिरिक्त उपयुक्त सभी व्यक्तियों ने हमें यथासमय पूर्ण सहयोग दिया है। हम आप सबके आभारी हैं। इनमें से श्रीविद्यानन्द सिंह, श्रीहरिप्रकाश, श्रीकृष्णदेव, श्रीचिकमादित्य मिश्र एम्. ए., श्रीपंचानन चौधरी, श्रीशिवकुमार वर्मा, श्रीराजेश्वर प्रसाद ने अपने-अपने क्षेत्रों से शब्दों, कहावतों आदि का संग्रह कर प्रदान किया है और इस प्रकार हमें बहुत सहायता दी है।

श्रीरामाचार शर्मा, श्रीरामस्वरूप चौधरी, श्रीबाल्मीकि प्रसाद सिंह एम्. ए., श्रीमुसाई का आदि ने शब्दों की जाँच-पड़ताल में यथासमय यथा-स्थान उपस्थित होकर हमें यथोचित सहयोग दिया है और अपने-अपने क्षेत्र के तत्तत् पर्यायों को समझने-बुझने में तथा निरीक्षण-परीक्षण में हमारी सहायता की है।

संग्रह-कार्य के प्रथम वर्ष में परिषद् द्वारा नियुक्त जो चार क्षेत्रीय कार्यकर्ता वैतमिक रूप में संग्रह-कार्य करते थे, उनका विवरण निम्नांकित है—

श्रीजयानन्द झा—ये दक्षिणी पूर्णियाँ के निवासी हैं। इन्होंने दरभंगा जिले के मधुबनी, सदर सबविजिन और द० पूर्णिया से शब्द संग्रहीत करके दिये थे। कोश में इनके कार्य-क्षेत्र का संकेत-चिह्न दर०-१, पूर्णि०-१ है।

श्रीअवधेन्द्रदेव नारायण—ये छपरा नगर के निवासी हैं। इन्होंने सारन जिले भर में घूम-घूमकर शब्दों का संग्रह करके दिया था। कोश में इनका संकेत सा०-१ है।

श्रीहृदयनारायण मंडल—ये संतालपरगने के रहनेवाले हैं। इन्होंने संतालपरगने की संताली भाषा के शब्द-संग्रह करके दिये थे। किन्तु इनके शब्दों का उपयोग संताली-कोश के लिए होगा, इसलिए इस कोश में इनका उल्लेख नहीं है।

श्रीजावालिदेव—ये पटना सिटी के निवासी हैं। इन्होंने बहुत थोड़े दिनोंतक कार्य किया। आप पारिभाषिक शब्दों के बजाय सामान्य शब्दों का ही योका संग्रह कर सके थे। इसलिए इनके शब्दों का भी उपयोग इस कोश में नहीं हुआ है।

आप सभी सहयोगियों का हम आभार स्वीकार करते हैं।

विहार के विभिन्न भागों के निवासी जिन भाइयों और बहनों के मुँह से इस कोश

के शब्द संगृहीत किये गये हैं, उनकी सूची देने में तो कई पृष्ठ लग जायेंगे, परन्तु इस प्रसंग में उनको भी कृतज्ञता-पूर्वक स्मरण किये बिना हम नहीं रह सकते।

कोश-कार्य व्यावहारिक भाषाविज्ञान का एक जटिल विषय है; बहुत ही भ्रमसाध्य, समयसाध्य और व्ययसाध्य। अंगरेजी, हिन्दी अथवा अन्य भाषाओं के कोश-ग्रंथों के संपादन और संग्रह का इतिहास बतलाता है कि कोश-जैसे महत्वपूर्ण आकर-ग्रंथों के सम्पूर्ण संपादन के लिए पर्याप्त समय और साधन की आवश्यकता होती है। अंगरेजी की 'वेब्स्टर न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी' के प्रथम संस्करण के प्रकाशन में पूरे १०२ वर्षों का समय लगा था। १८०७ ई० में जोआ वेब्स्टर ने इसका कार्यारंभ किया था और २१ वर्षों के परिश्रम के बाद उन्होंने जॉनसन की डिक्शनरी से केवल १२,००० शब्द और बढ़ाकर उसके मूल रूप को १८२८ ई० में पूरा और प्रकाशित किया। इसके बाद क्रमशः परिवर्द्धन प्राप्त करता हुआ वह अपने बृहत् रूप में आया। इसी प्रकार प्रसिद्ध ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी की योजना का भीगवोश 'फिलालॉजिकल सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन' की ओर से १८५७ ई० में हुआ और उसका कार्य ७९ वर्षों के बाद सन् १९३६ ई० में समाप्त हुआ। इस बीच में उसके एक सम्पादक के जीवन-काल के बाद दूसरे ने और दूसरे के जीवन-काल के बाद तीसरे ने इस कार्य के दायित्व को संभाला। इन्हीं तीसरे और उनके साथ एक चौथे सम्पादक के कार्य-काल में उसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। कई वर्षों तक उसके सम्पादन के लिए चार सम्पादक नियुक्त थे। इसके अतिरिक्त उनके कई सहायक सम्पादक थे, जो पचास वर्षों से भी अधिक काल तक इस कार्य में लगे रहे। प्रारंभ में संग्रह के लिए १०० संग्रहकर्ता नियुक्त थे, जो अंगरेजी साहित्य के विविध क्षेत्रों से शब्दों, मुहावरों आदि का संग्रह करते थे और इनके अतिरिक्त ८०० ऐसे पाठक थे, जो स्वयं-सेवा-भाव से साहित्य के विभिन्न अंगों के ग्रंथों को पढ़कर उनमें से उपयुक्त सामग्री का संकलन करके सोसाइटी के पास भेजा करते थे। तब कहीं अंगरेजी का ऐसा प्रामाणिक कोश तैयार हो सका।

अपने देश में भी नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी से हिन्दी शब्द-सागर लगातार एक दशक तक कार्य होते रहने के पश्चात् ही खंडशः प्रकाशित होने लगा था और इसके बाद भी लगभग बीस वर्षों में (१९१० से १९२६ तक) उसका सम्पादन और प्रकाशन पूरा हुआ।

पूना में संस्कृत-कोश के संग्रह-सम्पादन का कार्य सन् १९४८ ई० में प्रारंभ हुआ। इस समय इस कार्य में लगभग पचास सुयोग्य कार्यकर्ता लगे हुए हैं। कोश-सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री वहाँ सुलभ है, लगभग एक लाख रुपया प्रतिवर्ष उसपर खर्च किया जा रहा है। पर वह सब होते हुए भी अभी तक उसका कोई खंड प्रकाशित नहीं हो सका है।

कोश के कार्य में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि जब तक योजनानुसार सभी उपलब्ध शब्दों का संग्रह न हो जाय और फिर सभी अपेक्षित दृष्टियों से उनके यथावत्

अध्ययन और विश्लेषण का कार्य पूरा न हो जाय, तबतक प्रकाशन प्रारंभ करने का खयाल नहीं किया जा सकता। ऐसा नहीं है कि एक ओर संग्रह और अध्ययन-अनुरागी-जन का कार्य भी चलता रहे और दूसरी ओर वर्णानुक्रम या किसी और ही क्रम से एक-एक अंश का प्रकाशन भी होता रहे। अतएव, किसी संग्रह कोश के प्रकाशन में विलंब होना अपरिहार्य है।

ऊपर जिन दो-एक उदाहरणीय कोशों का उल्लेख किया गया है, उन सबका आधार लिखित और उपलब्ध साहित्य है, जब कि हमारा यह कृषि-कोश अलिखित और दुर्लभ सामग्री पर आधारित है। कोशविज्ञान की नई पद्धति के अनुसार ठेठ ग्रामीण समाज के शब्दों को इकट्ठा करके उन्हें स्वनि, अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से विविध प्रकार से जाँचकर हमें संकलन करना पड़ा है। शहर से दूर, गाँवों के भिन्न-भिन्न पेशों में लगे हुए कामकाजी स्त्री-पुरुषों के काम-धाम के स्थलों पर स्वयं जाकर या अपने प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को भेजकर उनसे निश्चयानुसार पूछ-ताछ, जाँच-पड़ताल करके उनके कार्यकलाप-सम्बन्धी शब्दों का संग्रह, अर्थ-निर्धारण तथा प्रयोगादि की जानकारी हासिल करनी पड़ी है।

इसका प्रत्येक शब्द विभिन्न बोलियों के बोलनेवाले विभिन्न वृत्तियों के लोगों के मुँह से प्राप्त किया गया है। यह कार्य कितना कठिन है, यह वे ही जान सकते हैं, जो इस दिशा में कुछ काम करके भुक्तभोगी बन चुके हैं। पहले तो उपयुक्त व्यक्ति ही मिलते हैं जो प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर दे सकें। पेशे के काम-धाम में लगे हुए भ्रमभीवी व्यक्ति को इतनी फुरसत भी कहीं कि वह सब-कुछ छोड़कर घंटों बैठे, हमारे साथ प्रश्नोत्तर करता रहे। कोई उमंगी किसी प्रकार यदि पकड़ में आया भी, तो फिर उससे अंड-बंड उत्तर मिलते हैं। उपयुक्त सामग्री देनेवाले उपयुक्त व्यक्ति बहुत कठिनाई से मिल पाते हैं। फिर सर्वथा यह भी संभव नहीं कि उनसे बातें करते समय ही उत्तर लिखते रहें। प्रायः ऐसा होता है कि उत्तरों को कठिनाता-पूर्वक स्मृति में ही संचित करके कुछ समय के उपरांत लिखना पड़ता है। इस कारण इसमें विशेष सावधानी की अपेक्षा होती है। अपनी संगृहीत सामग्री को प्रकाशित करने के पहले हमने यह आवश्यक नियम कर रक्खा था कि उन बोलियों के बोलनेवाले तथा तत्तत् माया-क्षेत्रों के प्रति-निधि स्वरूप तथा भरोसे के व्यक्तियों से विशेष रूप से पूछ-ताछ करके उसका पुनः परीक्षण कर लिया जाय। इस प्रकार इस कोश के प्रत्येक शब्द की प्रामाणिकता की यथासंभव जाँच कर ली गई है। इस कोश का प्रत्येक शब्द हमारी जागरूक ममता और देख-भाल का पात्र बनकर ही इस आगार में प्रवेश पा सका है।

बड़े होसले के साथ हम इस कार्य में प्रवृत्त हुए। परन्तु हमें अत्यन्त सीमित साधनों, दो-चार संग्रहक कार्यकर्ताओं, लोक-भाषा और लोकसाहित्य के कुछ इने-गिने अनुरागी व्यक्तियों और बस दो अनुसंधान-सहायकों की सहायता से ही, अन्यान्य कार्यों के साथ-साथ, इतनी स्वल्प अवधि में, इस कोश का पहला खंड निकालना पड़ रहा है। इसे

भी हम अपना सौभाग्य ही समझते हैं कि यह काठेन कार्य किसी तरह इस विषय में बचि रखनेवाले महाजुभावों के समक्ष प्रकाश में तो आ सका।

संभव है कि कार्य की शीघ्रता अथवा अल्पज्ञता के कारण इस संग्रह में कुछ ऐसे शब्द न आ सके हों, जिनकी जानकारी अन्य सज्जनों को हो। कोई भी कोशकार आखिर अतिमानव तो है नहीं कि सर्वज्ञता का दावा कर सके। कोश-कार्य में त्रुटियों की पर्याप्त संभावना रहती है, जिनका पता तो प्रकाशन के बाद ही चलता है और जिनके निर्देश कोशकार को कुछ तो उदारतापूर्वक मिलते हैं और कुछ तीखे आक्षेपों के साथ। दोनों से ही कृतज्ञ भाव से आगे के लिए शिक्षा-ग्रहण करने को मैं सविनय आग्रह रहूँगा।

वस्तुतः एक ओर कोश-कार्य की कष्टसाध्यता, विशालता तथा अपने नड़े-बड़े हीसलों को और दूसरी ओर अपनी सीमित शक्तियों तथा साधनों को देखकर हमें कहना पड़ता है—

‘सितीधुं दुःस्तरम्भोहायुधुपेनास्मि सागरम्।’

विश्वनाथ प्रसाद
संपादक

मंगलवार, मार्गशीर्ष, शुक्ल-९ (स्कन्दपत्री) सं० २०१५ वि०,
क० मु० हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान विद्यार्थीठ
आगरा-विश्वविद्यालय
आगरा

प्रस्तावना

बिहार-प्रदेश की विविध लोकभाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन-अनुशीलन बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का एक प्रमुख उद्देश्य है। इसके लिए आरम्भ से ही उसके अन्तर्गत ‘लोकभाषा-अनुसंधान-विभाग’ मेरे निर्देशन-निरीक्षण में कार्य करता आ रहा है। हमने बिहार की लोकभाषाओं और लोक-साहित्य के अध्ययन के लिए एक योजना बनाई, जिसके अनुसार लोकभाषा और साहित्य-संबंधी सामग्रियों का संग्रह किया जा सके। तदनुसार गाँवों में बिखरी अलिखित सामग्रियों, लोक-गीतों, कथाओं, गाथाओं, कहावतों, पहेलियों, मुहावरों और शब्दों का संकलन प्रशिक्षित वैज्ञानिक कार्यकर्त्ताओं द्वारा कराया जाने लगा। प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता विभिन्न भाषा-क्षेत्रों के गाँवों में जाकर तत्तत्-विषयों के विशेषज्ञों और तत्तत् व्यवसायों के व्यावसायिकों से मिलकर गीतों, कथाओं, पहेलियों आदि और किसान, बढ़ई, कुम्हार आदि व्यावसायिकों से उन-उन विषयों के शब्दों का संग्रह करते और कार्यालय को भेजते थे और यहाँ दो प्रशिक्षित अनुसंधायक उनका निरीक्षण-परीक्षण करके उनकी उपयोगिता और औचित्य को जाँचकर उन्हें संग्रहीत करते थे। किन्तु यह प्रणाली एक वर्ष तक ही चली; क्योंकि उन संग्रहक कार्यकर्त्ताओं द्वारा किया गया कार्य संतोषजनक नहीं प्रमाणित हुआ। अतः वैज्ञानिक कार्य का सिलसिला उठा दिया गया और उसके स्थान में विभिन्न क्षेत्रों के लोक-साहित्य के उस्ताही कार्यकर्त्ताओं के द्वारा पारिभाषिक के आधार पर सामग्रियों का संकलन कराया जाने लगा। इसके लिए हमारे विशेष रूप से तैयार किए हुए निर्देशपत्र के अनुसार बिहार की मैथिली, मगही, भोजपुरी और संताली की सामग्रियाँ एकत्र की जाने लगीं। अब तक इन भाषा-क्षेत्रों की प्रचुर सामग्री संग्रहीत हो चुकी है। सरकारों की ओर पर इस प्रकार का यह पहला कार्य था, जिसे बिहार-राज्य सरकार ने प्रारम्भ किया और बाद में वह दूसरे राज्यों के लिए अनुकरणीय हो गया। दो-तीन वर्षों में कुछ सामग्रियों के संग्रह हो जाने के बाद सबसे पहले दो कार्य शुरू किये गये—पहला ‘मगही संस्कार-गीतों’ का संपादन और दूसरा ‘कृषिकोश’ का। ‘मगही संस्कारगीत संग्रह’ में, विविध संस्कारों के समय गाये जानेवाले मगही-क्षेत्र के लोक-गीतों का संग्रह किया गया है। इस संग्रह में मगही लोक-गीतों का मूलरूप, उनका अर्थ, व्यवस्थान टिप्पणी, परिशिष्ट आदि देकर एक विस्तृत भूमिका के साथ संपादन किया गया है, जो निकट भविष्य में मुद्रित होनेवाला है।

दूसरा कार्य, जो इस विभाग ने किया है, वह इसी 'कृषिकोश' का संपादन है। यद्यपि बिहार-राज्य के मैथिली, मगही और भोजपुरी क्षेत्रों के गाँवों में निवास करनेवाले किसान, बढ़ई, लुहार, कुम्हार, सुनार, चमार आदि सभी प्रकार के व्यावसायिकों के व्यवसायों से सम्बद्ध ग्रामीण पारिभाषिक शब्दों का संग्रह इस विभाग में कराया जाता रहा है और यद्यपि पहले विचार था कि सभी ग्रामीण व्यवसायों के पारिभाषिक शब्दों का एक बृहत् संहत कोश एक ही साथ संपादित करके प्रकाशित किया जाय तथापि उसके लिए और अधिक सामग्री, साधन एवं समय की अपेक्षा का विचार करके उस स्तर पर उसका कार्य तत्काल स्थगित कर दिया गया और ग्राम-समाज की रीढ़ किसानों के द्वारा व्यवहृत क्षेत्रीय शब्दों का ही कोश पहले निकालने का निश्चय हुआ। तःनुसार क्षेत्रीय शब्दों का अलग संग्रह करके उनका संपादन किया गया। फलस्वरूप, 'कृषिकोश' का यह पहला खंड आज प्रकाशित हो रहा है। इसमें 'अ' से लेकर 'घ' तक के शब्द हैं।

इस कोश में कृषि-संबंधी पारिभाषिक शब्दों का संग्रह किया गया है। 'कृषि' शब्द हम जोतने के अतिरिक्त खेती करनेवाले किसान तथा खेती के पशु, औजार, प्रणाली, विविध क्रिया-कलाप आदि सबका बोधक है। वैदिक साहित्य में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'कृषि' के स्थान में ब्राह्मण्यायी में 'कृषीवत्' शब्द आया है। वैदिक काल से ही कृषि हमारे देश का प्रधान व्यवसाय रहा है और इसका जैसा विकास हमारे यहाँ हुआ था, वैसा अन्यत्र नहीं। ग्रीक के लोग भी यहाँ की उपजाऊ धरती और कृषि-कीशल से बहुत प्रभावित हुए थे। अतः शताब्दियों के परम्परागत विकास के प्रभाव से हमारी कृषि-संबंधी शब्दावली बहुत समृद्ध है।

इस कोश के संयोजित शब्द बिहार-राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के कृषक-जनसमुदाय में सेकड़ों वर्षों से व्यवहृत होते आ रहे हैं और आज भी जीवित तथा जीवन्त हैं। इसके अतिरिक्त मजदूरों और अन्य श्रमजिवियों की बोलचाल की भाषा में भी समाज-शास्त्र, शिल्पशास्त्र अथवा उद्योग-धंधे संबंधी बहुतेरे बड़िया-बड़िय शब्द मिलते हैं, जो राष्ट्रभाषा की समृद्ध के समर्थ प्रक हो सकते हैं। मिश्र-मिश्र व्यावसायिक मंडलियों तथा श्रमजीवियों के समाज में प्रचलित बहुत-से ऐसे नये पुराने शब्द भी मिलेंगे, जिनके पर्यायवाची शब्द साहित्यिक हिन्दी का अँगरेजी आदि विदेशी भाषाओं में भी दुर्लभ होंगे। राष्ट्रभाषा का भौंडार भरने के लिए तथा विविध कला-कीशालों और व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में पारिभाषिक शब्दों की समस्या को हल करने के लिए हमें अपनी इन विर उपेक्षित अमूल्य निधियों का संवय करना परम आवश्यक है।

बिहार के विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न पेशेवालों की मंडली में प्रचलित ऐसे कुछ पारिभाषिक शब्दों का प्रथम संग्रह प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ॰ ग्रियर्सन ने किया था, जो 'बिहार पीजेंट लाहफ' के नाम से १८८५ ई० में प्रकाशित हुआ था। परन्तु यह

संग्रह संक्षिप्त था और कुछ और ही अभिप्राय से किया गया था। इससे हमारा उक्त उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त सभ्यता के आधुनिक प्रभावों के कारण समाज के भिन्न स्तरों के लोक-व्यवहार, आचार-विचार, रहन-सहन, रश्म रिवाजों के परिवर्तनों के साथ ही साथ उनके शब्द-भण्डार में भी निरन्तर परिवर्तन होते जा रहे हैं। पुराने शब्दों के स्थान में उन्हीं के आचार पर या उनसे भिन्न रोजमरों के नये शब्द बनते जा रहे हैं। इसलिए बिहार और बिहार के बाहर हिन्दी भाषी तथा हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों में भी नये सिरे से और वैज्ञानिक ढंग से ऐसे शब्दों का सर्वेक्षण और संग्रह कराना आवश्यक है। अन्यथा केवल अँगरेजी शब्दों की तालिका तैयार करके उनका पर्याय प्रस्तुत करते जाने की परिपाटी पर ही निर्भर करने से हमें अपनी लोक भाषा के करोड़ों अर्थपूर्ण उपयोगी और जीवन्त पारिभाषिक शब्दों से वंचित होना पड़ेगा और इससे राष्ट्रभाषा की बहुत बड़ी क्षति होगी। इस प्रकार तो 'गिलावा', 'सुरखी' और 'बेंडेकी' जैसे रोजमरों के शब्द भी हमारे पारिभाषिक कोश में स्थान नहीं पा सकेंगे; क्योंकि अँगरेजी में कोई एक पारिभाषिक शब्द ऐसा नहीं है, जो ठोक-ठोक इनका पर्यायवाची हो और जिसके अनुवाद के लिए इनकी अपेक्षा हो। 'गिलावा' के लिए अँगरेजी में एक नहीं, अनेक शब्दों की आवश्यकता होगी। ग्रियर्सन ने 'गिलावा' के लिए Moistend clay used as mortar, 'सुरखी' के लिए Thepounded bricks used as a substitute for sand और "बेंडेरी" के लिए Ridge pole का व्यवहार किया है। सर्वेक्षण के द्वारा लोक-भाषा के ऐसे शब्दों का संग्रह कर लेने के बाद उन्हें हम स्वतंत्र रूप से अपने पारिभाषिक शब्द कोश का अंग बना सकते हैं।

इस दृष्टि से बिहार राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के जनसमुदाय में व्यवहृत होनेवाले विभिन्न प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का संग्रह बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद के लोकभाषा-अनुसंधान विभाग द्वारा कराया गया। अब तक बिहार की मैथिली, भागलपुरी, मगही, भोजपुरी और संताली भाषाओं के ५४२७७ पारिभाषिक शब्द संग्रहीत हो चुके हैं। ये सभी शब्द गाँवों में बसनेवाले विविध व्यवसायियों, शिल्प-जीवियों और किसानों के मुल से संग्रहीत हुए हैं। किंतु जैसा कि ऊपर निवेदित किया जा चुका है, प्रस्तुत कृषिकोश में केवल कृषि से संबंध शब्द ही लिये गये हैं।

जनपदीय शब्दावली का कार्य—हमारे देश में जनपदीय शब्दावली के संग्रह के क्षेत्र में अभी बहुत कम कार्य हो सका है। अँगरेजी ने इस क्षेत्र में जो थोड़ा कार्य किया था; उसका मुख्य उद्देश्य था—मामले-मुकदमे तथा कचहरी की कार्यवाहियों को समझने में सुगमता के साधन जुटाना। ग्रियर्सन से भी पहले हिन्दी-प्रदेश में इस प्रकार का कार्य पैट्रिक काने'गी ने किया था। 'कचहरी टेकिनकैलिटर'के नाम से उनका शब्द-संग्रह सन् १८७०-७५ ई० के लगभग प्रकाशित हुआ था। उसका दूसरा संस्करण इलाहाबाद मिशन प्रेस से सन् १८७७ ई० में निकला था। उसके प्रारंभिक अंशों का डॉ॰ अम्नाप्रसाद 'सुमन' द्वारा किया हुआ हिन्दी-रूपान्तर हमने 'भारतीय साहित्य'

(आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ, २-३, जुलाई, १९५७, पृष्ठ ४३६-४४३) में प्रकाशित किया था। पेट्रिक काने'गी के संग्रह के दो वर्षों बाद सन् १८७६ ई० में विजियम क्रूक ने अपना संग्रह 'मैटिरियल्स फार द रूल एण्ड एमिकल्चरल ग्लोसरी ऑफ द नार्थ-वेस्टर्न प्राविंसेज एण्ड अवध' (गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद)—इस नाम से प्रकाशित किया था। इसके बाद १८८५ में ग्रियर्सन के 'बिहार पीजेंट लाइफ' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। प्रामाणिकता की दृष्टि से यह ग्रंथ अपने से पहले के दोनों ग्रंथों से निस्सन्देह अधिक सफल था; क्योंकि इसके सम्पादक ने लिखित सामग्री का आभय छोड़कर विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों से शब्दों का संग्रह किया और कराया। इसका दूसरा संस्करण सन् १९२६ ई० में गवर्नमेंट प्रिण्टिङ्ग प्रेस, बिहार एण्ड उड़ीसा, पटना से प्रकाशित हुआ।

ग्रियर्सन के वर्षों बाद बीसवीं सदी में इस दिशा में सबसे पहला प्रयास डॉ० मौलाना अब्दुल हक की प्रेरणा से उर्दू में 'इस्तिला हाते पेशावरों' के नाम से आठ छोटी-छोटी जिल्दों में अंजुमने तरकिए उर्दू, दिल्ली (१९३९-४४ ई०) से मौलवी जाफर उर रहमान साहब देहली के संपादन में प्रकाशित हुआ। इस कोश में लगभग दो सौ पेशों के बीस हजार शब्द संग्रहीत हैं। परन्तु ये शब्द गाँवों के पेशेवरों से नहीं, केवल कुछ मशहूर शहरों और कुछ नई-पुरानी किलानों (जैसे 'गुलबारे काश्मीर', 'आईने अकबरी' आदि) से संग्रहीत किये गये थे। शहरों में भी दिल्ली, आगरा और जयपुर आदि कुछ चुनी हुई जगहों से ही अधिकांश शब्द लिये गये थे और वे ही शब्द जो कि सम्पादक के नजर में 'मेयारी' यानी स्टैंडर्ड भाषा के अंग प्रतीत हुए। इस कोश में यह भी नहीं बताया गया है कि कौन-सा शब्द किस क्षेत्र या स्थान से प्राप्त हुआ। फिर भी इसमें बादशाही जमाने के पुराने खानदानों के कारीगरों से या शहरों के कई पेशेवरों से जो शब्द लिये गये हैं, वे मूल्यवान् हैं।

हर्ष है कि इस दिशा में भी इस क्षेत्र में ग्रियर्सन के ही ढंग पर दो उत्कलनीय कार्य विश्वविद्यालयों के अनुसंधितगुओं द्वारा सम्पन्न हुए हैं। एक तो डॉ० हरिहर-पठावली गुप्त द्वारा आजमगढ़ जिले की फूलपुर तहसील के परगना अहिरीका के आधार पर 'ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली' (प्रयाग विश्वविद्यालय के डाक्टरेट का शोध-प्रबन्ध, १९५१ ई०) और दूसरा डॉ० अम्बामसाद 'सुमन' का अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के आधार पर 'कृषक-जीवन संबंधी शब्दावली' (शोध-प्रबन्ध, आगरा विश्वविद्यालय, १९५६ ई०)। ये दोनों कार्य अपने-अपने क्षेत्रों के सम्बन्ध में बहुत ही महत्वपूर्ण कहे जायेंगे। डॉ० हरिहरप्रसाद का शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हो चुका है। (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली आदि, १९५६)। तुलना के लिए हमने अपने इस कोश में उसका उपयोग भी किया है। तुलनात्मक अध्ययन करके हम इन कोशों से इस बात का पता पा सकते हैं कि हमारी जनपदीय शब्दावली में कहाँ तक समानता है और कहाँ तक अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। 'कृषि-शब्दावली' नाम से श्री प्यारेलाल

गर्ग द्वारा संपादित एक छोटी-सी ३३ पृष्ठों की पुस्तिका 'काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा' से भी सन् २००० वि० में प्रकाशित हुई थी। परन्तु उसमें केवल कुछ अँगरेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय-मात्र हैं।

उपरि हाल में 'वृत्तिपदकोष' के नाम से तेलुगु क्षेत्र की पारिभाषिक शब्दावली के संग्रह के लिए दक्षिण में इस ढंग का एक आयोजन आँध्र विश्वविद्यालय के डॉ० म० कृष्णमूर्ति ने किया है। जैसा कि मैंने ऊपर निवेदन किया है, इस प्रकार का कार्य विभिन्न प्रदेशों में शीघ्र होना चाहिए, जिससे हम तुलनात्मक दृष्टि से विचार कर सकें कि इनमें से कितने शब्द ऐसे हैं जिन्हें अखिल भारतीय स्तर पर आवश्यक रूपान्तरों के साथ हम ग्रहण कर सकते हैं।

मराठी क्षेत्र में पूना के निकट के गाँवों के कुछ 'ग्रहण' जाति के घरों में व्यावसायिक शब्दों की जाँच करते हुए मुझे कई ऐसे शब्द मिले जो बिहार में भी प्रायः उसी रूप में प्रचलित हैं। इससे ऐसा जान पड़ता है कि हमारे देश में केवल संस्कृत की तत्सम तथा साहित्यिक शब्दावली का ही अखिल भारतीय प्रसार नहीं है, वरन् दिनानुदिन के विभिन्न व्यावसायों में लगी हुई ग्रामीण जन-मंडली की लोकवणी में भी भाषा की यह मूलभूत समरूपता एक अग्रतर्पार के समान किसी-न-किसी रूप में व्याप्त है, परन्तु इसकी व्यापकता की जाँच तथा व्यावहारिक उपयोग तबतक असंभव है जब तक देश के विभिन्न भागों में जनपदीय शब्दावली के संग्रह और अध्ययन का कार्य नियमित रूप से सम्पन्न न हो।

अपने देश में तो अभी नहीं, पर इंग्लैंड के स्कॉटलैंड प्रदेश में जनपदीय शब्दावली के क्षेत्र में एक ठोहरावणी और अनुकरणीय कार्य हो रहा है। वहाँ १९९६ ई० में इस कार्य के लिए स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी सोसाइटी के नाम से एक संस्था स्थापित हुई और उसने आक्सफोर्ड इंग्लिश लोकभाषा कोश के आदर्श पर कार्य प्रारंभ किया। इस 'स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी' को १० जिल्दों में और ३ खंडों के कुल ३२०० पृष्ठों में प्रकाशित करने की योजना बनी। लगभग २८ वर्षों तक कार्य करके १९५७ ई० तक यह सोसाइटी इस डिक्शनरी के केवल तीन खंडों का प्रकाशन अभी तक कर सकी है। इस कोश में स्कॉटलैंड के ग्रामीण अंचलों में बोली जानेवाली विभिन्न बोलियों के प्रतिनिधि व्यक्तियों और पुरा काल के प्रकाशित साहित्य से शब्दों को संग्रहीत करके उन्हें संपादित किया जा रहा है। इसमें विभिन्न क्षेत्रों के पर्याय, स्थान-निर्देश, उच्चारण और प्रयोग यथास्थान दे दिये गये हैं। किसी प्रदेश की लोकभाषा-संबंधी कोशों में इससे अच्छा कोश मैंने अब तक नहीं देखा। स्कॉटलैंड के एबर्डीन नगर में जाकर और इस कोश के विद्वान् सम्पादक मि० टेविड जी० थ्यूरिस के साथ रहकर मैंने अपनी आँखों उनके कार्य-कर्म और प्रणाली को देखा। इस डिक्शनरी के संग्रह और संपादन में कई विद्वान् और संग्रह-कर्त्ता काम कर रहे हैं। वर्तमान संपादक उसके दूसरे संपादक हैं। २८ वर्षों में यह कोश अपने पहले संपादक के जीवन-काल का

अतिक्रमण करके अब अपने दूसरे सम्पादक के कार्य-काल में प्रकाशित हो रहा है। इस सोसाइटी के पास कोश-विज्ञान-संबंधी सभी आवश्यक साधन हैं, जिनकी सहायता से शब्दों का संग्रह, उनके शुद्ध उच्चारण आदि की बातें प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत की जाती हैं। वहाँ के कार्य को देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ था। स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी के समान ही हमने भी अपने इस कोश में विभिन्न अर्थ, पर्याय और श्रेय आदि का निर्देश किया है। इनके अतिरिक्त इसमें भाषा-विज्ञान की वर्णनात्मक और ऐतिहासिक पद्धति के अनुसार लोकभाषा के शब्दों के वैयक्तिक और पुनर्निर्मित शब्द भी यथासंभव के दिये गये हैं। छलना के लिए बिहार के बाहर की अन्य प्रादेशिक बोलियों के पर्याय भी, जो प्राप्त हो सके हैं, दे दिये गये हैं। इस प्रकार हमारा प्रयास रहा है कि यह कोश, हमारी भाषा में अपने ढंग का पहला कोश कहा जा सकता है, यथासंभव प्रामाणिक और उपादेय हो सके।

हमारे लोकभाषा-अनुसंधान-विभाग का कार्य मार्च १९५१ ई० से प्रारंभ हुआ था। इन सात वर्षों की अवधि में कोश का कार्य तो प्रारंभ से ही होता आया है; किन्तु उसके साथ ही लोकसाहित्य संबंधी दूसरे कार्य भी होते रहे हैं, जिनमें लोकगीतों, कथाओं, गाथाओं, कहावतों, मुहावरों, पहेलियों आदि का संग्रह-कार्य और विशेषकर भगही के संस्कार गीतों के सम्पादन का कार्य भी सम्मिलित है। सन् १९५६ तक कार्यालय में अनुसंधान कार्य करनेवाले केवल दो ही व्यक्ति थे। अब द्वापर तीन हुए हैं। हाँ, बीच-बीच में एक-आध बार महीने-दो महीने के लिए दो-तीन अतिरिक्त व्यक्तियों से भी कुछ काम लिया गया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वल्प साधनों के रहते हुए भी इस छोटी-सी अवधि में हम किसी प्रकार कृषि-कोश का पहला खंड पूरा करके निकाल रहे हैं। अपनी परिस्थिति की परिसीमाओं के कारण हम इसे जैसा रूप देना चाहते थे, वैसा नहीं कर सके हैं और इसमें अनेक त्रुटियाँ भी रह गयी हैं, जिन्हें हम आगे के खंडों और परिशिष्ट में यथाशक्ति दूर करने का प्रयास करेंगे।

कार्य-प्रणाली

इस कोश के सम्बन्ध उपयोग के लिए हमें अपनी योजना की रूपरेखा, कार्यप्रणाली, संकलन व्यवस्था, शब्दार्थ-निरूपण, व्युत्पत्ति-निर्वचन तथा क्रमादि संबंधी कुछ आवश्यक परिचय दे देना उचित है।

प्रामाणिक शब्दों के हमारे इस संग्रह-कार्य के लिए पहले परिपद की ओर से चार वैतनिक कार्यकर्त्ता नियुक्त किये गये थे। मैंने उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण दे कर विभिन्न निर्धारित केन्द्रों में संग्रह के लिए भेजा। वे पृथक्-पृथक् क्षेत्रों के विविध जनवर्गों के प्रतिनिधि-स्वरूप व्यक्तियों से पृच्छकर शब्दों अर्थों और यथास्थान उनके प्रयोगों को यथोचित रूप में लिख लेते थे और उन्हें परिपद-कार्यालय में भेज देते थे। यहाँ मेरे निर्देशानुसार उनकी परीक्षा दो विशेष रूप से प्रशिक्षित अनुसंधायक किया करते थे। परन्तु जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, इस ढंग से संग्रह-कार्य में सन्तोषजनक

प्रगति न होने के कारण पहले की वैतनिक पद्धति हटा दी गई और उसके स्थान में तत्स्थलों के लोक-साहित्य और लोकभाषा के संग्रह में अनुराग और योग्यता रखनेवाले लोगों को यथानियम प्रामाणिक देकर संग्रह-कार्य कराया जाने लगा। इस पद्धति से संग्रह-कार्य में सन्तोषजनक प्रगति हुई।

कोश में शब्दों के साथ-साथ मुहावरों का भी निर्देश यथास्थान कर दिया गया है। कृषि-सम्बन्धी लोक-कहावतों में प्रयुक्त शब्दों को भी समाविष्ट कर लिया गया है। प्रिंसन के 'बिहार पीपुल लाइफ' के लगभग दस हजार शब्दों की भी हमने अपनी प्रणाली से जाँच की कि उनमें से अब कितने प्रचलित हैं और कितने अप्रचलित तथा प्रचलित रूपों में भी इस बीच में अर्थागत या ध्वनिगत कितने परिवर्तन हो गये हैं।

अपनी संयोजित सामग्री के पुनः परीक्षण के लिए विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधि स्वरूप उद्युक्त व्यक्तियों को बुलाकर कोश में आये हुए प्रत्येक शब्द के स्वरूप, अर्थ-प्रयोग और पर्याय के बारे में नियमित रूप से पूछ-ताछ करके आवश्यक संशोधन किया गया। ये व्यक्ति उनसे भिन्न थे जिनसे प्रथमतः शब्द संग्रहित किये गये थे। इस प्रकार पुनः जाँच करने से हमें कई नये शब्द और अर्थ भी प्राप्त हुए जिन्हें यथास्थान समाविष्ट कर लिया गया है।

अपने संग्रहकर्त्ताओं के लिए हमने निम्नलिखित निर्देश निर्धारित किये थे जिनके अनुसार उन्हें कार्य करना आवश्यक था—

संग्रह-कर्त्ताओं के लिए आवश्यक निर्देश

१. जनसाधारण या समाज के किसी वर्ग विशेष में प्रचलित शब्दों का ही संग्रह करना होगा।
२. जिस विषय या समाज के जिस वर्ग को लें, उसके सभी भेदों, व्यापारों, गुणों, लक्षणों, रीति-रिवाजों, खान-पान, रहन-सहन सम्बन्धी शब्दों का संग्रह करना होगा।
३. जो शब्द जिस रूप में व्यवहृत हो, उसे ठीक उसी रूप में लिखना होगा। उसे साहित्य का रूप देने के लिए उसमें फेर-बदल या संशोधन नहीं करना होगा।
४. जिस शब्द को लें, उसको लेकर जो मुहावरे या कहावतें व्यवहृत हो, उन्हें भी वहीं सम्मिलित कर लेना होगा। पर कहावतों और कुटुम्ब मुहावरों को एक पृथक् और स्वतंत्र विषय समझा जायगा।
५. कार्य-कर्त्ताओं को जिन व्यक्तियों या वर्गों के बीच जाकर काम करना होगा, उनके प्रति अपनी सेवा, सहानुभूति और सद्भाव के द्वारा उनमें बिल्कुल छुलमिल जाने की चेष्टा करनी होगी, जिससे उनकी पूरी सहानुभूति और सहयोग प्राप्त हो सके और उनकी स्वयं संग्रह-कार्य के महत्त्व में विश्वास और दिलचस्पी पैदा हो सके।
६. शब्दों के स्थानीय उच्चारण पर विशेष ध्यान रहना चाहिये और उनकी ठीक उसी रूप में लिखा जाना चाहिए।

७. ए० शब्द का एक ही अर्थ में अनेक बार उल्लेख नहीं करना चाहिए।
८. अर्थ एवं विवरण पर विशेष ध्यान रहना चाहिए। उन्हें स्पष्ट रूप से लिखना आवश्यक है।
९. प्रत्येक विषय का पारिभाषिक शब्द यथासंभव एक साथ और पूर्ण रूप से लिखना चाहिए। निर्दिष्ट वर्गों में विषयों का विभाग और उप-विभाग भी कर लेना उचित है।
१०. जो पारिभाषिक शब्द न हों, उन्हें अलग ही लिखना चाहिए।
११. निर्देश-पत्र में दिए हुए प्रत्येक नियम को ध्यान-पूर्वक समझ या देखकर उपयोग में लाना आवश्यक है।
१२. शब्दों, कहावतों, मुहावरों और पहेलियों को प्रथक प्रथक पत्रों पर लिखना चाहिए। जहाँ शब्द मिले जायें, वहाँ दूसरे विषय न मिले जायें।
इन निर्देशों के अनुसार शब्द-संग्रह करने के लिए कार्य-कर्त्ताओं को एक सुत्रित तालिका दी गई थी, जो इस प्रकार थी :—

संग्रह की इस तालिका का निम्नलिखित विवरण भी निर्देश-पत्र के साथ संलग्न था:—

संग्रह की तालिका का विवरण

१. (क) साथ में दी हुई सूची के अनुसार जिस विषय के शब्दों का संग्रह किया जाय, उसका यहाँ उल्लेख करना होगा।
(ख) सूची के अनुसार समाज के जिस वर्ग में काम किया जाय, उसका यहाँ उल्लेख करना होगा।
२. जिस स्थान में काम किया जाय, उसका उसके सवर्णिकजन, मित्रा आदि का नाम देना होगा।
३. भोजपुरी, मगही, मैथिली, नागपुरिया आदि जिस भाषा के क्षेत्र में काम किया जाय, उसका उल्लेख करना होगा।
४. आबादी की संख्या ठीक-ठीक न मालूम हो सके तो पूछताछ से पता लगाकर अंदाज से देना होगा।
५. जहाँ जिस स्थान (गाँव आदि) में काम किया जा रहा है, वहाँ की जनता में हिन्दू, मुसलमान, हरिजन, किस्तान, जैन, आदिवासी, चेरो, सरकारो, संताली, उराँव, किसान, जमींदार, बंदई, लुहार आदि पेशेवालों में कौन अधिक है, कौन कम है, आदि बातों का उल्लेख करना होगा।
६. मिलठिलेवार संख्या।
७. शब्दों के साथ उनसे सम्बन्ध रखनेवाले मुहावरों को भी दर्ज करना होगा। कहावतों को स्वतंत्र विषय समझा जायगा। शब्दों के लिङ्ग का भी (स्त्रीलिङ्ग, पुलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग, उभयलिङ्ग या अलिङ्ग) इस प्रकार उल्लेख करना होगा।

- ये शब्द वहाँ जन-समाज में वस्तुतः जिस लिङ्ग में व्यवहृत होते हों, उसीका उल्लेख करना होगा, साहित्यिक व्याकरण के अनुसार नहीं।
८. अर्थ स्पष्ट और सरल भाषा में देना होगा। अटिक्ता दूर करने और अर्थ को तथा प्रयोग को और अधिक स्पष्ट करने के लिए जहाँ आवश्यक हो, वहाँ उदाहरण देने की जरूरत होगी, अन्यथा नहीं। उदाहरण के वाक्य उसी भाषा के हों, जिसके क्षेत्र में काम किया जा रहा हो या अपने बनाये हुए हिन्दी के सरल वाक्य हों।
९. (क) यहाँ इसका उल्लेख करना होगा कि वह शब्द केवल उसी वर्ग विशेष में प्रचलित है या उसके सामान्य जन-समूह में भी। जैसे, लटिया आदि शब्द जो सामान्यतः प्रचलित हैं, इन्हें सामान्य (सामा०) कहना होगा और 'पोर', 'पदमा', 'परई' आदि जो केवल 'कानू' जातियों में प्रचलित हैं, विशेष (विशे०) कहे जायेंगे।

संग्रह-कार्य निम्नलिखित विषय-सूची के अनुसार होता रहा है :—

वृत्तियों की विषय-सूची

१. पेशे के झोकार और सामग्रियाँ, उनके भेद और हिस्से। उदा०—हल, बैल, खेत, बीज आदि।
२. पेशे के ढंग और उनके काम करनेवाले जानवर।
३. पेशे की सवारियाँ, उनके भेद, हिस्से।
४. पेशे के ढंग तथा उसकी विविध क्रियाओं और अवस्थाओं से सम्बन्ध रखनेवाले शब्द (जैसे—जुताई, बुवाई, खुदाई, सिंचाई, खाद देना, सोहनी, रखवाली करना)।
५. पेशे की पैदावार के भेद।
६. पेशे या पेशे की सामग्रियों की बाजारों और देव।
७. पेशे या पेशे की सामग्रियों को बढ़ाने या मदद पहुँचानेवाली चीजें।
८. खाने-पीने की सामग्रियाँ, उनके हिस्से, भेद और उनसे बननेवाली चीजें।
९. मछालें।
१०. खाना बनाने की सामग्रियाँ।
११. घर के सामान, आसन, सूरपा आदि।
१२. कपड़े-ससे और कपड़ों के नाम (छीट आदि)।
१३. गहने और भुंगार के सामान।
१४. पूजा-पाठ, इबादत की सामग्रियाँ और स्थान।
१५. जमीन और मिट्टी के भेद।
१६. सौंभ, हवा, पानी, वादलों के भेद।
१७. तेल और माप।

१८. दूरी, दिशा और समय-सूचक शब्द (घड़ी, मौसम आदि)।
१९. घरेलू और पालतू जानवर, उनके रंग-ढंग, रहन-सहन, भेद, रहने के स्थान बीमारी, चरागाह, भोजनादि की सामग्रियाँ।
२०. पशु-पक्षी तथा अन्य जीव (मछली आदि)।
२१. घर-बाहर तथा बल-बल के कीड़े-मकोड़े (चूँटे-खोटी, हड्डे, सर्प, भोजन आदि)।
२२. लेन-देन, माहवारी हिसाब।
२३. जमीन के लगान और उसके भेद।
२४. घर, कोपड़े और मन्दिर-मस्जिद आदि के प्रकार, उनके हिस्से और बनाने की सामग्रियाँ, जैसे छत, छपर, छवाई आदि।
२५. शादी-व्याह के शब्द।
२६. शादी-व्याह के रस्म-रिवाज, (क) हिन्दुओं के, (ख) मुसलमानों के, (ग) क्रिस्तानों के, (घ) आदिवासियों के।
२७. (क) जात-कर्म (१) हिन्दुओं के (२) मुसलमानों के (३) क्रिस्तानों के (४) आदिवासियों के।
(ख) जनेऊ।
२८. मृत्यु-संस्कार (क) हिन्दुओं के (ख) मुसलमानों के (ग) क्रिस्तानों के (घ) आदिवासियों के।
२९. सोहनी-रोपनी की संस्कार-विधियाँ।
३०. पंचायत, समझौता, शपथ आदि तथा मामले-मुकदमे-संबंधी कचहरी के शब्द।
३१. अन्धविश्वास।
३२. सिजारत और बाजार।
३३. महाजन और कर्जदार के हिसाब-किताब।
३४. जमींदार और किसान के हिसाब-किताब।
३५. कर्ज, खर्च, रेहन आदि।
३६. मठ, त्योहार (तीज, छठ, होली, ईद, बकरीद, क्रिसमस) और उनकी सामग्रियाँ।
३७. रिक्शा, टमटम, फिटिन, वेवका, मोटर और हवाई जहाज के हिस्से।
३८. मार-पीट और युद्ध के हथियार।
३९. खेल-कूद, आलोट, मनोविनोद आदि, उनके भेद तथा लक्ष्यसंबंधी सामग्रियाँ।
(ऑलिम्पिडों, कबड्डी, गोली चोपड़, शतरंज, कुरती, कसरत, अक्बाड़े, मनोविनोद, गुललीखंडा, पतंग, कव्चरबाजी आदि)।
४०. गाली-गलौज।
४१. आशीर्वाद, सद्भावना तथा शिक्षाचार।
४२. नाच, गान, रासलीला के शब्द और गीत।

४३. मजहब, जात-पाँत के भेद।
४४. फूल, फल, पेड़-पौधे, घास-फूस और उनके भेद।
४५. बीमारियों के भेद।
४६. घरेलू, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक, संबंधसूचक (माँ, बाप, भाई, नहन, चाची, पड़ोसी, जवार)।
४७. गुण, भाव, सुख-दुख, राग-द्वेष आदि मन के विकार तथा अवस्थाओं के भेद और अन्य सांस्कृतिक वा भाषात्मक शब्द।
४८. उत्पातक—(क) प्राकृतिक—भूचाल, ज्वाल।
(ख) मानवीय—चोरी, बकैती, उसके भेद, व्यापार आदि (सँच आदि)।
४९. प्राकृतिक संबंधी—नदी, नद, झरने, मैदान, पहाड़ तथा अनुप्युक्त ताल-तड़ाग, पुल, बाग, बागीचे, कुएँ आदि।
५०. शरीर के विभिन्न अंग—आदमी के (पुरुष के, स्त्री के), जानवरों के, पशु-पक्षियों के, कीड़े-मकोड़ों के।
५१. जियों में प्रचलित खास शब्द और मुहावरे तथा उनकी गृह-कलाओं से संबद्ध शब्द।
५२. संख्यावाचक शब्द और गिनती।
५३. सर्वनाम के शब्द।
५४. रंगों के भेद और उनके नाम।
५५. खान आदि के शब्द।
५६. भिन्न-भिन्न कामों के भेद तथा कामों की विविध अवस्थाओं के भेद।
५७. स्वतंत्र मुहावरे।
५८. कहावतें।
५९. विविध।

संग्रहकर्ताओं को विषय-सूची के इन सभी पक्षों की सार्थकता को मल्ली-माँति समझाकर संग्रह-कार्य में इनका सदा ध्यान रखने की नता दिया गया था।

जन-समाज के वर्ग

जन-समाज के जिन विभिन्न वर्गों के बीच भेदकर संग्रह-कर्ताओं से संग्रह कराया जाता था, उसके लिए भी एक सूची तैयार की गई थी, जो यहाँ दी जा रही है :—

- | | |
|---------------------------------------|----------------|
| १. किसान | ७. मजदूर |
| २. जमींदार | ८. बहई |
| ३. साहूकार, महाजन और बनियाँ | ९. लुहार |
| ४. पुरोहित | १०. चमार-चमाइन |
| ५. नाई | ११. दुसाध |
| ६. राज तथा मकान की छाजनी आदि करनेवाले | १२. चोरी |

१३. धुनियाँ
१४. जुलाहा
१५. कुँजका
१६. रंगवाज
१७. कुँहार
१८. कहार
१९. दरजी
२०. लेली
२१. बजाज
२२. हलवाई
२३. मटथूँवा
२४. बुझिहारा-बुझिहारिन
२५. अहीर-अहीरिन
२६. पटवारी
२७. कारपरदाज
२८. सुनार
२९. सुहार
३०. पासी, चिकीमार
३१. मेहतर
३२. बाउरी (वनवाज की और)
३३. बेरो
३४. बेरो-बाटो
३५. कुली
३६. खान, रेलवे, मिलों और फैक्ट्रियों में काम करनेवालों के शब्द
३७. बीड़ीवाला
३८. तमोली और पानवाला
३९. माली
४०. गंधी
४१. बारी, पमरिया
४२. कचहरी और कानूनी मुकदमों के शब्द
४३. कलाओं के शब्द (लोकगीत, लोक-वाद्य, लोकनृत्य)
४४. लम्बू-कनात-लीमे के काम करनेवाले
४५. आतिशबाजी
४६. सेराकी
४७. बैद्य और हकीम के सामान्य शब्द
४८. साधु-सन्त तथा ओका-गुणी, जादू-टोना आदि।
४९. नट नटवे, बहुलिया और बाजीगरी
५०. हाई, नौकर, चपरासी, प्यादे आदि
५१. सिपाही, चौकीदार आदि।
५२. कानू
५३. मछुआ-मल्लाह
५४. पटवा
५५. ठठेरा
५६. कोयरी
५७. डोम
५८. कलाई
५९. दफ्तरी और जिल्दखान
६०. विविध—छप, सिलवट, सारादी, कलाई, मछु का काम, नालबंदी, हँट-गरबर, ताका-चामी, रहोद्योग—चरखा, बन विनना, कपास ओटना, चक्री चलाना, दही बिलोना।

बिहारी भाषा या भाषाएँ

वास्तव में 'बिहारी' नाम की कोई भाषा न तो बिहार के किसी भाग में बोली जाती है, न बिहार के बाहर। बिहार में किसी से भी पूछा जाय तो कोई भी 'बिहारी' भाषा का नाम नहीं लेगा। न तो प्राचीन शिष्ट साहित्य में ही और न लोक-साहित्य में ही,

किसी भाषा के अर्थ में, इस शब्द का प्रयोग पाया जाता है। भाषा के अर्थ में तो यह एक नया अपनाया हुआ नाम है, जो 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' के सिलसिले में प्रियर्सन द्वारा बिहार की प्रमुख भाषाओं—मगही, मैथिली, भोजपुरी—और उनके भेदों के लिए प्रयुक्त किया गया था। जैसे उन्होंने राजस्थान की बोलियों के लिए एक नया नाम गढ़ा था—'राजस्थानी', वैसे ही बिहार की इन बोलियों का 'बिहारी' नाम रख दिया था। अनएव महाराष्ट्र की भाषा को जिस अर्थ में 'मराठी', गुजरात की भाषा को जिस अर्थ में 'गुजराती', बंगाल की भाषा को जिस अर्थ में 'बंगला' और उड़ीसा की भाषा को जिस अर्थ में 'ओड़िया' कहते हैं, उस अर्थ में भाषार्थक 'बिहारी' शब्द को नहीं ग्रहण किया जा सकता। 'बिहारी' कोई एक भाषा या बोली नहीं, किन्तु उपर्युक्त तीनों भाषाओं का बोधक शब्द है। इसके अतिरिक्त हम यह भी देखते हैं कि इन तीनों भाषाओं की सीमा बिहार में ही सीमित नहीं है। इनमें से भोजपुरी-भाषी क्षेत्र का एक बहुत बड़ा भाग उत्तर प्रदेश में है। इसी प्रकार मगही-भाषी क्षेत्र का एक भाग (मानभूम का कूरमाली भाषी अंश) अभी हाल में बंगाल में मिला लिया गया है। मैथिली क्षेत्र के भी कुछ अंश बंगाल में सम्मिलित हैं। वस्तुतः प्रियर्सन ने बिहार में इन बोलियों के विस्तार-प्राधान्य तथा इनमें जो एक विशिष्ट और चनिष्ठ समरूपता है; इन्हीं आधारों पर उनका यह एक समान नामकरण कर दिया था। इन बोलियों या भाषाओं की यह व्यापक समानता उन्हें एक और बंगला से पृथक् करती है और दूसरी ओर अवधी तथा अन्य पच्छिमी बोलियों से भी भिन्न और विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। इन समानताओं को अभिव्यक्त करने के लिए, इनकी ओर ध्यान केंद्रित करने के लिए 'बिहारी' निश्चंदेह एक सार्थक संज्ञा है। यहाँ जो सक्षित विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमें हम इसी अर्थ में इस शब्द का आवश्यकतानुसार प्रयोग करेंगे।

इस दृष्टि से 'बिहारी' उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण में छोटानागपुर पठार तक और पूर्व में बंगाल की सीमा से लेकर पश्चिम में मध्य प्रदेश के सरगुजा तथा उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, फैजाबाद और बस्ती जिले के पूर्व तक बोली जाती है। इस प्रकार 'बिहारी' भाषा के पूर्व में बंगला, दक्षिण में ओड़िया, पश्चिम में छत्तीसगढ़ी, बघेली और अवधी जो हिन्दी की मध्यदेशीय उपभाषाएँ हैं, और उत्तर में नेपाली बोली जाती है।

इस सीमा के अंदर इस भाषा के साथ-साथ आदिवासियों में संताली, मुंडारी, हो, लक्षिया, कोरकु और भूमिज आग्नेय या निपाद कुल की और खोरॉव या कुर्कुल तथा मासतो द्रविड़ कुल की हैं।

'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' के अनुसार मैथिली, मगही और भोजपुरी इन तीनों 'बिहारी' बोलियों के बोलनेवालों की संख्या क्रमशः एक करोड़, पैंसठ लाख तथा दो करोड़ से ऊपर है। ये 'बिहारी' बोलियाँ आर्यभाषा परिवार की हैं; परन्तु उनमें यहाँ की

कोल और ब्रविज भाषाओं के भी प्रचुर प्रभाव हैं। ये हिंदी प्रदेश के पूर्वी अंचल की अंतिम उपभाषाएँ हैं। भारतीय संविधान में भी 'बिहारी' भाषा-क्षेत्र हिंदी प्रदेश के ही अंतर्गत रखा गया है। पूर्व में इनके आगे बंगला का अंचल प्रारम्भ हो जाता है।

बिहार में बोली जानेवाली भाषाओं की भौगोलिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए हमने एक विशेष मानचित्र तैयार किया है, जो इस कोश के आरंभ में दिया जा रहा है। उससे बिहारी भाषाओं के विस्तार, परिधीमा आदि का परिचय अनायास हो सकेगा।

‘बिहारी’ का हिन्दी और बंगला से संबंध

बंगला और ‘बिहारी’ के संबंध का विचार करते हुए ग्रियर्सन ने बंगला के ‘अ’ से ‘बिहारी’ (मैथिली) के ‘अ’ का साम्य दिखलाया है, किन्तु उन्हीं के लेखानुसार ‘बिहारी’ का ‘अ’ अक्षर आमत (Broad sound) है, जब कि बंगला का ‘अ’ अधिक आयत। और यह साम्य भी भोजपुरी-मगही में तो कदापि नहीं है। इस संबंध में ‘आयत’ से उनका आशय स्पष्टतः ‘वस्तु’ से था।

दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि बंगला में दंत्य ‘श’ के स्थान में तालव्य ‘श’ का उच्चारण होता है, जिसे प्राकृत व्याकरण में मागधी का लक्षण बताया गया है। पर आज किसी भी बिहारी बोली में ऐसा नहीं होता। बिहारी में सर्वत्र तालव्य ‘श’ और मूर्धन्य ‘ष’ के स्थान में दंत्य ‘स’ का ही उच्चारण होता है। उर्दू में तालव्य ‘श’ और संवर्धी ‘ज’ के लिए जो लिपि-चिह्न प्रयुक्त होते हैं, उनपर नुक्ते दिये जाते हैं। इस संबंध में मजाक करते हुए ग्रियर्सन ने लिखा है कि दुनिया भर के नुक्ते एक साथ मिलकर भी किसी बिहारी से ‘श’ को ‘स’ के सिवा तथा ‘ज’ को ‘ज’ के सिवा और कुछ कदापि उच्चारित नहीं करा सकते (बिहार पीजेंट लाइफ, भूमिका, पृ०-३)। हिंदी प्रदेश को दूसरी बोलियों में भी यही विधान है। शब्द-भंडार तथा परसर्गादि के रूप-संबन्धी अनेक व्याकरणिक कोटियों की दृष्टि से भी ‘बिहारी’ का हिंदी से घनिष्ठ संबंध है।

‘बिहारी’ के भेद-उपभेद

उपर्युक्त तीन उपभेदों के अतिरिक्त इधर व्याकरण-संबन्धी प्रयोगों के कुछ अन्य दृश्यमान अंतरों के आधार पर दो और नाम कल्पित करके ‘बिहारी’ के तीन के स्थान में अब कुछ लोगों के द्वारा पाँच उपभेद बताये जाने लगे हैं:—

मैथिली, अंगिका या भागलपुरी, वज्जिका, मगही और भोजपुरी। इनमें से अंगिका या भागलपुरी को ग्रियर्सन ने ‘छिकाछिकी’ नाम से मैथिली की ही एक उपभाषा बतलाया है, और वज्जिका को पश्चिमी मैथिली। स्वतः भोजपुरी के अंतर्गत पूर्वी, पश्चिमी और दक्खिनी (नागपुरिया) — ये भेद तो किये ही जा सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन सभी भेदों और उपभेदों में आंतरिक साम्य होते हुए भी कुछ-न-

कुछ अपनी-अपनी पृथक् विशेषताएँ भी हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि इन सबको केवल दो भेदों में विभक्त करके मगही को सरलता से मैथिली के ही अंदर ले लिया जाय। मगही और मैथिली का गठन कई अंशों में परस्पर भिन्न है। दोनों के व्याकरण और उच्चारण में भी পার্থक्य है। शब्दरूप और क्रियाकूप भी भिन्न-भिन्न हैं।

वस्तुतः बिहार की ये सभी उपभाषाएँ पूर्वकाल में संभवतः किसी एक ही मूल से निकलकर नये स्रोतों की तरह अपने पृथक्-पृथक् मार्गों से भिन्न रूपों में प्रवाहित होती आ रही हैं। यह मूल भाषा ‘मागधी’ बताई जाती है, जो बंगला, असमी और ओरिया का भी उद्गम मानी जाती है। इस दृष्टि से ये सभी बहनें हैं। एक रूप नहीं, समरूप हैं। मगही और मैथिली से भोजपुरी में अपेक्षाकृत कुछ अधिक अंतर है। संभव है, उस पर अर्ध-मागधी का भी कुछ प्रभाव है। सब पूछें तो भारतवर्ष की किसी भी आधुनिक भाषा को किसी विशेष प्राकृत या अपभ्रंश के साथ हम निश्चयात्मक रूप से संबद्ध नहीं कर सकते हैं, क्योंकि जेरा टर्नर (R. L. Turner, Gujarati, Phonology, J. R.A.S., १९२५ ई., पृ०-३२६) और ब्लॉक (J. Block, La Formation de La Langue Marathi) महोदयों ने इंगित किया है।

प्राचीन प्राकृत या अपभ्रंश काल में किसी विशेष जनवर्ग द्वारा वास्तविक रूप में बोली जानेवाली भाषा का कोई प्रामाणिक लिखित उदाहरण आज हमें उपलब्ध नहीं है। और दूसरी ओर वर्तमान देशी भाषाओं में तीर्थ-यात्रा, सांस्कृतिक-एकता, शादी-व्याह के संबंध, देश-प्रदेश के यातायात तथा भाषागत समान परिवर्तनों के कारण बहुत कुछ मिश्रण हो चुका है। ऐसी दशा में प्राकृतिक वैयाकरणों की शब्दावली का आश्रय ग्रहण करके हम अधिक-से-अधिक यही कह सकते हैं कि ‘बिहारी’ प्राच्यभाषा-वर्ग के अंतर्गत आती है, जिसके पश्चिमी रूप अर्धमागधी और पूर्वी रूप मागधी, इन दोनों के बीच के प्रदेश से संबद्ध होने के कारण उसमें कुछ-कुछ दोनों के लक्षण पाये जाते हैं।

कुछ सामान्य नियम

बिहारी की विशेषता में उसकी ध्वनियों के रागात्मक तत्त्व भी उल्लेखनीय हैं। कई ध्वनिराग तो ऐसे हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। उनका विधुत विश्लेषण, जहाँ तक भोजपुरी के संबंध में लागू है, मैंने संतन विश्वविद्यालय के अपने शोध-प्रबंध में किया है। उच्चारण तथा बिहारी शब्दों के यथावत् अभ्यसन के लिये इनका थोड़ा परिचय अपेक्षित है। उदाहरण के लिये एक लिखित-रूप लीजिए—‘देखल’।

बिहारी में यह विभिन्न रागों में उच्चारित होकर तीन विभिन्न अर्थों का द्योतक है—

देख लऽ—देख लो।

देख लऽ—तुमने देखा।

देखल—देखा हुआ।

पदान्त के ‘अ’ का उच्चारण बिहारी में कुछ स्थितियों में होता है। समझाने के लिए ग्रियर्सन (लिमिटेड सर्वे ऑफ इंडिया, हिन्द—१, भाग—१, १९२७ ई०, हिन्द—५,

भाग—२, १६०३ ई०) ने बहुत प्रयत्न किया। पर ध्वनि विज्ञान की प्रणाली के बिना उसका ठीक-ठीक वर्णन कठिन था। इस ध्वनि-संकेत के लिए नागरीलिपि में 'ऽ' इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

बिहारी वाक्यों तथा शब्दों के संगठन में बलाघात, स्वराघात तथा मात्रा की बड़ी रोचक तथा विशिष्ट व्यवस्था है। मात्रा-व्यवस्था के संबंध में एक महत्वपूर्ण नियम यह है कि कुछ खुले हुए दीर्घाक्षरों की धातुओं—जैसे, खा, जा आदि के रूपों को छोड़कर किसी शब्द या पद के अंतिम स्थान से दो स्थान पूर्व का कोई अक्षर दीर्घ रूप में नहीं टिक सकता। उसका हल्कीकरण अवश्यमावी है। जैसे—

बाहर—बाहरी

बोली—बोलिया

देखल—देखली

इनमें दाहिनी ओर के रूपों में प्रथमाक्षर के स्वरों का उच्चारण ह्रस्व होता है। ग्रियर्सन ने इस रागात्मक प्रवृत्ति का उल्लेख 'उपधापूर्व' का नियम' इस नाम से किया है।

मात्रा की रागात्मक प्रक्रिया

अ—आकार की मात्रा का एक वह रूप है, जो सामान्यतया हिन्दी की सभी उपभाषाओं में है। यथा—अग्नि, अरल।

दूसरा रूप वह है, जो अतिह्रस्व या अर्धह्रस्व है और जो शब्दों के बीच में आया करता है। यह शब्दों की रागात्मक प्रवृत्ति के कारण स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ता है अथवा अर्धश्रुत जैसा होता है। इसे ग्रियर्सन ने 'अश्रुत स्वर' कहा है। यथा—'केतवारा', 'पतरवाहा', इन शब्दों के तीसरे 'र' में स्थित 'अ' मात्रा का ध्वन्य नहीं होता है। यह एक ऐसा 'अ' है जो द्रुतगति के मापण में शून्यवत् मूल्य भी ग्रहण कर ले सकता है। ऐसे शब्दों को लिखा तो जाता है, केतवारा, पतरवाहा के रूप में; किंतु उच्चारण के अनुसार ये 'केतवारा' 'पतरवाहा' जैसे हो जाते हैं।

सामान्यतः शब्दों के अंतिम 'अ' का उच्चारण नहीं होता है। कुछ विशेष रूपों को छोड़कर अन्यत्र शब्दांत का 'अ' अनुच्चरित रहता है और अंतिम वर्ण हिन्दी के समान ही हलंतवत् उच्चरित होता है; यथा—'कल'। किंतु लिखने में वह हलंत न लिखा जाकर पूरा लिखा जाता है।

जिन रूपों में अंतिम 'अ' उच्चरित होता है, उनमें उसका कुछ बहुत उच्चारण होता है।

यत्र-तत्र भागलपुरी रूपों में यह अंतिम 'अ' 'ओकार' रूप में इस कोश में अंकित किया गया है, क्योंकि शब्द-संग्रह करनेवालों ने उसे उही प्रकार उल्लिखित किया है।

आ—दीर्घ 'आ' की मात्रा का उच्चारण एक तो वैसा ही होता है जैसा कि सामान्यतः हिन्दी की दूसरी उपभाषाओं में। किंतु इसका बिहारी भाषाओं में ह्रस्व उच्चारण भी होता है। जैसे—आवमान, मालपूजा आदि में आदि का 'आ'।

इ-उ—शब्द के अंत में ह्रस्व इ, उ की ध्वनि अर्धश्रुत होती है, जैसे—मैथिली में 'कयलन्हि', 'करियहु', 'पानि' प्रयोगात्मक प्रणाली से जाँच करने पर भोजपुरी में व्यवहृत इस अंतिम ह्रस्व 'इ' और 'उ' की ध्वनि कुक्कुसाइट की ध्वनि सिद्ध होती है, जैसे आगि, मधु।

ए—ओ

ये दोनों दीर्घस्वर बिहारी में दीर्घ के अतिरिक्त ह्रस्व भी होते हैं। इनके ह्रस्वीकरण के नियम वे ही हैं जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। उदा०—अंगेबिहा, अगोरिया। इन दोनों शब्दों में अंतिम दो अक्षरों के पूर्व के ए और ओ ह्रस्व हो गये हैं। यही निबन्ध सर्वत्र लागू है। इसलिए कोश में इनके लिए कोई पृथक चिह्न देना आवश्यक नहीं समझा गया।

सन्ध्यक्षर स्वर

पश्चिमी हिन्दी में नियमित रूप से सन्ध्यक्षर स्वर व्यवहृत होते हैं, परंतु बिहारी बोलियों में ये प्रायः संयुक्त-स्वर के रूप में उच्चरित होते हैं। इसलिए हम इन्हें स्वरानुक्रम या यव् श्रुति रूप में ग्रहण कर सकते हैं। यथा 'ऐ' के स्थान में 'अइ', 'अय्' और 'ओ' के स्थान में 'अउ-अव्'। उदाहरण—एँठा के स्थान में अइँठा, चेत के स्थान में चइत, और के स्थान में एउर।

साथ ही ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जिनमें 'ऐ' का उच्चारण 'अय्' और 'ओ' का उच्चारण 'अव्' होता है।

यथा—बौद के स्थान में बवद। बैर के स्थान में बयर। बैल के स्थान में बयल।

संभव है, ये 'अय्'। अव् राग वाले शब्द पश्चिम के आगत शब्द हों।

साधारण बोलचाल में द्रुतगति के उच्चारण में सन्ध्यक्षर स्वर के रूप में भी इनका उच्चारण सुना जाता है, जिसमें 'ऐ' के एक उच्चारण में सन्ध्यक्षर की गति 'अ' से 'इ' की ओर और दूसरे में 'अ' से 'ए' की ओर एवं 'ओ' के एक उच्चारण 'अ' से 'उ' की ओर और दूसरे में 'अ' से 'ओ' की ओर रहती है।

कोश में इन भेदों के प्रदर्शन के लिए अलग लिपि-चिह्न का प्रयोग नहीं किया गया है, बल्कि बिहारी बोलियों में जो रूप सामान्यतः प्रचलित हैं, वही दिये गये हैं। अइ और अउ के उच्चारण में तो स्वरांशुक्रम वाला रूप दिया गया है और अय् तथा अव् वाले रागात्मक रूपों को सन्ध्यक्षर श्रुतक लिपि-चिह्न ऐ तथा औ द्वारा ही संकेतित कर दिया गया है। बिहारी उच्चारण के अनुसार तो अय् और अव् वाले रूप ही देना चाहिए

या, किंतु हिंदी में और इन रूपों में संयोजक स्वर तथा इन्हीं मात्राओं का प्रयोग होता है, इसलिए इस कोश में इसी हिंदी प्रचलित रूप का आश्रय लिया गया है।

यदि किसी क्षेत्र से 'अइ' और 'अउ' वाले रूपों का रूपांतर 'ऐ' और 'औ' वाला रूप प्राप्त हुआ है तो उन रूपों का भी यथास्थान समावेश कर दिया गया है। यथा—कैंत, कैंत, कउर, कोर।

य, व की भुति

किसी शब्द में इकार या उकार के बाद यदि कोई दूसरा स्वर हो तो दोनों स्वरों के बीच क्रमशः 'य' और 'व' की भुति होती है। यह भुति बराबर लिखी नहीं जाती है। इसलिए हमने कहीं भुति सहित रूपों का व्यवहार किया है और कहीं भुति रहित। जहाँ भुतियों का व्यवहार नहीं किया गया है, वहाँ भी ये उपयुक्त रूप में समझी जा सकती हैं। यथा—करिआ-करिया, अँलुआ-अँलुवा।

अनुस्वार और अर्धानुनासिक

इस कोश में शब्द के मध्य के निःस्वर पंचमवर्ण अनुस्वार के रूप में व्यवहृत हुए हैं और स्वरों के अनुक्रम में ये सबसे पहले रखे गये हैं।

बिहारी के किसी शब्द में अंत के दो या दो से अधिक अक्षरों के पूर्व का अनुस्वार अर्धानुनासिक रूप में परिणत हो जाता है। यथा—अँटल, अँगेकिहा, अँकुर, अँकरियाइल।

संस्कृत के अनुस्वारयुक्त तत्सम शब्द यदि दो अक्षरोंवाले हों तो बिहारी के तद्भव रूप में उस शब्द के पंचमवर्ण के पूर्व का 'अ' स्वर दीर्घ और अर्धानुनासिक हो जाता है। यथा—पंक से पाँक, बँट से बाँट, बँद से बाँद।

कोश में सर्वत्र अनुस्वार की तरह अर्धानुनासिक भी वर्णानुक्रम में स्वरों के पूर्व ही रखे गये हैं। अनुस्वार और अर्धानुनासिक में कोई पौर्वापर्य नहीं बरता गया है।

अनुस्वार अथवा पंचम वर्ण का संयुक्त रूप

अनुस्वार अथवा पंचम वर्ण के बाद यदि तृतीय या चतुर्थ वर्ण का संयोग हो तो बिहारी में ऐसे शब्दों के चार रूप समभव हैं—पंचम के साथ पंचम, अर्धानुनासिक के साथ मात्रा समतोलन के नियमानुसार दीर्घीकरण अथवा दीर्घीकरण के साथ पंचम वर्ण का व्यवहार। चतुर्थ वर्ण अनुनासिक के साथ तो अपने असली रूप में रहता है, अन्यथा 'ह' के साथ संयुक्त होकर महापाण नासिक स्वर के रूप में परिणत हो जाता है। जैसे—

अनुस्वार अथवा पंचम और तृतीय या चतुर्थ के संयुक्त रूप	द्वितीय या नासिक महापाण	अर्धानुनासिक	नासिक
लंभा/लम्भा	लम्भा	लंभा	लाम्भा
लंभा/लम्भा	लम्भा	लंभा	लाम्भा
कंभा/कम्भा	कम्भा	कंभा	काम्भा

इनमें से प्रथम दो रूप, जो अधिक प्रचलित हैं, वे ही यहाँ इस कोश में दिये गये हैं।

इ और र

बिहारी भाषाओं में 'इ' और 'र' का भेद तो है, किन्तु इन दोनों के उच्चारण में नियमितता नहीं है—विशेषतः मैथिली में। अतः एक ही शब्द में ये दोनों उच्चारण संभव हैं, कभी 'इ' कभी 'र'। यथा—अँगेकिहा, अँगेरिहा; अँगेकी, अँगेरी। इस कोश में यथासंभव ये दोनों ही रूप दिये गये हैं। किंतु जहाँ ऐसे दोनों रूप नहीं भी हों, वहाँ भी दो रूप संभावित समझने चाहिए। 'इ' और 'र' के इस विक्षेप से मूल शब्द के अर्थ में कोई भेद नहीं होता है। ऐसे स्थलों में उन्हें स्थान ही मानना संगत होगा।

मगही में कभी-कभी महापाण स्वरि में विपर्यय भी हो जाता है, यथा—'चइ' के स्थान में 'चइक' के।

हमने कोश में निम्नलिखित क्रम का अनुसरण किया है—

कोश में व्यवहृत क्रम

१। कोश के आरम्भ में अक्षर-दीर्घक 'अ', 'आ' आदि १९ प्वाहंट काले में दिया गया है।

२। इसके बाद वर्णानुक्रम से कृषिवाची मूल शब्द दिये गये हैं। ये १२ प्वाहंट सं० १ में हैं।

३। शब्दों के पश्चात् निर्देश चिह्न (—) देकर गोल कोष्ठ में व्याकरण संकेत (सं०, कि०) आदि दिये गये हैं।

४। तत्पश्चात् मूल शब्द का प्रधान पारिभाषिक अर्थ दिया गया है। यदि एक शब्द के कई पारिभाषिक अर्थ हैं, तो किसी भी अर्थ के पहले कोष्ठक में संख्या-क्रम देकर विभिन्न अर्थों का उल्लेख किया गया है। इसमें प्रयास यही रहा है कि अर्थ की प्रधानता के अनुसार ही उनका क्रम भी हो। यदि उस शब्द का कोई सामान्य अर्थ भी है, तो वह उसी क्रम में अंत में दिया गया है।

५। अर्थ के पश्चात् जिस क्षेत्र में वह अर्थ प्रचलित है, उस क्षेत्र का संक्षिप्त रूप कोष्ठक में दिया गया है। यदि एक से अधिक क्षेत्रों में वह अर्थ प्रचलित है, तो उन सभी क्षेत्रों का संक्षिप्त रूप दिया गया है। इस संक्षिप्त रूप का अर्थ है कि या तो वह शब्द उस अर्थ में निर्दिष्ट क्षेत्र में प्रचलित है, अथवा उक्त अर्थ में उस क्षेत्र से संगृहीत हुआ है। उसका यह अर्थ कदापि न समझा जाय कि केवल उक्त क्षेत्र में ही वह शब्द अथवा अर्थ प्रचलित है। संभव है, वह दूसरे क्षेत्रों में भी हो। यहाँ मुख्यतः इसलिए उस क्षेत्र का उल्लेख किया गया कि उक्त शब्द अथवा अर्थ निर्दिष्ट क्षेत्र से ही संगृहीत हुआ है।

अर्थ संकेत पादक सं० १ मोनो टाइन में दिया गया है।

६। कोष्ठक में क्षेत्र-निर्देश के पश्चात् यदि उक्त शब्द का कोई दूसरा भी पर्यायवाची शब्द है, तो उसका भी 'दे० (देखिए)' के बाद उल्लेख कर दिया

गया है। यह दे० "... .." कभी-कभी मूल शब्द के बाद में ही प्रयुक्त हुआ है और वहाँ अर्थ न देकर केवल पर्याय का निर्देश कर दिया गया है, जिसे कि उस पर्याय के आगे वह देख लिया जाय।

७। इसके उपरान्त 'पर्या०' (पर्याय) देकर पारिभाषिक शब्द के अनेक पर्याय दिये गये हैं और प्रत्येक पर्याय के आगे गोल कोष्ठक में क्षेत्र का संक्षिप्त रूप है। एक से अधिक पर्याय के रहने पर सभी का पूर्वोक्त क्रम से उल्लेख किया गया है। ये सभी पर्याय विहारी भाषाओं के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त शब्द हैं। यत्र-तत्र आजमगढ़ और बनारस के आस-पास के भी शब्द दे दिये गये हैं; क्योंकि ये दोनों स्थान भोजपुरी से सम्बद्ध हैं। ऐसे शब्दों के आगे भी स्थान निर्देश कर दिया गया है।

८। पर्यायों के बाद बड़े कोष्ठकों में कोश के मूल शब्द के वैयुक्तिक या पुनर्निर्मित समूह दिये गये हैं। इनमें यथासंभव शब्द के ऐतिहासिक विकास को ध्यान में रखा गया है। साथ ही कहीं व्युत्पत्ति के साथ और कहीं बिना व्युत्पत्ति के भी मूल शब्द के तत्सम संस्कृत शब्द और आगे तद्भव, पालि, प्राकृत तथा आधुनिक प्रादेशिक भाषाओं के पर्याय रूप दे दिये गये हैं। प्रत्येक शब्द के आगे कोष्ठक में तत्तद् भाषा का संक्षिप्त रूप निर्दिष्ट है। इसके अतिरिक्त इसी कोष्ठक में शब्दों की व्युत्पत्ति या पुनर्निर्मित-विषयक विभिन्न मत भी यथास्थान निर्देश के साथ दिये गये हैं। यहाँ जिस पुस्तक अथवा लेखक का नाम जिला गया है, उसके संक्षिप्त रूप के पहले एक निर्देश-चिह्न लगा दिया गया है।

हमारी लोकभाषाओं में कई ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जो संस्कृत के विभिन्न कोशों में तो उसी रूप में सम्मिलित हैं, पर संस्कृत पालि और प्राकृत के साहित्य में उनका प्रयोग नहीं मिलता। ऐसे स्थलों में संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि के कोशों से उन शब्दों के उद्धरण दे दिये गये हैं और अन्त में उन कोशों के संक्षिप्त रूप कोष्ठक में दिये गये हैं। जैसे—'काका' के लिए 'कटाह' और 'पैका' के लिए 'पैयक'।

यत्र-तत्र आवश्यकतावश कोष्ठक के अन्दर और कहीं-कहीं बाहर भी, शब्द की विशेष व्याख्या के लिए 'टि०' (टिप्पणी) देकर विस्तृत विवरण या अर्थ दिया गया है।

कोष्ठक के अन्दर व्युत्पत्ति आदि के रूप तिर्यगक्षर (१२ प्वाइंट इटालिकस) में दिये गये हैं।

शुद्धार्थ-निरूपण

इस कोश में बिहार प्रदेश के विभिन्न जिलों अथवा क्षेत्रों में बसनेवाले कुपक-वर्ग में प्रचलित और प्रयुक्त होनेवाले कृषि-संबंधी पारिभाषिक शब्द ही रखे गये हैं। इसमें यथाभूत मूल शब्द रखे गये हैं, उनमें कोई साहित्यिक संशोधन नहीं किया गया है। इन शब्दों के मूल रूप में होते हुए भी इनमें उच्चारण ध्वनि का निर्देश नहीं किया गया है। ध्वनि के लिए आगे कुछ प्रक्रियात्मक नियम दिये जा रहे हैं, जिनसे उनकी मूलगत ध्वनि का ज्ञान हो जाने से ऐसे ध्वनि-चिह्नों के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

ये सभी मूल शब्द प्रातिपदिक रूप में रखे गये हैं। इनके विभक्त्यन्त रूप का प्रयोग यहाँ नहीं किया गया है। बिहार की तीनों भाषाओं में शब्दों के वहाँ समान रूप हैं, वहाँ वे उन्हीं रूपों में दिये गये हैं। पर किसी शब्द के रूप में भेद होने पर उस भिन्न रूप शब्द की मूल शब्द मानकर वृषक् अपने अनुक्रम में रखा गया है।

अर्थ समान होने पर तीनों भाषाओं में पाये जानेवाले भिन्न रूप शब्द पर्याय के रूप में मूल शब्द के आगे या अर्थ के बाद दे दिये गये हैं।

एक ही शब्द के अनेक अर्थ होने पर उन अर्थों को अनुक्रम-संख्या देकर अलग-अलग दिखाया गया है।

जहाँ आवश्यक समझा गया है वहाँ वस्तुओं के अर्थ और रूप को स्पष्ट करने के लिए चित्र भी दे दिये गये हैं।

इन शब्दों की मैथिली, मगही, भोजपुरी या भागलपुरी आदि बोलियों की सीमा में बाँचने का प्रयास नहीं किया गया है, बल्कि तत्तद् भाषा-क्षेत्र के अंतःपाती क्षेत्र-विशेष के नाम का संकेत कर देना ही हमारा आशय है। अतः सामान्यतः हमने जिलों अथवा उनके अन्दर के क्षेत्रों के नाम-वे दिये हैं। मैथिली, मगही, भोजपुरी आदि का उल्लेख असावधानिक है किन्तु ये सभी उल्लिखित क्षेत्र मै०, मग०, भोज० और भाग० के अन्दर ही आते हैं। इन भाषाओं के क्षेत्र की सीमा के बाहर का कोई क्षेत्र इनमें सम्मिलित नहीं है।

अवतक भाषा-वैज्ञानिकों ने बिहार की पटना कमिश्नरी, तिरहुत कमिश्नरी, और भागलपुर कमिश्नरी के संतालपरगने के कुछ भागों और संताली को छोड़कर सभी जिलों में बोली जानेवाली बोलियों का मैथिली, मगही और भोजपुरी के ही नाम से वर्गीकरण किया है। कोश में दिये हुए अपने मानचित्र में भी हमने इसी मान्यता का अनुसरण किया है। परन्तु इसके प्रतिकूल आज भागलपुरी क्षेत्र के कुछ कंटों से सहज मातृभाषा प्रेम से प्रेरित एक अशुद्ध आन्दोलित स्वर सुनाई पड़ रहा है कि सहारन बिले के उत्तरी भाग को छोड़कर संपूर्ण भागलपुर कमिश्नरी की बोली 'भागलपुरी' है, जो मैथिली से सर्वथा भिन्न है। मिथर्सन ने इसे 'छिका-छिकी' कहा है। किन्तु हमें यहाँ न तो इसका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन ही प्रस्तुत करना है और न इसके पक्ष-वपक्ष में हमारा कोई आग्रह हो है। कोश प्रस्तुत करते समय मुख्यतया हमारा यही ध्यान रहा है कि भाषाओं का क्षेत्रीय महत्त्व होने के कारण उनका निर्देश भी क्षेत्र-विशेष के नाम से ही हो। अतः हमने सर्वत्र क्षेत्र-विशेष का उल्लेख किया है, न कि किस भाषा-विशेष का। ठुलनात्मक अध्ययन की सुविधा के लिए क्षेत्रीय विविधताओं का निर्देश अधिक-उपयुक्त है। क्षेत्रीय विविधताओं के निर्देश में यहाँ केवल जिलों का ही निर्देश नहीं किया गया है, प्रत्युत जिलों के अन्तर्गत क्षेत्रों का भी निर्देश दिया गया है। यथा—द० मु०, द० भा०, द० प० याहा० आदि।

क्रिया का मूल रूप

(१) इस कोश में क्रिया का मूल रूप 'ल' प्रत्ययान्त लिया गया है। यथा—
छँटल=छँटना, करल=करना आदि।

सामान्यतया बिहार की तीनो भाषाओं में क्रियार्थक संज्ञा में 'ल' प्रत्यय ही लगता है। इसलिए यहाँ यही सामान्य रूप लिया गया है। इसके अतिरिक्त 'व' प्रत्ययान्त एक और रूप भी है, जो मैथिली क्षेत्र में प्रचलित है। यथा—लाएव, जाएव आदि। परन्तु यह रूप विशेष स्थलों में ही व्यवहृत होता है। इसलिए क्रियार्थक संज्ञा का यहाँ सामान्य रूप 'ल' प्रत्ययान्त ही रखा गया है।

मगही, मैथिली, भोजपुरी और मागलपुरी सभी भाषाओं में समान रूप से 'व' मविध्यार्थक प्रत्यय है, किंतु मगही में विशेष क्षेत्र में 'व' के बदले 'म' का भी प्रयोग होता है, यथा=जाएव=जाँएगे, जायम—जायँगे।

बिहारी भाषाओं की क्रियाओं के भूतकालिक रूपों में सामान्यतया 'ल' प्रत्यय लगता है। यह 'ल' कृत प्रत्यय है। अतः यह सामान्यभूत और दूसरे भूतकालिक मेरो का भी प्रत्यायक है। साथ ही यह 'ल' क्रियात्मक विशेषण प्रत्यय भी है।

उदाहरण—छँटल=छँटा हुआ, समाया हुआ।

(२) प्रेरणार्थक क्रिया का मूल रूप 'आवल' प्रत्यय लगाकर रखा गया है। यथा—छँटल का छँटावल, छँटल का छँटकावल।

'आवल' का कहीं-कहीं 'आयल' रूप होता है। यथा—छँटल से छँटकायल। छँटकावल और छँटकायल—इन दोनों रूपों में क्रमशः 'व' और 'य' की भ्रुति है। तदनुसार इनके रूप आउल, आओल और आइल, आएल भी लिखे जा सकते हैं। इन रूपों का समावेश सर्वत्र नहीं किया गया है; क्योंकि उन्हें स्वयं समझा जा सकता है। 'व' या 'य' भ्रुतिविषयक नियम आगे दिये जा रहे हैं।

(३) 'आवल' और 'आयल' प्रत्यय प्रातिपदिक रूपों से चातु (नाम-चातु) बनाने में भी प्रयुक्त होते हैं। यथा—छँगुरी > छँगुरिआवल, छँलुआ > छँलुआयल।

क्रिया का उपयुक्त रूप ही इस कोश में व्यवहृत हुआ है। काल, वचन आदि के अनुसारी रूप इसमें छोड़ दिये गये हैं। हिन्दी का 'ना' प्रत्ययान्त रूप बिहारी भाषाओं में नहीं होता।

जहाँ-जहाँ क्रिया के मूल रूप के लिए 'ल' प्रत्ययान्त क्रियार्थक संज्ञा का रूप यहाँ दिया गया है, वहाँ-वहाँ क्रिया के साथ प्रायः (वि०-विशेषण) का निर्देश करके विशेषण-विशिष्ट अर्थ भी दिये गये हैं। यदि कहीं ऐसा न भी हो, तो ऐसे स्थलों में सर्वत्र 'ल' प्रत्ययान्त क्रिया रूप को विशेषण भी समझ लेना चाहिए और वहाँ वे अर्थों का अवलोकन कर लेना उचित है।

क्रियाओं के आन्तरिक भेद—चकर्मक, अकर्मक का व्याकरण-संबंधी निर्देशों में उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा गया है; क्योंकि यह तो अर्थ और प्रयोग से ही जाना जा सकता है।

व्याकरण, व्युत्पत्ति तथा अर्थ-विषयक संक्षिप्त रूप

अ० क्रि०	अकर्मक क्रिया
अनु०	अनुकरणात्मक
अनुवा०	अनुवादात्मक
अल्पा०	अल्पार्थक
अल्पा० प्र०	अल्पार्थक प्रत्यय
अव्य०	अव्यय
अव्	अव्ययार्थक
उदा०	उदाहरण
कहा०	कहावत
क्रि०	क्रिया०
क्रि० प्र०	क्रिया-प्रत्यय
क्रि० वि०	क्रिया-विशेषण
टि०	टिप्पणी
दे०	देखिए
देशी	देशी
देशी प्र०	देशी प्रत्यय
वा०	वातु
ना० वा०	नाम वातु
ना० वा० प्र०	नाम वातु प्रत्यय
निवे०	निवेदनात्मक
पुं०	पुंलिंग
मेर०	मेरुवार्थक
मिज्ञा०	मिलाइए
मु० प्र०	मुस्लिम प्रयोग
मु० री०	मुस्लिम रीति
मुहा०	मुहावरा
यो०	योगिक
ला०	लाक्षणिक
लोको०	लोकोक्ति
वि०	विशेषण
वि० प्र०	विशेषण-प्रत्यय
विशे०	विशेष प्रयोग
वे०	वैकल्पिक प्रयोग

सं०	संज्ञा
संभ०	संभवतः
स० कि०	सकारक किया
साह०	साहचर्यार्थक
सामा०	सामान्य
स्त्री०	स्त्रीलिंग
स्वा० प्र०	स्वाधिक प्रत्यय
<	से व्युत्पन्न ।
>	रूप-परिवर्तन ।
✓	संस्कृत के मूल चाटु ।
=	सम, समार्थ, अर्थ ।
?	संभावित, संशयास्पद ।
[]	व्युत्पत्ति, दूसरी भाषाओं के पर्याय ।
()	(१) शब्द के आगे व्याकरणविषयक निर्देश, शब्द और विवरण के आगे स्थान-निर्देश, भाषा-निर्देश, कहीं-कहीं स्पष्टीकरण । (२) मूल चाटु के आगे उस चाटु का अर्थ, कहीं मूल रूप में, कहीं हिंदी में । (३) बड़े कोष्ठ के अन्तर्गत पुस्तक-निर्देश, भाषा-निर्देश, प्रत्यय-निर्देश ।
×	गुणात्मक, यौगिक या समस्त पद का विग्रहीत रूप ।
—	पुस्तक-निर्देश, अर्थ का स्पष्टीकरण ।
•	संक्षिप्त रूप के आगे ।
⊗	पुनर्निर्मित शब्द का संभावित रूप ।

भाषाविषयक संक्षिप्त रूप

ई	अँगरेजी
अ०	अरबी
प्र०	अवधी
अस०	असमिया
उ० प० मै०	उत्तर-पश्चिम मैथिली
उ० पू० मै०	उत्तर-पूर्व मैथिली
उ० मै०	उत्तरी मैथिली
उड्	उड्
ओ०	ओड़िया
क०	कन्नड़
कश्म०	कश्मीरी
काफि०	काफिरिस्तानी

कुमा०	कुमाऊँनी
गु०	गुजराती
गो०	गोक भाषा
जर०	जर्मन भाषा
त०	तमिल
ते०	तेलुगु
द० प० मै०	दक्षिण-पश्चिम मैथिली
द० पू० मै०	दक्षिण-पूर्व मैथिली
द० मै०	दक्षिण मैथिली
दर०	दरभंगा
दर०-१	दरभंगा सदर और मधुबनी सचिवालय की मैथिली
दरदी०	दरही (कश्मीरी) भाषा
ने०	नेपाली
पं०	पंजाबी
प० मै०	पश्चिमी मैथिली
पश्त०	पश्तो
पहा०	पहाड़ी
पा०	पालि
पुर्त०	पुर्तगाली
प्रा०	प्राकृत
प्रा० का०	प्राचीन फारसी
फा०	फारसी
बिहा०	बिहारी
भोज०	भोजपुरी
मग०	मगही
मग०-५	मगही ५—दक्षिण-पूर्वी अर्थात् शेखपुरा, बरजोषा (मुंगेर) में प्रयुक्त मगही
म० भा०	मध्य भारतीय (मिडिल इंडोआर्यन)
मरा०	मराठी
मल०	मलयालम
मार०	मारवाड़ी
मे०	मैथिली
रोमा०	रोमानी—योरप के जर्मियों की भाषा
ल०	लहँदा

ले०	लैटिन
लो० जर०	लोप्रर जर्मनी
संता०	संताली
संस्क०	संस्कृत
सि०	सिंधी
सिंह०	सिंहली
हि०	हिंदी

भौगोलिक आधारविषयक संक्षिप्त रूप

अमे०	अमेरिका
आम०	आजमगढ़
उ०	उत्तर
उ० प०	उत्तर-पश्चिम (बिहार प्रदेश का उत्तरी पश्चिमी भाग)
उ० प० बि०	उत्तर-पश्चिम बिहार
उ० पू०	उत्तर-पूर्व बिहार
उ० भा०	उत्तर भागलपुर
उ० मुँ०	उत्तर मुँगेर
गं० उ०	गंगा के उत्तर (बिहार)
गं० द०	गंगा के दक्षिण (बिहार)
गया	गया (जिला)
चंग०	चंगारन
चंपा०-१	चंपारन-१, बंगरी, चंगारन (दक्षिण)
चंपा०-२	चंपारन-२, अजगरहा, बककागाँव, चंगारन (पूर्वी चंपारन)
द०	दक्षिण (बिहार)
द० प०	दक्षिण पश्चिम (बिहार)
द० प० शाहा०	दक्षिण-पश्चिम शाहानाद
द० पू०	दक्षिण-पूर्व (बिहार)
द० बि०	दक्षिण बिहार
द० भा०	दक्षिण भागलपुर
द० मुँ०	दक्षिण मुँगेर
दर०	दरभंगा
दर०-१	दरभंगा-१, मधुबनी और सदर सबडिविजन
द० शाहा०	दक्षिण शाहानाद
द० प० शाहा०	दक्षिण-पश्चिम शाहानाद
प०	पश्चिम

पट०	पटना
पट०-१	पटना-१—नारायणपुर, बकंगरसराय, (पूर्वी) पटना
पट०-२	पटना-२—सोहसराय, बिहारशरीफ, (पूर्वी पटना)
पट०-३	पटना-३—सोहसराय, बिहारशरीफ, (पूर्वी पटना)
पट०-४	पटना-४—पटना नगर से दक्षिण का भाग
प० बि०	पश्चिम बिहार
प० शाहा०	पश्चिम शाहानाद
पू०	पूर्व
पूरि०	पूरिया
पूरि०-१	पूरिया-१—दक्षिण पूरिया
पू० बि०	पूर्वी बिहार
विह०	विहटा—साउथ बिहार झुगर मिल्स, विहटा, पटना (पटना नगर से १७ मील पश्चिम)
विहा०	बिहार (प्रान्त)
नाजि०	नाजिज (अमेरिका)
भाग०	भागलपुर
भाग०-१	भागलपुर-१—विसनपुर, शंभुगंज (बाँका सबडिविजन), भागलपुर (द० भाग०)
भाग०-२	भागलपुर-२—मोहनीनगर, अमरपुर (पो०), भागलपुर (द० भा०)
मग०-५	मगही-५—बरबीथा, मुँगेर
म० प्र०	मध्य प्रदेश
म० शाहा०	मध्य शाहानाद
मुँ०	मुँगेर
मुँ०-१	मुँगेर-१—वाराणपुर, मुँगेर (द० मुँ०)
मुज०	मुजफ्फरपुर
मे०-२	मेथिली-२—मुजफ्फरपुर का उत्तरी-पश्चिमी भाग
री०	रीगा—रीगा झुगर मिल्स, रीगा (पो०) (सीतामढ़ी सबडिविजन) मुजफ्फरपुर (उत्तरी-पश्चिमी भाग)
शाहा०	शाहानाद
शाहा०-१	शाहानाद—भीशिबकुमार बर्मा, मकबारी (हुमनाँव), शाहानाद (द० शाहा०)
सार०	सारन
सा०-१	संपूर्ण सारन से तत्काल संगृहीत शब्द
हजा०	हजारीबाग
हरि०	हरिनगर—हरिनगर झुगर मिल्स, हरिनगर, चंपारन (पश्चिम चंपारन)

शब्द-संग्रह के विविध क्षेत्रों की सूची तथा उनका निर्देश

क्षेत्र-संकेत	समूहकर्ता का नाम	पता-ठिकाना
चंपा-१	श्रीगणेश चौधे,	बैंगरी, पो-बैंगरी, चंपारन (दक्षिण)
चंपा-२	श्रीविद्यानन्द सिंह,	अजगरवा, डाक०-बककागाँव, चंपारन (पूर्व)
दर०-१	श्रीजयानन्द झा,	सलेमपुर, डाक०-खैरा, कोटा (थाना), पूर्णियाँ (द०)
पट०-१	श्रीकांत शास्त्री,	नारायणपुर, डाक०-एकंगरसराय, पटना (पूर्व)
पट०-२	श्रीहरिप्रकाश,	सोहसराय, बिहारशरीफ, पटना (पूर्व)
पट० ३	श्रीकृष्णदेव,	" "
पट० ४	श्रीरामाधर शर्मा,	महेन्द्र, पटना-६ (पटना-नगर से दक्षिण के निवासी)
बिह०, री०, हरि०	श्रीविक्रमादित्य मिश्र,	भावल, रामनगर, चंपारन (द० प०)
भाग०-१	श्रीरामस्वरूप चौधरी,	बिस्नपुर, रामभुगंज, भागलपुर (दक्षिण)
भाग०-२	श्रीपंचानन चौधरी,	सोहदीनगर, अमरपुर, भागलपुर (दक्षिण)
मग०-५	श्रीवासुकीप्रसाद सिंह,	बरबीबा, मुँगेर
मु०-१	श्रीसुरेश्वर पाठक,	तारापुर, मुँगेर (दक्षिण)
मै०-२	श्रीमुसाई झा,	अचरी, कटरा, मुजफ्फरपुर (उ० प०)
शाहा०-१	श्रीशिवकुमार जाल,	मकवारी, कुमरौँ, शाहाबाद (उत्तर)
शाहा०-२	श्रीराजेश्वर प्रसाद,	भुरा, मोलपुर (परगना), शाहाबाद (द० प०)
शा०-१	श्रीअवधेशदेव नारायण,	दहियाँवा, छपरा

निर्देश-ग्रन्थ और उनके संक्षिप्त रूप

संक्षिप्त रूप	पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
अमरवाक०—	हिंदी के सौ शब्दों की निरुक्ति	डॉ० बाबुदेवशरण ना० प्र० पत्रिका ५४, अमरवाक	काशी २००६ वि०, ४०-८६	
अथर्व०—अथर्ववेद				
अने०—अनेकार्थसंग्रहकोश	श्रीहेमचंद्र	विद्याविलास प्रेस	१६८५ वि० काशी	
अमर०—अमरकोश (त्रिकांशोपसहित)	श्रीविष्णुदत्त शर्मा, खेमराज	श्रीकृष्णदास, बंबई	१६२६ ई० १९४४ ई०	
" "	रामाश्रमी टीका	" "	१९४४ ई०	
अवची०—अवची कोश	श्रीरामाशा द्विवेदी	हिंदुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद	१६५५ ई०	
आक्स०—आक्सफोर्ड इंग्लिश-डिक्शनरी	आक्सफोर्ड, लंदन		१९५२ ई०	

संक्षिप्त रूप	पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
आप्टे०—आप्टेन संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी		श्रीवामनशिवराम आप्टे	महाद-प्रकाशन, पुना	१९५७ ई०
	(परिचित संस्करण)			
इंग० संस्कृ०—इंग्लिश-संस्कृत-डिक्शनरी		श्रीमोनियर विलियम	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	१६५७ ई०
इटि० था०—इटिमोलोजीकल थॉर्क थारक		डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा	होशियारपुर	१६५१ ई०
गुज० इंग०—गुजराती-इंग्लिश-डिक्शनरी		श्रीवेल्लारे	बंबई-२	
गुत०—ग्रामोयोग और उनकी शब्दावली		डॉ० हरिहरप्रसाद गुप्त	दिल्ली	१६५९ ई०
ग्रामे०—ग्रामेटिकल संस्कृत इंग्लिश-डिक्शनरी		डा० सूर्यकांत शास्त्री		
ग्रिय०—बिहार पीजेंट लाइफ		जार्ज ग्रियर्सन	गवर्नमेंट प्रेस, पटना	१६२६ ई०
बाब०—बाब और मजदुरी		श्रीरामनरेश त्रिपाठी	प्रयाग	१६४९ ई० (द्वितीय संस्करण)
बेम्बस०—बेम्बस इंग्लिश-डिक्शनरी		रेवरेंड टी० डेविडसन	लंदन	१९४६ ई०
बिक०—बिक्रान्तोपकोश		श्रीविष्णुदत्त शर्मा	बंबई	१६२६ ई०
देशी०—देशी नाममाला		श्रीहेमचंद्र कलकत्ता-विश्वविद्यालय	कलकत्ता	१६३१ ई०
देशी ना०—	"	"	पिथल	पुना
दो० को०—दोहाकोश		प्रो० बागची द्वारा संराहित		
निष०—निषवट्ट निरुक्तसहित		दुर्गस्वामीकृत टीकासहित	बंबई,	
निरु०—निरुक्त		" "	" "	
नेगा०—नेगात्री-इंग्लिश-डिक्शनरी		डा० आर० एल० टर्नर	लंदन	१६३१ ई०
पा० स० म०—पाद-सद-महाभाष्य		पं० हरगोविंददास	टी० सेठ	१६७६-८० ई० कलकत्ता
पाणिनि०—शिक्षातकौमुदीस्यसूत्र-बाबुपाठ			वाराणसी	१६४६ ई०
पाणिनि आ०—पाणिनि 'ज ग्रामेटिक			जर्मनी	
पालि०—पालि-इंग्लिश डिक्शनरी		टी० बन्त्यू रेज डेविड्स	लंदन	१६५२ ई०

(१६)

संक्षिप्त रूप	पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
मालि० इ०—	प्राग्नि-इंग्लिश-डिक्शनरी	आर० सी० चार्ल्सडस'	लंदन	
		द्वारा संपादित		
फेलन०—	ए थू हिंदुस्तानी-इंग्लिश-डिक्शनरी	एच० डब्ल्यू० फेलन	वाराणसी	१८७६ ई०
बैंगला०—	बैंगला-संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी	सर मे० सी० हॉटन,	लंदन	१८६३ ई०
विहारी०—	विहारी वल्लभ			
वृहत्०—	वृहत् हिंदी-कोश	ज्ञानमंडल,	वाराणसी	२००६ वि०
ब्राह्म०—	भ्युल ब्राह्म का 'मराठी भाषेचा विकास' (का कामेशन लैंग्वेज मराठे)	अनु० श्रीवासुदेव गोपाल परांजपे,	पूना	१९४१ ई०
भा० नि०—	भाषप्रकाश निबन्ध	श्रीमन्नारायण मिश्र,	विद्याविलास प्रेस,	२००६ वि०
		काशी		
भारतीय०—	भारतीय साहित्य (ग्रामीण-परिचय)	डॉ० विश्वनाथप्रसाद,	हिंदी-विद्यापीठ,	
		आगरा-विश्वविद्यालय,	आगरा	
मरा० हि०—	मराठी-हिंदी-शब्द-संग्रह	ग० र० वैद्यनाथन	पूना	१९४६ ई०
माडन गुड०—	माडन गुडरासी-इंग्लिश-डिक्शनरी	मेहताद्वय द्वारा संपादित	बकौदा	१९२५ ई०
मुंडारी०—	मुंडारी-इंग्लिश-डिक्शनरी	माडुरी	कलकत्ता-	१९३१ ई०
			विश्वविद्यालय	
मेदि०—	मेदिनीकोश	विद्याविलास प्रेस	काशी	१९६७ वि०
मैथिली०—	मैथिली-भाषा-कोश	पं० दीनबन्धु झा	दरभंगा	१८७२ शकान्द
मो० वि० डि०—	संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी	एम्० एम्० विक्रियम्स	लंदन	१९५१ ई०
मिनिव०—	मिनिवस्टिक सर्वे ऑफ् इंडिया	जार्ज मिचर्सन	कलकत्ता	१९२७-१९३० ई०
	(जिल्द-१, भाग-१; जिल्द ५, भाग २)			
रा० प०—	राजतरंगिणी			

नंद

(१७)

संक्षिप्त रूप	पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
भ्यु० को०—	मराठी-भ्युत्पत्ति-कोश	भोऊण्या श्री पांडुरंगजी कुलकर्णी	वसई-२	१९४६ ई०
		नेशवजी भिकाजी घवले		
शब्दा—	शब्दार्थ-वितामणि	सुखानंद-कृत	आगरा	१९२१ वि०
शारव०—	शारवत कोश	ओरियंटल बुक-	पुना	१९२६ ई०
		एजेंसी,		
शिव०—	शिवकोश	श्रीशिवदत्त मिश्र	पूना	१९५२ ई०
संज्ञा० हि०—	संज्ञा-इंग्लिश-डिक्शनरी	ए० के० वेल्स	पॉल्लिरिया,	मानभूम
				१८६६ ई०
संस्क० शब्द०—	संस्कृत-शब्द-वाग	श्रीमोहनानंद त्रिपाठागर	कलकत्ता	१९०० ई०
सुभुव०—	सुभुवर्हिवा			
स्कॉटिश०—	स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी (तीन खंड)	डा० विलियम ग्रांट और डेविड जी०	१९४१-५२ ई०	
		म्यूरसिम, एडिनबर्ग		
इला०—	इलायुव-कोश		सरस्वती-मठ,	२०१४ वि०
			वाराणसी	
इला०—	"	यामस आफरेट	एडिनबर्ग	१८६१ ई०
हाउस०—	हाउस जामसन	कर्नल हेनरी पुले	लंदन	१९०१ ई०
हिंदी उ०—	हिंदी-उर्दू-कोश	श्रीराधचंद्र वर्मा	हिंदी-ग्रन्थ-रत्नाकर	१९०१ ई०
			कार्यालय, वसई	
हिंदु०—	हिंदुस्तानी कोश	श्रीहरिशंकर शर्मा	आगरा	२००९ वि०
हिंदु० इंग०—	हिंदुस्तानी-इंग्लिश-डिक्शनरी	एच० डब्ल्यू० फेलन		
		(डॉ० सूर्यकांत द्वारा संपादित)		
हि० मरा०—	हिंदी-मराठी-व्यवहार-कोश	ग० र० वैद्यनाथन	पूना	१९४९ ई०
हि० श० वा०—	हिंदी-शब्द-वाग	श्यामसुंदरदास आदि	ना० प्र० स०	१९१६ ई०
			काशी	

कृषिकोश

अँइठा—(सं०) सस के समान
एक कीड़ा। बोंबा(बंवा०-१)।
[आवेष्ट, (सं०), ऐठा—
(हि० व० वा०)]



अँइठी—(सं०) (१) वह मजदूर,
जो मिट्टी छोटे समय कुदाल चलानेवाले के पास
रहता है (बंवा०-१)। (२) जेत के बीच का
वह भाग, जहाँ तक सोह कर मजदूर दूसरा 'पाह'
भारण करता है (बंवा०-१)। [देसी, मिला०—
आवेष्ट]

अँकटा—(सं०) गेहूँ, जना, मसूर, जेसारी आदि
के दानों में मिलनेवाला घास की बालि का एक
जनाज, जिसमें छोटे-छोटे गोल दाने होते हैं;
इसकी बाल भी बनाई जाती है। (ब० नै०,
बर०-१, पद०-५)। पर्या०—अँकरा, अँकरी
(ब० नै०, साहा०)। अटका (भाग-१)।
[अँकटा < अकटा < अकतअ < अकतक,
मिला०—अकट (आ०; दो० को० ७६)]

अँकड़वर—(सं०) अँकरीली मिट्टी (साहा०)।
दे०—अँकरी। [अँकड़+उर < अँकरपूर]

अँकड़ही—(वि०) दे० अँकड़ाह (बिहा० भाज०)।

अँकड़ा—(सं०) (१) बड़ा कंकड़ (साहा०)।
(२) गेहूँ, जौ आदि में मिलनेवाला एक प्रकार
का कंकड़। दे० अँकरा। पर्या०—गोंगटा—
(ब०-पू०), अँकड़ (भोज०, पद०)। [अँकुर]

अँकड़ाह—(वि०) वह मिट्टी, जिसमें कंकड़ हो
(बंवा०)। पर्या०—अँकड़ही—(बिहा० भाज०)
[अँकड़+आह (प्र०) < अँकुर]

अँकड़ी—(सं०) (१) एक प्रकार की घास, जो पशुओं
का घास है (प०)। दे०—अँकड़ा। पर्या०—अँकरी
(पद०-५)। (२) छोटा और महीन कंकड़ (बिहा०,

भाज०)। पर्या०—गोंगटी—(ब० पू०) अँकड़ी
(भाज०)। अँकड़ी, (१) जनाज में पाया
जानेवाला छोटा कंकड़। [देसी (?) मिला०—
अँकुर]

अँकड़ेल—(वि०) अँकड़ीली मिट्टी—(सा०)।
दे०—अँकराही। [अँकड़+एल < (इल)—
(सं०)]

अँकड़ौर—(वि०) अँकड़ीली मिट्टी—(प०)। दे०—
अँकराही। [अँकड़+और (प०)]

अँकड़ा—(सं०) एक प्रकार की घास, जो पशुओं
का घास है (प० पद०, गपा, ब० पू०)।
पर्या०—अटका, अकटा (ब० भाज०), अँकरी,
अँकड़ी (प०), अँकरी (गपा, ब० पू०),
भिलोर (ब०-प०)। [अँकटा < अकतअ <
अकतक, मिला०—अकट (आ० भाज०)—दो०
को०—७६]

अँकरहिया मटर—(सं०) एक प्रकार की छोटी
मटर (भोज० भाज०)। [अँकर+हिया (प०)
+मटर]

अँकरा—(सं०) गेहूँ में मिलनेवाला एक प्रकार का
घासपात, (प० नै०, साहा०)। दे०—अँकटा। [दे०—
अँकटा]

अँकरी—(सं०) (१) एक प्रकार की घास, जो
पशुओं का घास है (प०)। दे०—अँकड़ा। (२)
गेहूँ, जौ आदि में मिलनेवाला एक प्रकार का
घासपात (प० नै०, साहा०)। दे०—अँकटा।
[अँकर+ई० < अँकरा, [दे०—अँकटा]

अँकवार, अकवार—(सं०)

(१) दोनों मुजाओं के
अंदर भर जानेवाली फसल
का परिमाण। पर्या०—
अकवारा, पौजा (पद०,



अँकवार

२०-५० सं० (चपा०), अंकवार (भाज०) ।
(२) दोनों भुजाओं से आलियन या बक में
लगाने की रीति, इस वर्ष में प्रायः बेंट खन्व
के साथ समस्त रूप में प्रयोग होता है, यथा—
अंकवार बेंटक, मिला०-अंकौर । [अंकपालि,
अंकमाल]

अंकुड़ा—(सं०) मिलों में कोयला टारने या
उसकाने के लिए व्यवहृत होनेवाली कोड़े की
छड़, जिसका अग्रभाग छोर टेढ़ा और दूसरी
ओर मूठ-जैसा बना होता है, जो हाथ से
पकड़ने लायक होता है (हरि०, री०) ।
पर्या०—कोलटारा (बिह०) [मिला० अंकुर,
अंकुरा]

अंकुड़ा—(सं०) गेहूँ का नया अंकुर (३०-४०) ।
पर्या०—अंकुर (भाग०-१) डिम्बी, डाभी
(भाग०-१), सुइया (भाग०-१) । [अंकुर]
अंकुरा—(सं०) प्रथम-प्रथम जमीन से उगा हुआ
पौधा । [अंकुर]

अंकुराएल—(वि०) वह ऊन, जिसमें सब अंकुर
निकला है (गवा), अंकुरित। दे०—पुगारी ।
पर्या०—पनपा (पट०-४) । [अंकुरा+एल]

अंकुरी—(सं०) (१) पकने के पहले भोजन के
लिए कटा हुआ कच्चा अनाज (४० भाग०,
चपा०) दे०—गदरा । (२) घासी में फुलाया हुआ
चना, जिसमें अंकुर निकल
आता हो ।

अंकुसी—(सं०) (१) पेड़ से
फल तोड़नेवाली लकड़ी के
अंतिम छोर पर बांधी हुई
एक छोटी लकड़ी । पर्या०—
कानी (सं०-भाग०, पट०-४,
चपा०) । (२) हाथी के नियन्त्रण के
लिए महावत द्वारा प्रयुक्त लोहे का
एक प्रतिष्ठ हथियार, जिसको 'अंकुश'
भी कहते हैं । [अंकुरा]

अंकुसुंदनी—(सं०) यमेशियों की आँख
देंकने के लिए बाँस की कमान का बना
हुआ वक्रमण्ड, जिसके ऊपर कपड़ा सड़ा रहता
है । पर्या०—पट्टर (भोज०), टप्पर

(चपा०), छोपनी
(साहा०), टोकनी—
(पट०, गवा), कोलसा
(सं०) । [अँल +
सुंदनी < अक्षि + सुद्रुषी]



अँलरा—(वि०) ऐसा अँलसुंदनी
टोकड़ा, जिसके छेदों को बन्द करने के लिए
पिट्टी और गोबर नहीं लगाया गया हो ।
(चपा०-१, पट०-४, भाग०-१, गवा)

[अँलरा = अ + लार (= आल) = अक्षि]
अँलवा—(सं०) ऊन के दोने का बाँस-जैसा वह
स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (४० च०
साहा०, भाग० १) दे०—आँस । [अँल]

अँलिया—(सं०) (१) ऊन का अंकुर (३० सं०),
(पट०-४) । दे०—आँस । (२) ऊन के दोने
का बाँस-जैसा वह स्थान, जहाँ से अंकुर निक-
लता है (३० सं०) । दे०—आँस । पर्या०—
अँलुआ (भाग०-१) (३) गेहूँ और चारबल के
भाटे को मिलाकर तथा उसे गूँथकर और बाँस
की आकृति का पिंड बनाकर पानी में उबाला
हुवा पीठा (पट०-४) । [अँल, अँल, अँलिका]

अँलियाव—(सं०) ऊन के दोने का बाँस-जैसा
वह स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (४०
भाग०) दे०—आँस । [अँल, अँलिका, अँलीव]

अँलुआइल—(वि०) दे०—अँलुआइल ।
अँलुआ—(सं०) (१) ऊन के दोने का बाँस-
जैसा वह स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है
(पट०, पु० सं०, भाग०-१) । दे०—आँस ।
(२) ऊन का अंकुर (पट०, भाग०-१, साज०) ।
दे०—आँस । (३) चारबल से निकला हुआ वह कण,
जिसमें जन्न का कुछ बंध रहता है (चपा०-१) ।
[अँल + उआ < अक्ष, अक्षि] (४) बाजरे
का पहला अंकुर । पर्या०—सुआ, डिभिआ
(४० सं०), सुइया (४० भाग०), अँलुआ,
अँलुआ (भाग०) अँलुआएल (वि०) = अंकुर
फूटना । सुआएल (वि०) = अंकुर फूटना ।
[अँल, अँल, अँलिवत] [सुआ, सुआ <
सु/पक्ष । (सुआएल = सुआ + एल-वि० प्र०)]

अँलुआइल—(वि०) (१) अंकुरित पौधा
(साहा०-१, चपा०) । (वि०) (२) अंकुरता

(चपा०-१) । [अँल + उआ < अक्ष, अक्षि] (४) बाजरे
का पहला अंकुर । पर्या०—सुआ, डिभिआ
(४० सं०), सुइया (४० भाग०), अँलुआ,
अँलुआ (भाग०) अँलुआएल (वि०) = अंकुर
फूटना । सुआएल (वि०) = अंकुर फूटना ।
[अँल, अँल, अँलिवत] [सुआ, सुआ <
सु/पक्ष । (सुआएल = सुआ + एल-वि० प्र०)]

अँलुआइल—(वि०) (१) अंकुरित पौधा
(साहा०-१, चपा०) । (वि०) (२) अंकुरता

(चपा०-१, चपा०) । (वि०) (२) अंकुरता

(साहा०-१) । [अँलुआ + इल (प्र०) < अँलुआ
< अक्ष, अक्षि, अंकुर]

अँलुआएल—(वि०) वह ऊन, जिसमें सब अंकुर
निकला हो (पट०) । दे०—पुगारी । पर्या०—
अँलुआइल (भाग०-१) । [अँलुआ + एल
(= इल - वि० प्र०) < अक्षि + वत]

अँलुआ—(सं०) जन्मे की दोनों कानियों (साजियों)
में लगी हुई चूरी, जिस-
पर ठाठा लटकता है
(४० सं०, पट०-४) ।
दे०—अँलुआ । पर्या०—
अँलुआ (भाग०-१)



[अँलुआ, अँलुआट]
अँगेर—(सं०) दे०—अँगेर नून ।
अँगेर—(सं०) लकड़ान में तैयार नये जन्म में से
बाह्य के लिए निकाला हुआ बंध (च०) ।
दे०—अँगेर तथा विमुनपिरित । [अँगाव]

अँगेरुआ—(सं०) गृहस्थ के द्वारा बाह्य के लिए
जन्म में से निकाला हुआ बंध (साहा०) ।
अँगेरवार—(सं०) घुस फटे हुए ऊन के रत्न के का
स्थान (साहा०) । दे०—टोनिवारी । [अँगेर <
अमगाएल, अँगेर + वार < अमगाएल-भाट]

अँगेर—(सं०) (१) तेज पलका हुआ के कारण
होनेवाला अनाज का एक रोग (पाला) (३०
च०, चपा०, साहा०) । पर्या०—करका (सा०,
सं०, पट०-४), सुरका = अजीर्ण में लगा एक
रोग (चपा०) । (२) मान की फल का एक
रोग, इससे मान का पौधा पीला हो जाता है और
जलने लगता है (चपा०) । [अँगाव] टि०—
इस रोग से बचने के लिए केले का रस जेत
में पाड़ दिया जाता है (चपा०-१) ।

अँगेरवाह—(सं०) कोलू के लिए ऊन के लंबे-
लंबे टुकड़े काटनेवाला व्यक्ति (च०) । दे०—
कानू । [अँगेर + वाह < अमगाएल + वाह]
टि०—'वाह' या 'वाहा' 'हलवाहा' का शब्दाव
है, जो दूसरे लिंगों के अंत में जुटकर 'करने-
वाला' वादि अर्थ में प्रयुक्त होता है—जैसे,
चरवाहा = चरानेवाला, भंसवाहा = भंस चराने-
वाला वादि ।

अँगेरिया—(सं०) मजदूरी में नगद या अनाज न

लेकर तीन दिन जेत के मालिक का हक बला
लेने के बाद एक दिन के लिए जती हल से अपना
जेत जोतनेवाला हलवाहा । पर्या०—अँगाव-
रिया, अँगेरवार (च०), तेपटा (सा०, चपा०,
सं०, उ० पु० सं०, भाज०), तिसरी, तिसरिया ।
[अँगेर + रिया (= वार) < अँगेरवार, अँकपाल]

अँगेरवार—(सं०) (१) दे०—अँगेरवारिया । (२)
दवाई (बोने) किए हुए जन्म की राधि में हल-
वाहे का बाग (भाज०) ।

अँगेरवार—(सं०) (१) सम्मिलित जेतों में अपने-
अपने हल-जंतों से बारी-बारी करके अपने जेत
जोतनेवाले किसान (च०) । (२) दे०—
अँगेरवारिया ।

अँगा—(सं०) (१) एक प्रकार का मोटा बाग, जो
विशेषतया ऊँची जमीन में पैदा होता है और
इसका बूक काटा होता है (चपा०-१, सं०) ।
(२) कुरता, चपचपन । [अँगाभ जो० वि० वि०]

अँगारी—(सं०) कोलू में डालने के लिए काटी
हुई ऊन की टुकड़ी (४० च० साहा०) ।
दे०—जैदी । [अँगाव, अँगारिका]

अँगुरियाव—(वि०) किसी फल की बतिये
को उँगली दिखाता । किंवदंती ऐसी है कि इस
तरह उँगली दिखाने से वह बतिया सूख जाती
है (चपा०-१) । [अँगुर + इयाव (ना०
वा० प्र०) = 'अँगुरीयति' के अर्थ में]

अँगेरीहा—(वि०) ऊन की लकड़ी फल को काटने
वाला । पर्या०—अँगेरहा (३० च०), पजवाहा
(सं०), पगरवाह (सं०), पँगेरवाह (सं०),
मँकेरीजा (साहा०), खोलवा (४०-४०
साहा०), केतरपार (पट०, गवा), कतरपारा या
पतरपारा (४० सं०), घुरकड़ा या कटनिया
(४० भाग०) । [अँगाव + हाह, (अँगेरी + हा)]

अँगेर—(सं०) बाँव के लिए काटे गये ऊन के
ऊपर (सिरा) का टुकड़ा, जो और भाग के
बजाय-बल्की उगता है (सा०) । पर्या०—
अँगेरा (गवा), अगारी (पट०), अगारा
(४० सं०), आगा (४० भाग०) अधिया (च०
उ०), फुनगी (३० पु० सं०), अँगेर,
अँगेरी (भाग०) । [अँगाव + अँगेर का
अप्रभाग, अँगा, अँगारिका] (२) चारे के

लिए काटा गया ऊस के ऊपर का हरा भाग (सा०, पट०-४) दे०—अंगरे। [अग्रकांड]
अंगेरा—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊस के ऊपर का (सिरा) टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्दी उगता है (गया)। दे०—अंगरे। [अग्रकांड]
अंगेरी—(सं०) (१) ऊस के ऊपरी भाग की पत्तियाँ। (२) ऊस के ऊपर का भाग। (३) थारे के लिए काटा गया ऊस के ऊपर का हरा भाग (गया, पट०, बिह०)।—कड़ल—(गुहा०) ऊस के सूजे और हरे पत्तों को अलग करके उसे साफ करना (बिह०)। दे०—अंगरे। [अग्र-कांड, अंगारिका]
अंगेरी—(सं०) कड़ी मिट्टी काटने के लिए एक प्रकार का लंबा लोखार काबड़ा (पट०-४)। दे०—बासी, फौरा। [देशी]
अंगोरा—(सं०) सोयरे, ककड़ी आदि की भाग का लहलहाता हुआ पिट (चंपा०-मुं०-१, भाग०-१)। गुहा०—अंगोरा उरल—हिमालय में जाग लगना (मुं०-१) [अंगार]
अंगुताहर—(सं०) गुड़ बनाने के समय बूल्हे में जाग लौकनेवाला व्यक्ति। (४० मुं०, पट०-४, गया)। दे०—कानू। [अंगुता+हर<अंगु (ता-भाषण)+हर<अंगिर]
अंगुवाहा—(सं०) बूल्हे में जाग लौकनेवाला व्यक्ति (पट०, भाग०-१)। दे०—कानू। [अंगु+वाहा<अंगिराह]
अंगिया—(सं०) बूल्हे के ऊपर का छिद्र (मुं०), जिस पर पाय रखा जाता है (पट०-४, भाग०-१)। दे०—जोड़ी। [अंगि, अंगि]
अंगुर—(सं०) वन बोने के समय किसान की ओर से बड़ई को मिलनेवाला एक निश्चित (अंगुलिमात्र) जलपरिमाण (साहा०) पर्या०—अंगुरी (गया)। [अंगुलि]
अंगुरा—(सं०) वन बोने के समय बड़इयों को दिया जानेवाला अंगुलिमात्र जल का उपहार (भाग०-१)। [अंगुलि]
अंगुरी—(सं०) (१) जनाज के बेटवारे में किसान द्वारा प्रति हल एक या दो सेर लिया जानेवाला अन्न (सा०, पट०)। पर्या०—

अंगुर (साहा०) (२) दोनों हथेलियों को मिलाकर कटोरी जैसी बनाई गई बाहुति, अंगुलिपुट। (३) वन की राख में से लौकते समय दोनों हथेलियों से खान देने के लिए निकाला हुआ जनाज। [अंगुलि]
अंगोर—(सं०) उमाला [अंगुज्योतिर, उगमल—(हि० ज० सा०)]
अंगोरिया—(सं०) धुल्लपल की राख, जबतक आकाश में चंद्रमा उचित रहता है (चंपा०-१)। पर्या०—अंगोरियापल—(बाग०) = धुल्लपल; दे०—अंगोरिया [अंगोरिया] अंगोरिया <अंगुज्योतिर वा ज्योतिस्, अंगोर<उगमल—(हि० ज० सा०)]
अंगकल—(सं०) किसी लकड़ के छेद में किसी बीज का बीज में ही रुक जाना (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। [अंगक+ल=अ+क (सं०)—(हि० ज० सा०)]
अंगकाइल—(सं०) अंगकाना, अंगल। अंगक+आइल (प्र०)<अंगक]
अंगकारल—(सं०) पानी की बहराई का किसी बीज से अंशज करना (चंपा०-१)।
अंगकाष—(सं०) रोक, प्रतिबंध (सा०-१)। उदा०—हमरा सेत में पानी के अंगकाष नह ले।
अंगकावल—(सं०) अंगक किया का अंगकाषक रूप, अंगकाना। (सं०) अंगकाई हुई।
अंगल—(सं०)—समाना, मुसना, ठीक-ठीक बैठ जाना। पहुँच जाना (मुं०-१, पट०-४)।
अंगल—(सं०)—समाना हुआ। ठीक जाया हुआ। (चंपा०-१, भाग०-१)।
अंगाल—(सं०) जाय चलनेवाले को बुलाना। बुलाना। माँ देना (मुं०-१)।
अंगिया—(सं०) (१) अंगीठा या मोहना से नी बड़ी फसल की राख (जोड़ी)। पर्या०—पसही (चंपा०, उ० पु०—नै०), रोमड़ा (४० व० साहा०)। टि०—जोड़ी या अंगिये का परिमाण सर्वत्र एक-सा निश्चित नहीं है—यथा जगती लोकोपि से स्पष्ट है—‘कोटि कटनिहार के गूरर सन जोड़ी’ [हि०-अंगीटी—(हि० ज० सा०)]। अंगिअ>अंगिया>

अंगियाल>अंगियाल>अंगिया। अंगिका = चार जो का एक परिमाण (मो० वि० वि०)। पसही<यसुति। रोमड़ा<हिमोट (मोट = बहल-मो० वि० वि०)।
 (२) कटनी के समय प्रति हल किसान के द्वारा बड़ई को दिया जानेवाला एक निश्चित परिमाण में (जोड़ी-भर) पान (चंपा०)। पर्या०—मोगन (पट०-४) दे०—मोहा।
 (३) रोपने के लिए तैयार उखाड़े हुए बीजों के बीजों का पूला (बहल) (सं० उ०, ४०-५०, अंगिया भाग०)। दे०—जोड़ी [अंगिका] (४) जनाज निकालने के बाद पुआल की जोड़ी (बहल) (सं० ४०, सा०, भाग०) दे०—पूला (५) पास, लकड़ी या किसी फसल आदि का बीधा हुआ पुला या पट्टा, जो दोनों हाथों से पकड़ा जा सके। (चंपा०-१, भाग०-१)। (६) जोड़ी, पुल्का, जोड़ा बीजा (मुं०-१)। [अंगिका]
अंगियावल—(सं०) (१) अंगिया या पुल्का बोधना (मुं०-१, पट०-४)। (२) गायब या हजम करना। दे०—अंगिया। [अंगिया+ना<अंगिका<अंगिका]
अंगियावल—(सं०) पास, लकड़ी या पान आदि का बीधा नया पट्टा (चंपा०-१, पट०-४)। [अंगिया+आवल<अंगिया<अंगिका]
अंगिया—(सं०) एक प्रकार का केला (हर०-१)। [अंगी+इया<अंगील]
अंगियावल—(सं०, सा०, भा०) फल के भीतर के बीज का पुष्ट या कड़ा होना, जाय आदि फलों में जोड़ी होना (मुं०-१, पट०-४) [अंगियन]
अंगिली—(सं०) (१) जाय की मुठली। (२) दे०—अंगुली। [अंगीलिका]
अंगुली—(सं०) एक प्रकार की भास, जिसे पशु खाते हैं (गया)। पर्या०—अंगिली, अंगी (४० व० साहा०, गया)। [अंगिल—(मिला०)—अंगुल्ल भास्लोप्यान्—(मेवि०)]
अंगुद—(सं०) रेंडी का बीजा (४० व० नै०,

४० भाग०)। दे०—रेंड। पर्या०—अंडी (भाग०-१)। [एरंड]
अंगुदी—(सं०) रेंड का बीज (४० व० नै०, ४० भाग०) पर्या०—अंडी (भाग०-१)।
अंगुरी—(सं०) रेंड का बीज, जिससे तेल निकलता है। (उ० व० नै०, ४० भाग०)। दे०—रेंडी। [अंगुर+ई<एरंड]
अंगु—(सं०) रेंडी का बीजा। (सं०, ४० भाग०)। दे०—रेंड। [एरंड (साहा०), अंगुरि (मे०)]
अंगुस—(सं०) दे०—अंगुस।
अंगुआवल—(सं०) बीज के एक भाग पर उसके बंधकोय में जोड़कर उसे आगे बढ़ाना (सा०-१, पट०-४, भाग०-१) [अंगुआवल+ल, अंगु+इयाव (सा० भा० प्र०), अंगु<अंगु]
अंगिया—(सं०) बधिया न किये हुए बीज आदि पशु (मुं०-१)। पर्या०—अंगु (पट०-४, भाग०-१), अंगुआ—(भाग०-१)। [अंगु, अंगुआव]
अंगी—(सं०) (१) रेंड का बीज, रेंड का बीज। (२) एक प्रकार का रेंडामी कपड़ा, नै०, ४० भाग०, मोम०, वन०)। दे०—रेंडी [एरंड (सं०)]
अंगुरि (मे०) [अंगुरि (मे०)]
अंतरा, **अंतर**—(सं०) पान की लताओं या पत्तियों के बीच का स्थान। पर्या०—दौज (४० पु०), दौज (४०, गया०), पाहे (४० पु० नै०) [अंतरा>अंतरा>अंतर। पार्श्व>पाहे>पाहे]
अंतरा—(सं०)—जनाज (पट०-१) [अनार (सा०)]
अंध—(सं०) बीजा (हर०-१, पट०-४, भाग०-१) चंपा०, भोज०) पर्या०—अंधर (भाग०-१)। [अंध—(हि० ज० सा०), अंधकार। अंधः>अंधा, अंधकी रात्रि (मेवा०)]
अंधरी पटावन—(सं०) ऊस की पहली सिचाई (४० भाग०)। दे०—गडाकार पर्या०—मिलानी—(भाग०-१)। [अंधरी+पटावन]



अधियारी—(सं०) मवेशियों की आँख का दक्कन (पट०)। दे०—अनपट पर्या०—टोकनी (पट०-४), खोलसा (भाष०-१)। [अन्ध, अन्धकारी]

अंधेरी—(सं०)—प्रायः माघ महीने में की जाने वाली ऊँख की पहली कोइनी (सा०, २० मं०) पर्या०—अन्हरी, मुरनी (भाष०-१)। दे०—अंधेरी कोरन।

अंधेरी—(सं०) कृष्णपक्ष (अन्हरीवा) में पहली कोइनी के कारण इसे अंधेरी (अंध) कहते हैं। यह कोइनी प्रायः ऊँख उगने के पहले की जाती है, इसलिए भी संभव है।

अंधेरी कोरन—(सं०) प्रायः माघ महीने में की जाने वाली ऊँख की पहली कर्मनी (कोइनी)। पर्या०—बालन (पट०), ललमन (गवा, प०), अंधेरी, माइनी (सा०, २० मं०), अन्हरी कोरनी (भाष०-१), मुरनी (२० भाष०)। मं० ३० में इसका कोई विशेष नाम नहीं है।

अंधेरा—(सं०) एक प्रसिद्ध पेड़ या फल, जो दवा, मुरब्बा, अंधार आदि के काम में आता है (शाहा०-१)। दे०—औरा। [अमलक]

अंधासा—(सं०) मूँटा या पूँजा से बड़ी फलक की राशि (३०-२०)। पर्या०—अंधासा (३०-२०), आहुल, अहुला (पू०-मं०) [देही]

अंधुआधार—(सं०) बेलों का एक दोष। इसमें बेलों की आँखें लाल और मलिन रहती हैं तथा लालों से आँसू गिरते रहते हैं। यह बेल अशुभ माना जाता है (पट०-१)। [अंधुआ + धार < अंधु < अशु; धार ढाल < धाल < धृषल?]

अंडिआवल—(सं०) बेंकी में किसी चीज को कूटते समय जोखक के बाहर गये हुए मज को भीतर करना (बंवा०-१)। [(अंडिआवल + ल < अंडि + आवल < अण्डस्वाण), अउटी < ओछी, ओछीयन]

अण्डल—(सं०) काफी गर्मी पड़ना और हवा का बंद हो जाना (बंवा०-१)। [आकुल]

अउस—(सं०) हवा का बंद हो जाना और काफी गर्मी पड़ना (बंवा०-१), पर्या०—गुमदा (भाष०-१)। [अभा, ओष < उष दाहे]।

अउसल—(सं०), गर्मी के कारण किसी कच्ची

चीज (जानेवाली चीज) का मूलान्न होकर सड़ने लगना (बंवा०-१, पट०-४) पर्या०—अउसाइल, गुमदाइल (भाष०-१)। [अउस + ल < अउस < अण्डा, ओष < उष]।

अकटा—(सं०) एक प्रकार की वास, जो पशुओं का बाघ है (२० भाष०)। दे०—अकटा। पर्या०—अकटा—(२०-१); अकटा (भाष०-१)। [अ + कटा < अकटा < अकटा < अकतअ] > अकतअ, मिला० अकट (सं०) को०-७६]।

अकड़ी—(सं०) बिना छाँटा हुआ बावल भादि (२० मं०-१, बंवा०)। पर्या०—एकड़ी (पट०-४), अकड़ी बाउर—(भाष०-१)। [अकड़ + ई > अकड़ < अकट < अकत < अकत, मिला० अकुर]।

अकराह—(सं०) बारीक ककड़ी मिली हुई कड़ी मिट्टी (मं० ३०, प०, २० मं०)। छराही (२० मं० ३०)। [अकरा + ह < अकरा < अकुर]।

अकरी—(सं०) बिना साफ किया बावल। पर्या०—एकरी, एकरी। [अकर + ई < अकर < अकट < अकत < अकत]।

अकवार, अकवार—(सं०) दोनों मूँजाओं के अंदर सर कर आने वाला फलक का परिमाण (२० मं० ३० बंवा०)। अकवार पौजा—(भाष०-१) दे० पौजा [अकवाल, अकपाल]

अकवार—(सं०) दे० अकवार (भाष०-१) [अक-माल, अकपाल]

अकालगीर—(सं०) एक प्रकार का बान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (सा०)। दे० अकालवीर [अ + काल + गीर, अकालवीर < अ + काल + गीर < अकालगीर]।

अकालवीर—(सं०) एक प्रकार का बान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (पू० मं०)। पर्या०—अकाल-गीर (सा०), अकालगीर (२० मं० ३०) (यह केवल गंगा के उत्तर विभाग में ही नाम से प्राप्त होता है)।

[अ + काल + गीर < अकालगीर]।

अकासी—(सं०) बंद से बिड़िया भादि को बगाने

के लिए किसी पेड़ में डोरी बाँधकर लटकाना हुआ ताड़ का पत्ता या टिनका टुकड़ा, जो डोरी बाँधने से आबाव करता है। (२०-पू० मं०) दे०—दबडवा। [आकाशीय, अंकुर < अकसी < अकासी]।

अकल—(सं०) पानी पटानेवाले गाँव की वह छोटी ककड़ी, जिसमें घुरी लगी रहती है तथा जिस पर काटा बँटाया हुआ रहता है (साहा०-१)। [अकल + अकल < अकल]।

अकलना—(सं०) मलनी पकड़ने के लिए पानी से छटा हुआ बोधा गया नट्टा, जिसमें मल्लियाँ कूद कर पड़ तो जाती हैं, पर निकल नहीं सकती (बंवा०-१)। [अ + कलना, अकल + ना < अकल (?)]।

अकलरा—(सं०) १ बिना बोया कूटा हुआ (मल)। २ बिना बी कलाई हुई (रोटी) (साहा०-१)। [अ + कलरा < अ + कलरा]। ३ बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (पट०-४) दे० घुरी। पर्या०—अकलरी (२० मं०), अकलरी (२० भाष०); अकल (२०-मं०) बि०, २० पू० मं०, भाष०-१)। [अ + कल, अ(सं०) + कलरा (हि०) < (हि०) भा० सा०]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।

अकलरी—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीठा हुआ बी (२० मं०) (दे० अकलरा) पर्या०—अकलरी बिना मिणोका हुआ (भाष०)। [अ + कलरा]।



अकलरी

[आसनन (हि० शा० सा०), अक्षि = अक्ष + अक्षि]
 अक्षेन—(सं०)—दे०—अक्षेना। पर्या०—खेना, अखेना (पट०, गवा, पु०), अखेन, अखेना (२०-२० शाहा०), अखेनी (२० भाग०), अखेन—भाग-१, ऊखनी, आ०)। [आसनन (हि० शा० सा०), अक्ष+अक्षि = अक्षि]।
 अखेता—(सं०) कलहान में दोनों के समय पुष्पल, टटल आदि को हटाने या झाड़ने के काम में जानेवाली एक लगी, जिसके अंतिम छोर में लोहे का डंडा काटा लगाकर या उसी लगी की पतली (करबी) साला को छोड़कर मोड़ बनायी जाती है।
 अखेला—(सं०) वह पुरी जिस पर डंकी काम करती है (पट०) दे०—अखेला। [अक्ष + कलि]
 अखेला—(सं०) पानी पटाने के लिए गाड़े गये खसे की दोनों कानियों (शाखाओं) में लगी हुई पुरी, जिस पर आठ लटकता है (२० भाग०)। दे०—अखेला। पर्या०—अखेला—(भाग-१) [अक्षरत्, अक्षरुट]।
 अखेला—(सं०) (१) डंकी की पुरी। पर्या०—अखेला, मीमा (बं०, उ० पू० ३०)। बोलनी (२० पू० ३०), डंडा (२० पू० ३०), रतकी (पट०), असकलाइ (२० भाग०), सारा (२० १० शाहा०) (२) (सं०) दे०—अखेला। (३) पानी पटाने के काम के लिए कुएँ में लगी फिरनी की पुरी, जिस पर फिरनी नाचती है। पर्या०—अखेला डंडा (बं०, उ० पू० ३०), सररा (२० १० शाहा०), टोना (पट०)। [अक्षरत्, अक्षरुट, ७ अक्ष + अक्ष]।
 अखेला—(सं०) (१) वह पुरी जिस पर डंकी काम करती है (पट०, सा०)। पर्या०—अखेला (गवा), अखेला (पट०), मीमा (बं०, उ० पू० ३०), किल्ला (२० १० ३०), डंडा (पू० ३०)। (२) पानी पटाने के लिए लगे खसे की दोनों कानियों (शाखाओं) में लगी हुई पुरी, जिसपर आठ लटकता है।



अखेला

(दे० अखेला) पर्या०—अखेला, अखेला (२० भाग०), अखेला (२० पू०), अखेला, अखेला (पट० गवा), मीमा (बं०, उ० पू० ३०), टोना (पट०)। [अक्षरत्, अक्षरुट]।
 अगवद—(सं०) मजदूरों की दो जानेवाली अग्रिम मजदूरी (बं० १)। दे०—फाजिल। अगवर (भाग-१) [अग्रहर, अग्रवलि, अग्रिम]
 अगहन—(सं०) दे०—अगर।
 अगहा—(सं०) चारे के लिए काटा गया ऊख के ऊँर का हरा भाग (२० पू०, भाग-१) दे०—अगहा। [अग + हा अग्रकाएट, अगारिका]
 अगहा—(सं०)—(२० भाग०)। दे०—अगहा। [अग + हा अग्रकाएट]।
 अगहरी—(सं०) (२० भाग०) दे०—फाजिल पर्या०—अगहरी—(भाग-१)। [अग्र + हर अग्र + हर, हर अग्र अग्र अग्र]।
 अगहाई—(सं०) दोनों में घूमनेवाला रुखे नेत्र बँक (पट०, २० पू०, भाग-१) दे०—पाट। पर्या०—एकदुईआ (पट०-४)। [अग्र + दुई अग्रमिन्]।
 अगहाइन—(सं०)—(गवा)। दे०—पाट। [अग + हाइन अग्रमिन्]।
 अगहाई—(सं०)—२० पू० ३०)। दे०—पाट। [अग + हाई अग्रमिन्, अग्रमिन्]
 अगह्यो—(सं०) (गवा)। दे०—पाट। [अग + ह्यो अग्र + ह्य, (+ ह्यमिन्)]
 अगवर—(सं०) गृहदेवता (भूमिदेव) के लिए नए तैयार अन्न में से निकाला गया अन्न (शाहा०)। दे०—अगो। पर्या०—अगवर—(२० शाहा०)। [अग + वर अग्रमिन्]
 अगवरपाट—सं०) नहर या पैन आदि का मुँह छोड़कर जमीन की सतह से ऊँचे अलपराह के द्वारा पूर्णरूपेण सेत की आरावाहिक सिंचाई (२० १० ३०, बं० १)। दे०—अपटा। [अगर + पाट—देखी (१)]
 अगवरबन्धू—(सं०) काटने के लिए तैयार ऊख का पीसा (पट०)। पर्या०—अगवरबन्धू (गवा), डंडा (२० पू०) (अन्न को कोई विशेष नाम नहीं है)। [अगर + बन्धू अग्र + बन्धू (१)]।
 अगवा—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊख के

ऊँर (सिर) का टुकड़ा, जो और भाग की जपेला बन्दी उगता है (पट०-४)। दे०—बैंगरी। पर्या०—अग्रि (भाग-१)। [अग्र, अग्रकाएट]।
 अगरी—(सं०) बीजों की कतार (बं० १)।
 अगला—(सं०) धान के ढंठल को छोड़कर केवल बाल की कटाई (बं० १, गवा)। दे०—अलकट। [अग्र]।
 अगलो—(सं०) बाँस की फुनवी की ओर का हिस्सा (बं० १)। पर्या०—अगला (भाग-१)। [अग्र]।
 अगवद—(सं०) १—हमारे की अगल (अग्रिम) की जानेवाली मजदूरी (१०)। पर्या०—अगवार अवार (भाग-१); अगोरी (२० १० ३०), अगोरी (२० १० ३०), अगोरी (२० १० ३०), अगोरी (भाग-१)। [अग्र + वद अग्रवृत्ति, अग्रवृत्ति (बलि = भाव, बलि, भोजन, अन्न)]। २—अगल (अग्रिम) मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (२० १०)। पर्या०—अगवदजन (२० १०), साधोख (२० भाग०), कमाई (१०), कनियों (पट०, गवा, २० पू०), अगवदजन पहले से किये हुए खेप को चुकता करने के लिए काम करनेवाला मजदूर। छटोमार (भाग-१) [अग्रवृत्ति]
 अगवदजन—(सं०) (२० १०)। दे०—अगवद। [अग्र + वद + जन अग्रवृत्ति + जन, अग्रवृत्ति + जन]।
 अगहन—(सं०) बल्ल के बीज पर दिया जानेवाला धूप (२० १० शाहा०)। दे०—अगो। पर्या०—अगहिया (पट०-४)। सवेया, दोबरा, सेदिया (भाग-१)।
 अगहन—(सं०)—(शाहा०)। दे०—फाजिल। [अग्र + न अग्रमिन्, अग्रिमिन्]।
 अगवर—(सं०) बीजाने के समय हुआ में भूसा की साथ उड़ा हुआ बनाव (२०, पू०, पट०-४)। दे०—अगवार। [अगवर अग्रवर?]।
 अगवरिया—(सं०) दे०—अगवरिया।
 अगवार—(सं०) (१) फल के बीजों को हटाने पर कलहान में पड़ा हुआ बनाव (बं० २०—शाहा०), पर्या०—सहार (भाग-१), अगवार, अगवारी (१०) = बीजाने के समय हुआ में भूसा

के साथ उड़नेवाला (निष्फल = अलवर) बनाव। भाठ (२० २०—शाहा०), तरी (शा०, २० ३०)। [अगवर]। (२) घर के सामने का भाग (बं० १)। (३) सेतिहर मजदूर के लिए कलहान से निकाला हुआ बल का भाग (बं० १)। [अग्र + वाट = (बनाव)]।
 अगवार, अगवारी—(सं०) बीजाने के समय हुआ में भूसा के साथ उड़ा हुआ बनाव (२०)। पर्या०—अगवद (बं० १, पट०, गवा), अगवर (२० १०)। [अगवर]।
 अगवारी—(सं०) दे०—अगवार।
 अगवासा—(सं०) घर के सामने की अमीन (शाहा०-२)। [अग्र + वासा अग्र + वास]।
 अगस्त—(सं०) एक प्रकार का लंबा धूप, जो धूप खुलने में चुकता है और बितका धूप लगे होता है (पट०-१)। [अग्रस्त]।
 अगहन—(सं०) आग्रहायण, भारतीय वर्ष का नवम और हेमन्त ऋतु का पहला महीना। (अग्र: नवम्बर के अंतिम और दिसम्बर के आदि के पंद्रह दिन)। इस मास की पूर्णिमा के दिन भूमिदेव अन्न का उदय हुआ करता है, अतः इसका नाम आग्रहायण भी है। (अग्रहायण बं०) < आग्रहायण >। कभी इस महीने के बाद से अग्रहायण होता था, इसलिए इसे आग्रहायण (अग्रहायण-मस्य = इसके आगे अग्रहायण होता है) कहते हैं (सं०)। [अग्रहायण < अग्र + हायण > अग्रहन]।
 अगहनिया—(सं०) (शाहा०-१)। दे०—अगहन। [अगहन + ह्या अग्रहन < आग्रहायण < अग्र + हायण]।
 अगहन—(सं०) (१) अगहन महीने में होनेवाला भाग या अन्न फल (बं० १, पट०-४, भाग-१)। (२) अगहन महीने में कटनेवाली फसल (भाग) (२०-१; भाग-१ भाग०)। [अग्रहन + ई < आग्रहायण]।
 अगहन्या—(सं०) (१) वह लड़क, जो अगहन में फलती है (शा०, बं० १)। दे०—अगहन। यो—अगहन्या कुटी—अगहन भास में की जानेवाली बाबल, चूड़ा आदि की कुटी (भाग-१)। [अग्रहन + उआ (वि० प्र०)]।

अगहर—(सं०)—(२० साहा०)। दे०—अगवर।
[< *अग्रहार]।
अगाहर—(सं०) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (२०-२००)। दे०—काजिल [अगाहर, अग + आहर, अग + उर < *अग्रवलि]।
अगाड़—(सं०) मोसल के समय हुआ में मूला के साथ उड़ा हुआ अनाज (चपा०, पट०, मवा)। दे०—अगवार। [अम, अगवर]।
अगार—(सं०)—(१) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (पट०)। दे०—काजिल [अगार < अगवार < *अग्रवृत्ति < *अग्रवलि]।
२—सीक का वह छोर, वहाँ उसका अंत हुआ हो—(चपा० १)। [अम]।
अगार, अगारी—(सं०)—हुए के ऊपर बरहे (मोटा रस्ता) से जुड़े हुए हँसुल के बंध का अनाज भाग (भाग०-१)। पर्या०—अगड़न (पट०-४)। [अगार < अगार < *अम]।
अगारी—(सं०)—(१) बीज के लिए काटे गये ऊस के ऊपर का टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्द उगता है (पट०)। दे०—अंगेरी। [अमकाएड, अंगेरी=ऊस का टुकड़ा (दे०-पा० का० हम०)]। (२) दे०—अगार। [अम]।
अगिया—(सं०) एक प्रकार की बात, जो भाग के पीछे की जला देती है। [अमिन]।
अगेड़—(सं०)—(१) पर्वों को चारे के रूप में दिया जानेवाला ऊस का ऊपरवाला भाग (पट०-४, प०)। [अमकाएड]। (२) ऊस के ऊपरवाले शिखर की पसियाँ। (३) चारे के लिए काटा गया ऊस के ऊपर का हरा भाग (सा०)। पर्या०—गेड़े (२०-२० साहा०), अंगेरी (मवा, पट०), अगरी (पट०), पगार (मं०), छीप (पु० मं०), पगड़ा (२० पु०), अगड़ा, पगड़ा (भाग०-१)। [अमकाएड, पगार < *प्राय=प्र + अम, *पत्राम, छीप < *क्षिप, क्षुप]।
अगेड़—(सं०) ऊस के ऊपर का कटा हुआ हरा भाग, जो चारे के काम में आता है (सा०)। पर्या०—अंगेरी (सा०), गेड़े (चपा०, साहा०), अंगेरी (मवा, पट०), अगरी (पट०), अगड़ा

(२० पु०), पगार (मं०), पगड़ा (२०-भाग०)। [अमकाएड, पगार < पगड़ < *प्राय, पत्राम]।
अगेरबंघू—(सं०) (मवा)। दे०—अगरबंघू। [अगेर + बंघू < अग्रवन्ध]।
अगेरनिहार, अगेरिया—(सं०) फसल या अनाज की रखवाली (रक्षा) करने वाला (पट०-४)। दे०—रखवार। पर्या०—अगेरी (चपा०, २० पु०)। [अगेरनि + हार (वि० प्र०), अगेर + हार (वि० प्र०)]।
अगेरबटाई—(सं०) खलिहान में होनेवाला बंटबारा। यहाँ बंटबारा होने तक अनाज की देखरेख करती पड़ती है, अतः इसे 'अगेर-बटाई' कहते हैं। दे०—बटाई खरिहानी। [अगेर + बटाई]।
अगेरल—(वि०) खेत या फसल की रखवाली करना (चपा०, पु०-१, पट०-४, भाग०-१)। [अम + गोवरन, अम + गोवन, अगेरना (हि०) < अम—(हि० सा० सा०)]।
अगेरी—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (रक्षा) करनेवाला (चपा०, २० पु०, पट०-४)। दे०—रखवार। पर्या०—अगेरिया, अगेर-निहार, ओगवार (भाग०-१)। अगेरी = रखवाली। [अगेर + आ, अगेर + हार, अगेरनि + हार (वि० प्र०)]।
अगेरिया—(सं०)—दे०—रखवारी। [अगेर + हार]।
अगेरिया, अगेरनिहार—(सं०)। दे०—रखवार। अगेरनिहार।
अगेरी—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (पट०-४)। दे०—रखवारी।
अगेरी—(सं०) गृहदेवता (अभिगम) के लिए नये तैयार अन्न से निकाला गया अनाज। पर्या०—अगबड़ (साहा०), रसुआड (चपा०), (भाग०-१); रसवड़ (चपा०)। [अग्रव]।
अगेरी—(सं०) खलिहान में तैयार नये अन्न में से पहले-पहल निकाला गया अनाज-अन्न (प०)। दे०—बिनुनपिरित। [< *अग्रव]।
अगेरी—(सं०) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम कार्य की मजदूरी (२० मं०)। दे०—काजिल। [अम + अगेरी < अम +

आहार, अम—चाउर (चावल), अम + उठ = अमोठ]।
अगोतिवा—(सं०)—(१) आगे का। (२) समय के मुक होते ही अथवा कुछ पहले ही रोपी-बोई जानेवाली और पहले तैयार होनेवाली फसल (पु०-१)। पर्या०—अगसर (भाग०-१)। [अम + अतिवा < *अम + उप्त]।
अगोरी—(सं०) हरबाहे को अनाज दी जानेवाली मजदूरी (२० २० मं०)। दे०—अमबड़। [अम + अगोरी < अम + आहार = अमाहार, अम + चाउरी (चावल) = अमाउर > अगोरी, अम + उठ = *अमोठ]।
अगा—(सं०)—(भाग०-१)। दे०—अगर। [अम]।
अगिक्क—(सं०) एक प्रकार का फूल (वर०-१)। [अगि + क्क]।
अगार—(सं०)—(१) पानी में ही बीज असाने (बोरे) की प्रक्रिया (वर०, पुन० १, चपा०)। (२) बोरों की वर्षा, बोझार। (३) बुद्धि, उद्यम। [< *आसार : (आसार = मूललावार बुद्धि), उच्छाल]।
अगारा—(सं०) खेत में दूरा पानी रखकर बीज बोना जाना (पु०-१, भाग०-१)। [आसार : आसार = मूललावार बुद्धि]।
अगारी—(सं०) उसकी बुद्धि, बितने से जमीन में हल होकर पानी बसा हो जाता है (पु०-१)। [आमार]।
अगबट—(सं०) पीपल, बरगद और पाकड़ का प्रयुक्त वृक्ष (पट०-१)। [अग्रे + बट < *अग्रवट]।
अजमोदा—(सं०) अजवाईन, एक प्रकार का मसाला। पर्या०—अजमोदाईन (मं०), पितरसेली, चितरसेली (मं०)। [अजमोद, अजमोदा (सं०), अजमोद, अजमुदा (हि०), अजमानी (मं०) अजमोद, बोडी अजमोद (पु०), अजमोदा (मं०), अजमो-दायोका (मरा०)]।
अजवाईन—(सं०) एक प्रकार के महीन दाने का मसाला (मवा, २० पु०)। पर्या०—अजवाईन (२०, चपा०, पट०, २० भाग०),

जेवाईन (मं० उ०)। खोरासानी अजवाईन—यह वस्तुतः इस अजवाईन की जाति का नहीं है। [अजवाईन, खोरासानी अजवाईन = पारसीक अजवाईन (सं० उ०)]।
अजवारल—(वि०) (१) अन्न या फसल निकालकर खाली किया गया बरतन; (चपा०-१, पट०-४, सर्वत्र)। (वि०)—(२) किसी बरतन को खाली कर देना (भाग०-१, सर्वत्र)। [अजवार + ल (प्र०) < अजवार (?)]।
अजान—(सं०) छोट कर (बाचन) बोया जाने वाला खेत वर्ण का धान (२० पु०) [देखी]।
अजुरा—(सं०) मजदूर को मिलनेवाली मजदूरी (पु०)। दे०—मजदूरी। [अजुरा = (अमो-कभी अजलि से नायकर ही मजदूरी दी जाती है)]।
अजु—(सं०)—(१) फसल (पट०) की बिना पकी बात (मं०)। दे०—हुडा। (२) किसी फल की कोमल बरिदा (चपा०-१)। पर्या०—खिबा—(भाग०-१)। [आई]।
अटका—(सं०)—(२० भाग०)। दे०—अकता। [अटका < अकता < अकतम < *अकतक]।
अटकमिसिया—(सं०) खेत में उपजनेवाला एक प्रकार की बात (पु०-१, भाग०-१)। [अटका + मिसिया < *अकतक + मिथित]।
अटकटिया—(सं०) (१) माठ कट्टे का खेत (पु०-१, भाग०-१)। (२) माठ लकड़ियों (?) की (माध) (पु०-१)। [अठ + कटिया < अठ + कट्टा + हवा < *अठ + काप्टा]।
अठनिया—(सं०) बुद्धिकर में से अर्धवाकिक बुद्धी (किला)। (चपा०, भाग०-१) दे०—अठनी। [अठनी + हवा < अठ आना, < आयुवक—मिला < *अयुः—(नेपा०)]।
अठनी—(सं०) दे०—अठनी। माठ जाने का सिक्का।
अठवारा—(सं०) गांव चराने या हूनेवाले को पारिवर्तिक के रूप में गांव के रूप में से आठ दिन में से एक दिन दिया जानेवाला दूध (सा०, भाग०-१)। दे०—वारा। [आठ + वार (दिन) < *अष्टवार]।
अडकल—(वि०) उस खेत के पानी का सूख जाना,

अधरासा—(वि०) किसी फल आदि का पूर्ण रूप से न पकना (चंपा०-१, भाग०-१)।
पर्या०—अधरसा (आहा०-१)। [अर्ध+रासा < *अर्ध+रस]।

अधरलप्पा—(सं०)-(१)(५०-१००)। दे०—अधरलप्पा।
(२) मवेशी को पोसने के लिए दिये जाते समय की वह धूल, जिसमें मवेशी की कीमत काँकड़ दिया जाता है और उसे बेचते समय उस मवेशी की कीमत से काँकी हुई कीमत बाढ़ करके शेष रकम को दो भागों में बाँट दिया जाता है, बाकी रकम और काँकी हुई कीमत मवेशीवाले को मिलती है और शेष रकम पोसनेवाले को (चंपा०-१)। [अध+लप्पा < *अर्धलाम (?)]।

अधलाभा—(सं०) पशु आदि के लोचने या कुली बनाने के लिए दी जानेवाली अदिन अधराशि (५०-१००)। पर्या०—करजा, तगाबी (सं०-५०), अधरलप्पा (५०-१००, चंपा०)। इस तरह का कर्म किसानों को दिया जाता है। अधराता दिये गये कर्म का हव्य और पशु की माय का आधा हव्य के सेता है।। [< *अर्धलाम]।

अधबाड़—(सं०) बाँस आदि के ऊपर का भाग भाग (चंपा०-१, पद०-४, भाग०)। [अध+बाड़ < अर्ध+फलक या बल]।

अधसेरा—(सं०) बाँस सेर का बटकरा (विह०, हरि०, री०)। अध+सेरा < *अर्ध+सेटक]।

अधिया—(सं०)-(१) किसी जमींदारी या संपत्ति के आधे भाग का अधिकारी (सं०-४०, भाग०-१)।
पर्या०—आधेआध (आहा०)। [अधिक (संस्कृत), अधियौ (ने०)]। (२) किसान और जमींदार के बीच भागकी व्यवस्था जिसमें जमीन की उपज के आधे-आधे भाग की बटाई (सं०-४०, पद०-५, भाग०-१)। पर्या०—अधबटेय, पड़ (पद०, गवा), अधबटिया (चंपा०, सं०-५०), दू दाना में से एक दाना (सं०-५० आहा०)। [अर्ध]।

अधैल—(वि०) बाट बाँटों का पूर्ण व्यवस्था विल दे०—पूरा। [अध+एल (वै०?)]।

अनंदी—(सं०) एक प्रकार का घाग (चंपा०-१)।

अनरुआ—(सं०) दे०—अनुया।

अनसुत—(सं०) प्रातः, सबरे (सं०-१, भाग०-१, चंपा०)। [देसी, मिला०—अनसुत (संस्कृत) = अरुणकाल]।

अनआन—(सं०) एक पशुआध बास (पद०, गवा, आहा०)। [देसी]।

अनजीर—(सं०) एक मीठा और सुस्वादु फल। यह मूलका से बड़ा होता है (पद०-१)। [*अजीर (संस्कृत, का०)]।

अनपट—(सं०) दे०—अनपट।

अनबाह—(सं०) जोते जानेवाले खेत में हल में चलनेवाले बैलों को व्यवस्था देने के लिए रखे गए अतिरिक्त बैलों को देखनेवाला लड़का (५०-१००, सं०-१००)। पर्या०—अनबाह, गोरसिया, [अन+बाह, *अनबाह+बाह, (अनबाह), गोरसिया < गोरसी, गुराली (अन०)]।

अननास—(सं०) दे०—अनास।

अनाज—(सं०) भोजन, अन्न। (पद०-४, भाग०-१, चंपा०)। [अन्नाद (संस्कृत) = (हि० सं०) ता०), अन्नाप, अन्नादि। अनाज (हि०), अनाज (ने०), अनाज (कामी०), अनाज, नाज (कुमा०), अनाज (सं०), अनाज (सं०), अनाज (सं०), अनाज (सि०), अनाज (सं०) अन्दा (काफि० अन्न)]।

अनाठी—(सं०) अनाड़ी। वह बैक, जो जमीन तक जोड़ा नहीं गया हो (सं०-१, भाग०-१)। [अन (अन्न०, निबे०) + आठी (=काठ < काष्ठ), अनपु (ने०) = अपरिचित, अनिट (संस्कृत) = (ने०)]।

अनाठु—(सं०) ताक का वह पेड़, जिससे रस नहीं निकलता (सं०-५०, सं०)। दे०—कोड़ी।

अनारकली—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का बाग (सं०-५०, आहा०)। [अनार+कली, अनार (का०) + कली (संस्कृत)]।

अनास—(सं०) एक फल-विशेष। इसके पीछे छोटे, पत्ते लम्बे और फल बट्टे होते हैं (पद०-१)। [अननास (हि०), नानस (नेबि० अने०), उनानास (पुर्व०)]।

अनुआ—(सं०)-(१) वह ऊँचाई, जहाँ तक करीन आदि से पानी उठाया जाता है (चंपा०)।

दे०—बोहर। (२) वह स्थान या गड्ढा, जहाँ करीन काड़ कर पानी पटाया जाता है (चंपा०)। [मिला० अनुक = रीढ़ (नो० वि० हि०); अनुप = जलसमीपस्थ, नदीतट; अनुप = अधिक ऊँचा नहीं, अनुपन्न]।

अनुपान—(सं०) एक प्रकार का बैला (पद०-१)। पर्या०—अनुपान (पद०-४)। [देसी]।

अनुराधा—(सं०) शतरुबी नक्षत्र, अनुराधा, यह नक्षत्र कार्तिक महीने में पड़ता है। [अनुराधा]।

अनुपी—(सं०) एक प्रकार का फूल (पद०, पुर्वि०-१)। [अनुप=जल-समीपस्थ]।

अनेर जाएल—(पुहा०) पशुओं का घुमा जाना, घटक जाना (सं०-५०, सं०)। दे०—हेरा जाएल। [अनेर+जाए+ल (प्र०) अनेर < अनृत (हि० सं० ता०), अनेड = मूल्य, < *अन+अर्ध = अस्वामिक]।

अनेरवा जाएल—(पुहा०) दे०—हेरा जाएल और अनेर जाएल। [अनृत (=अनेर)—हि० सं० ता०), अनेड = मूल्य, *अनर्ध (=अन+अर्ध = अस्वामिक)]।

अनेरा—(सं०) (५०-१००, भाग०-१)। दे०—अनेरिया। [अनर्ध = (अन+अर्ध) अस्वामिक]।

अनेरिया—(सं०) वह पशु, जो बिना किसी देख-भाल के बरने के लिए छोड़ दिया जाता है (५०, चंपा०-१)। पर्या०—अनेरा (५०-१००), छुटहा (गवा), उदंगार (पद०), उवमा (सं०-५०), उजरा (सं० भाग०)। [अनर्ध (< अन+अर्ध) = अस्वामिक; अनेरा = अनर्ध; छुटहा = छुट (वै०), छुट (अनेर, संस्कृत); उवमा = उवम, उविकत (संस्कृत) = स्थित; उजरा = उज्रव (वै०), उज्रव (= बयोहनी)]।

अनोआ—(सं०) वह ऊँचाई, जहाँ तक करीन आदि से पानी उठाया जाता है (सं०-५०, आहा०)। दे०—बोहर। [अनूक = रीढ़ (नो० वि० हि०), अनुप = जलसमीपस्थ, जलीय तट, अनुप =]।

अन—(सं०) भोजन, अनाज। [अन]।

अनुपट—(सं०) मवेशियों की बाँस को बंद करने के लिए तीक और टाट का बना हुआ उपकरण

(सा०, चंपा०)। पर्या०—खोलसा (सं०, सं०-५०) खोल, खोला (पु०), खोपनी (आहा०), नोकसा (आहा०), अधियारी (पद०), अधेली (गवा)।
टोकनी (पद०-४) खोलसा अनुपट—(भाग०-१)। [अनुपट = (अनु+पु+त) टंकनेवाला]।



अन्हड—(सं०)-दे०—अंधड (पद०-१, भाग०-१)। [अन्यकर]।

अन्हडवले—(सं०) सबरे का वह समय, जब पूरा साक नहीं हुआ हो और कुछ-कुछ अंधकार हो (चंपा०-१)। पर्या०—अन्हडवले (भाग०-१)। [अन्हड+वले, < अन्य (क) र+वले (< अन्य)]।

अन्हडिया—(सं०) ऊँक में बंदुर फूटने पर पड़ती कोइली या जोत (सं०-५०, सं०)। दे०—पुहारी। पर्या०—अन्हडारि—(पद०-१)। [अन्यकर]।

अन्हडिया—(सं०) कृष्णपक्ष की रात, जिसमें चन्द्रमा नहीं उगता (चंपा०-१, पद०-१, पद०-४, भाग०-१)। [अन्यकारिन् (पक्ष)]।

अन्हडवले—(सं०)-(भाग०-१), दे०—अन्हडवले।

अन्हडोख—(सं०)-(पद०-१); दे०—अन्हडवले [अन्हड+ओख < अन्यकर+उपस्]।

अन्हडारि—(सं०)-(पद०-१)। दे०—अन्हडिया और पुहारी।

अन्हडारी वेला—(पुहा०)—ईस के खेत में पापड़ पड़ना (पद०-१)।

अन्हडारि—(सं०)—भाग रोपने के पहले खेत को तैयार करने के लिए बल से भरने की प्रक्रिया (सं० भाग०)। दे०—लेव। [अनु+अनगाह]।

अन्हडारि—(वि०)—भाग के पीछे की रोपने के लिए खेत भीला करना (सं०-१)। [स्नान (?), अनु+अनगाह]।

अन्हडारि—(सं०, पद०); दे०—अन्हडारि [अन्यकर]।

अन्हडोर कइल—(पुहा०) बहुत और से भावा बनाकर हल्ला करना (चंपा०-१), [अन्हडोर+कइल; आहान (?)—कइल (< अइ=कर)]।

अपजोस—(सं०) एक प्रकार का मेवा। यह मनुष्य के बड़ा होता है (पट०-१)। [आनजोस (का०)]।

अपट्टा—(सं०)-(१) वह जेत, जिसे बाढ़ आदि किसी कारण से कृषि सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। पर्या०—उपट्टा (पट०-४, भाग०-१)। (२) नहर या पैन आदि का मुँह जोलकर जमीन की सतह से ऊँचे जल-प्रवाह के द्वारा पूर्ण रूपेण जेत की धारावाहिक सिंचाई (पट०-१०)। पर्या०—अपारपाट (चं०, पट०-४, भाग०-१), टोड़ (प०), मोहर (प०), छानन (पट०, गवा), सेलान (प०, मु०) डुरका, उपट्टा (प० भाग०)। [अ + पट्टा]।

अपराजिता—(सं०) एक प्रकार का फूल (पट०-१)। [अपराजिता (संस्क०)]।

अपाय—(सं०) फसल का एक रोग (मु०-१, भाग०-१)। [अपाय (संस्क०)]।

अपाली—(सं०) सिंचाई—(पट०-४) दे०—आव-पाली। [अ + पाली < आवपाली (का०)]।

अपुर्वाङ्ग—(सं०) एक प्रकार की घास (पट०-१)।

अफार—(सं०) बिना जोता हुआ जेत (सा०-१, चं०; भाग०)। पर्या०—परसी (पट०-४, भाग०-१)। [अ + फार < अ + फाल, अफल]।

अफीम—(सं०) पोस्ते से उत्पन्न होनेवाली एक वस्तु, जो रक्ता और नशा दोनों कामों में व्यवहृत होती है। [अफीम (का०) अहिफेन (संस्क०)]।

अर्द्ध—(सं०) दे०—अर्ध [अ + र्द्ध < अ + र्ध, अर्ध, अर्धार्थ]।

अबरलन—(सं०) वर्षा का अभाव (सा०-१)। [अ + बरलन < अ + बर + लन]।

अबाद—(सं०)-(१) वह जमीन, जो कभी परती नहीं रहती। (पट०-४, भाग०-१) पर्या०—अबादी, उठती (चं०)। (२) फसल लगाया हुआ जेत। पर्या०—अबादी, पह (प०, मु० गवा), खील बैठाभोल, (पट०), खिलमार (साहा०)। [अबाद = आबाद (का०), सुपीक (बरा०)]।

अबादी—(सं०) दे०—अबाद [अबादी (का०)]।

अविउद—(सं०) मरा हुआ या अपने में लसकर

बीज (सं० उ०)। दे०—अविउद। [अ + विउज < अवीज, अवीर्य]।

अबी—(सं०) वह जन्म का बीज, जो उम नहीं सकता है (चं०-१)। [अ + बी < अबीज, अवीर्य]।

अबुआब—(सं०) गाँव में रहनेवाले सिस्त्रियों और दूकानदारों आदि से जमींदार के द्वारा लिया जानेवाला भूमिकर (पू०)। दे०—मोतरका। [अबुआब (अर०)]।

अबी—(सं०) वह वंश, जो काम में कभी न लगे (प०, मु०)। दे०—अदार। [अबी (सं०) = अपरिश्रान्त]।

अबीन—(सं०) रोपने के बाद जेत के पानी को बाहर निकालकर बान के पौधों में चुप लगावने की प्रक्रिया। (पू०-१, भाग०-१)। [देशी]।

अन्धर—(सं०) कमजोर मिट्टी (चं०)। दे०—हलक। [अ + अन्धर < अन्ध]।

अन्धी—(सं०)-(१) न जम सकनेवाला जनाव। पर्या०—निरवीज, बिजमार, बीयामार, बटका (प०, साहा०), कुम्भी (प० भाग०)। (२) न उगनेवाला निष्फल बीज (प०)। दे०—सुणी। पर्या०—अवर्द्ध, कुन्दी (प० भाग०)। [अ + अन्धी < अन्धी, अन्धी]।

अमचूर—(सं०) आम की सूखी कटाई (चं०-१)। [अम + चूर < अमचूर्य]।

अमड़ा—(सं०) एक फल और उसका पेड़। इसका फल कर्कश और कट्टा होता है। इससे चटनी, अचार आदि बनाये जाते हैं। (पट०-१, पट०-१, सर्वत्र)। [आम्रातक (संस्क०); अमड़ा (भा०); अमड़ा, आमरा, अमरा, अमला (हि०); आमड़ा, अमड़ा (बं०); अमड़ा, आवचार (बरा०); अंगली आबी, अमड़ा, अमड़ा (पू०); आबोदेकायि; आमोट, अमालसु (ते०); अमरा, अमड़ा (चं०), अमारी (बं०)]।

अमड़ा—(सं०) वह बटखरा जो उचित ढील से ज्यादा हो (चं०-१)। [देशी]।

अमता—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (प०, मु०, चं०)। [देशी]।

अमली—(सं०) एक प्रकार का फल (पट०-१)।

अमदुर—(सं०) अमरुद। एक प्रकार का पेड़ और उसका फल। इस पेड़ का फल कच्चा रहने पर कर्कश और पकने पर मीठा होता है। इसके भीतर छोटे-छोटे बीज होते हैं। यह फल रेचक होता है। इसकी पत्ती और छाम रंगने और चमड़ा सिंजाने के काम में आती है। इसकी पत्ती के काड़ा से कुल्ली करने से दाँत का दर्द दूर होता है। मदक पीनेवाले इसकी पत्ती को अफीम में मिलाकर मदक बनाते हैं (पट०-१)। पर्या०—अमदुर—(चं०), अमरुद (साहा०-१)। [अमदुर (कल); आम-विहि (प०, मु०, बं० भा०); प्यारा (चं०) पैरु-अमरा; पैरु-फल, पैरु (प०, ते०); लकी (बं०); सफरी, अमरुद (अब०); साफली, लताम (बं०)]।

अमदुर—(सं०)-(चं०)। दे०—अमदुर।

अमरलता—(सं०) बहुत आदि के पेड़ों पर फैलनेवाली बिना जड़-पत्ते की एक प्रकार की रीली कटा। इसे 'परायेमोनी' कता भी कहते हैं। यह उन पेड़ों से रस लेकर पीती है (मु०-१, पट०-४, भाग०-१)। पर्या०—अमर-बेल। अमरलता (पट०-१, पुनि०-१, भाग०-१, चं०)। [अमर + लता < अमर + लता, अमर + लता]।

अमरलगी—(सं०)-(पट०-१, पुनि०-१, भाग०-१, चं०)। दे०—अमरलता।

अमरुद—(सं०) एक प्रसिद्ध फल (साहा०-१)। दे०—अमदुर। [अमृद (कल)]।

अमरी—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (पू०, मु०, गवा, चं०)। [देशी]।

अमरी—(सं०) एक प्रकार का साग (पट०-१, पुनि०-१)। [देशी]।

अमलदारी—(सं०) बमला का अधिकार (सा०-१, पट०-४)। [अमल + दारी < अमला + दार + र्ही (अर०)]।

अमबाड़ी—(सं०) आम का बाग (पट०-१)। [अम + बाड़ी < आम + बाटिका]।

अममूल—(सं०) एक प्रकार का घान (पट०-१, पुनि०-१)। [अम + मूल < आम + मूल < आम + मूल]।

अमहा—(सं०) बेल का एक भेद (घाव)। [अमाह - हि०] = नेत्र का एक रोग, जिसमें आँख के डंठे से लाल मांस निकल आता है (हि० भा० ल०) < अमास]।

अमारी—(सं०) घुलें हुए गोबर का (बिना जनाव) डंठे जैसा टुकड़ा, जो जलावन के काम में आता है (गवा, प०, मु०, भाग०, पट०-४, भाग०-१)। दे०—करसी। मुहा०—अमारी शुक्ल—गोबर से अमारी बनाना।

अमावट—(सं०) पके आम के रस की मुलाकर बनाया गया परतदार खाद्य-पदार्थ (प०, चं०)। पर्या०—अमोट (उ०-पू०, बं०, भाग०-१)।

अमीन—(सं०) जेत में लगी फसल का मुख्य अंकने के लिए नियुक्त व्यक्ति (पट०-४, गवा, भाग०-१, पट०-५)।

अमोट—(सं०) पके आम के रस की मुलाकर बनाया गया परतदार खाद्य-पदार्थ (उ०-पू०, बं०, पट०-१, पुनि०-१, भाग०-१)। दे०—अमावट [अम + अोट < आम्रापथ]।

अमोला—(सं०) आम का सया निकलता हुआ बिरवा (चं०-१)।

अममाधवद—(सं०) सफेद चानल और छिलके-गला एक अमही धान, जिसकी धाल में तीन-ताव धानो के मूच्छ होते हैं (सा०-१, चं०)। [अममा + धवद < आम्रगुप्त (?)]।

अमरी—(सं०) आम का छोटा टिकोला, जिसमें रेशा नहीं जाया हो (पट०-१)। [अम + अमरी < आम्रवटी]।

अरई—(सं०)-(१) पंचसिद्धों की हारने के लिए छड़ी के अंग का नृत्य भाग।

पर्या०—अरीभा (पट०, प०, मु०), और या अरुआ (प० भाग०)। [अरतुद] (२) वह बीज, जो चलते-चलते एक-एक टुकड़ा हो (सा०-१, गवा)।

[अरतुद] अरई

अरख—(सं०) कफा (शुद्ध प्रकीर्ण) का रस।

अरगनी—(सं०)-(चं०)। दे०—अरगनी।

[अरक (पट०), अरक (बं०), अरक (भा०)]

अरज—(सं०) कपाई (चं०-१)। [अरज]

अरजुन—(सं०) एक वृक्ष-विशेष, जिसकी छाट बरस के काम में जाती है (साहा०-१)। [अर्जुन]
अरजल—(वि०) उपाजित (अं०-१, पट०-४, भाग०-१)। [अरज+ल (प्र०) < अर्ज]
अरदरा—(सं०) छटा नलन, भारी, यह बाबाड के कृष्णपल में पड़ता है। टि०—बिहार में सामान्यतः बाबाड में भारी नलन में पान बोया जाता है और विष्णुवा किया जाता है कि इस नलन में बोने से पान की प्रचुरता, पुनर्बु नलन में छोड़ने वाले या अँकड़ी की अधिकता और पुष्प में बोने से सब्बा अभाव होता है, जैसा कि भिन्नांकित कहावत से ज्ञात होता है—

“अरदरा पान, पुनर्वस पैसा,
बैक किसान, ये बोये बिरेया।”

प्रायः पान पुल (बीज) महीने में काटा जाता है। बिहार के किसान भारी नलन की वर्षा पर बहुत अधिक निर्भर किया करते हैं। इस नलन में वर्षा होने का अर्थ है कि पान की फसल अच्छी होगी। अतएव, इसके नाम पर कई कहावतें प्रसिद्ध हैं—

“जादि न बरसे अरदरा हस्त न बरसे निदान।
कहाँह डाक मुनु मिल्लिअ भये किसान पिदान।”
यदि भारी-नलन के बारंब में और हस्त-नलन के जल में वर्षा नहीं होती है, तो डाक कहते हैं—
हे विरजि! मुनी, किसान पिल बाते हैं।

“बहुत बरसे अरदरा उतरत बरसे हस्त।
कसेक राजा बाँटे, रहे जर्बद विरहस्त।”
यदि भारी-नलन के बारंब में और हस्त के अंत में वर्षा हो जाती है तो राजा की ओर से माल-मुजारी कितनी भी क्यों न हो बाज, गृहस्थ (किसान) प्रसन्न हो रहेंगे।

“अरदरा बरसे सन फिछुड़ी।
एक जबाब पतर बिन भौं।”
यदि भारी में वर्षा होती है तो सभी फसल अच्छी होती है, केवल जबाब (एक प्रकार का खंडोला पीचा) ही पनहीन हो जाया करता है। पर्या०—
अदरा। [आर्द्र]

अरज्जी—(सं०) एक प्रकार का कंद, जो छोटा, लंबा, कसदार और साज करनेवाला होता है तथा जिसकी तरकारी बनती है (उ०-पु० सं०)। दे०—

बई। [आलुकी (सं०), आलुई (प्र०), कोचू, कन्चू (सं०), आलु, अलवाचा कौंदा (बरा०), अलवी (पु०), राव आलु, अरबी, कचालू (सं०), शिमक, किजहू (ता०), चम्म-कुरा (सं०)]

अररा—(सं०) नदी का ऊँचा किनारा। दे०—
करारा। पर्या०—आरार (पट०-४)। [आर = तट (हि० ल० सा०)]

अरबा—(सं०) बिना उबाले हुए पान को मुखा-कर छूटा गया पावल, जो पवित्र और शुद्ध मान-कर देवादि विपश्यक कार्य में व्यवहृत किया जाता है (भाग०-१, अं०-१, पट०-४)। दे०—बाडर। [अ + रबा = (लाभना) = जलाना, भूना (हि० ल० सा०), मिला०—अर्पण = देवादि पर अर्पण करने योग्य]

अरार—(सं०)-(१) नदी का ऊँचा लड़ा किनारा (प्रायः लंबा)। (२) पानी सूख जाने के बाद बाँधर समीप का फट धारा (अं०-१)। दे०—
करारा। [आर (हि० ल० सा०), मिला०—
अरर = किनाड़ा, अवार = नदी का इधर का तट। टेकाड़ (बरा०)]

अरारि—(सं०) दे०—करारा।

अरिजन—(सं०) जंघी-नीची और ऊँह-बावड़ समीप (सं० भाग०)। दे०—बीहड़ (अरएव (१))

अरिया—(वि०) अलस-बलक के अंतर्वाले। किसी व्यक्ति के अंत की बल में जब दूसरे का अंत रहता है, तब दोनों ‘अरिया’ कहाते हैं (सं०-१, अं०-१)। पर्या०—अरियापरोस (पट०-४, भाग०-१)। [आर = सेत की मेट्ट + इया (सं०)]

अरियापरोस—(वि०)-(पट०-४)। दे०—अरिया।
अरुआ—(सं०) बँस, बँस जादि की हकने के लिए बनी छड़ी के अंग का नुकीला कटिदार भाग। दे०—अरई। [अरुकर]

अरुआ—(सं०) अरई की बाँट का लम्बा, मोटा कंद, जिसकी तरकारी बनती है। दे०—बई।
पर्या०—कंडा (पट०-४)। [आलु, आलुकी]
अरई—(सं०) एक प्रकार का कंद, जो छोटा, लंबा, कसदार और साज करनेवाला होता है तथा जिसकी तरकारी बनती है। पर्या०—
अरज्जी (उ०-पु० सं०), पेकचा (सं०-४ सं०)

पेकची (साहा०), **पेपची** (पया, साहा०), **अलवी** (सं० भाग०), **अरई** (प्रा०)। कन्चू, अरबा, कंडा, कच्चा = बई का बड़ा भेद। [आलुकी (सं०), आलुई (प्रा०), कोचू, कन्चू (सं०), आलु, अलवाचा कौंदा (बरा०), अलवी (पु०), राव आलु, अरबी, कचालू (सं०), शिमक, किजहू (ता०), चम्मकुरा (सं०)]
अरैया—(सं०)-(१) पान के पीने का एक रोव (सं० पु०)। पर्या०—पोआरी (पु०)। (२) पानी में होनेवाली बिना पत्तों की एक पाय, जिसे पशु खाते हैं (पट०-४)। [देरी]
अरी, **अरीवा**—(सं०) हलवाहे का छोटा डंडा या छोटा रँगा, जिसकी शोक में बँसों के पुहों पर मकान के लिए कोहे का पतली कील लबी रहती है (सं०-१, पट०-४, भाग०-१)। [अरुकर, अरुतुद]

अरीआ—(सं०)-(१) पशु को हकनेवाली छड़ी के जन्त का नुकीला कटिदार भाग (पट०, सं० पु०)। दे०—अरई। [अरुकर, अरुतुद]
(२) हँगा खींचने के बरहे (रस्ती) की जगह काम में जानेवाली बाँट की लगी। दे०—कुण्डी।
अरंछो—(सं०) पैसा को पुकारने का लज (सा०-१, पट०-४)। पर्या०—अरई (भाग०-१, अं०-१)।

अर्रा—(सं०) एक प्रकार का बोझ बना दलदार जोआर, जिससे ककड़ी काटी जाती है (सं० सं०)। दे०—आरा। [आर]

अर्राइल—(सं०) वृक्ष के गिरने के समय की आवाज (अं०-१, पट०-४)। [अनु०]

अर्रहे—(सं०)-(भाग १, अं०-१)। दे०—अरंछो।

अर्राएल—(वि०) किसी को कोई काम करने के लिए कहना (अं०-१, पट०-४)। [अई + आएल (प्र०) अई < अर्ध < अर्ध (१)]

अलंग—(सं०)-(१) बल के खाने या बहारा से संबद्ध समतल भूमि से ऊपर उठता हुआ बाँध। दे०—पिड। (२) जो पड़ावों या बकायों के बीच में उठाया गया किनारा या मंड (पट०)। दे०—लॉवा। (३) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई खेतों की सीमा, मंड (पट०, पया, सं०-४)। दे०—आर। (४) खरीर का

एक जंग। हिस्ता। बाग (सं०-१, पट०-४, भाग०-१, अं०-१)। [अ + लंग < अललंग;—
मिला०—“हिंसायां प्रयुजे ज्ञानेऽवललानो मध्यलग्नयोः”-(बने०)। “अवललानोऽस्त्रिया मध्येत्रिषु स्याल्लग्नमायके”-(मेदि०)।
अलल्लय = अलल्लनीय; सीमा]

अलगल—(सं०) पाका पड़ा या मारा कपा हुआ प्यार, मकई, बाबरा जादि (पया)। दे०—
मलियाएल। (वि०) सामान्य अर्थ में उठा हुआ या उभरा हुआ। [अ + लग + ल (प्र०) = न लगा हुआ, निष्पाए]

अलगा—(सं०) डंडल के बिना ही केवल बाल की कटाई (सं० भाग०)। दे०—बकट। [अ + गला]

अलगनी—(सं०)-(१) फसल उखाड़ने का काम (सं०-१, भाग०-१)। (२) कपड़े टाँपने या रखने की रस्ती या बाँट (पट०-४, भाग०-१)। पर्या०—अलगनी (अं०-१)। [अ + लग + ना (प्र०) + ई (प्र०) < अवलग्न (?)]

अलगावल—(वि०) किसी चीज का बोस, दूसरे को, किसी के द्वारा उठाया जाना (अं०-१, पट०-४, भाग०-१)। [अ + लगाव + ल (भा० प्र०)]

अलगी—(सं०) वह हलकी जमीन, जो अपनी उर्वरा-शक्ति को खोती होती है (सं० भाग०)। दे०—लू। [अ + लग + ई]

अलगोजा—(सं०)-(१) बाँट के कोपक का ऊपरवाला भाग (अं०-१)। (२) वह बाँसुरी जो सामने से धुँकर कर बजाई जाती है (अं०-१)। [देरी]

अलती—(सं०) एक प्रकार का कंब, जो छंटा, लंबा, कसदार और साज करनेवाला होता है तथा जिसकी तरकारी बनती है (सं० भाग०, भाग०-१)। दे०—अरई। [मिला०—आलुकी]
अलपजिया—(सं०) बोझ खानेवाला पशु (सं०-पु० सं०)। दे०—निखोराह। [अलप + जिया < अल्पजीव, अल्पजिह]

अलान—(सं०) कटावों को ऊपर चढ़ाने का जंगम। पर्या०—चौड़ा (सं०-१, पट०-४, भाग०-१, अं०-१)। [आलन, आलंवन]

असावा, असावे—(सं०)—(१) किसान ने द्वारा अपने खेत में मक्की मारि की उपज के बाद बोई जानेवाली नौक। (२) एक फसक फाट लेने के बाद बोई जानेवाली दूसरी फसक। [अलावा (अ०)]

असावे—(सं०) दे०—असावा।

असाह—(सं०) बासपाव बकाकर बनाई हुई बाव (पट०, गवा)। दे०—आवर।

अलुआ—(सं०)—(१) एक प्रकार का अंबा, मीठा कंद, जो फलाहार आदि में खाया जाता है (पु०-उ० वि०)। दे०—सकरकन्द। (२) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (पु० उ०, व०, भाव०-१)। [अलू, आलूक]

अलुई—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (पु० उ०, भाव०-१, अंवा०)। दे०—आलू। [आलूकी]

अलोर—(वि०) बहुत गंधा, इकरास (पु०-१, भाव०-१)। [मिला०—अलोर = (जितना हिसाब-किताब न हो; अधिक)]।

अलोव—(वि०) किसी वस्तु को किसी चीज की ओट में रखना (अंवा०-१, भाव०-१)। [आलुस, मिला०—अलोव होता (वि०)]

अलुआ—(सं०) एक प्रकार का अंबा मीठा कंद, जो फलाहार आदि में खाया जाता है (पु०-उ० वि०, पु०-१, भाव०-१)। दे०—सकरकंद। [अलु + आ < आलूक]

अलुआह—(सं०) अमानक हल्की ओट लगाने की प्रक्रिया (अंवा०-१)। पर्या०—ओड़-वाह (पट०-४)। [अलुआ]

अनहार—(सं०) वर्षा का वह शौंका, जो कुछ देर के लिए एकाएक पानी बरसा जाता है (अंवा०-१)। पर्या०—अनहार (पट०-४, भाव०-१)। [अनहार = अ + सार]

अबौसल—(वि०) बड़े बरतन की पहले-पहल काम में लाना (सा०)। दे०—उड़हल [अवासन]

अवारज—(सं०) वह गहरी, जिसमें प्रत्येक दिन के बाद-अध्य के सारांश का हिसाब लिखा रहता है। पर्या०—बारजा। [अवारजा (अ०)]

असकलाह—(सं०) हंकी की घुरी (व० भाव०)। दे०—बकौत। पर्या०—साम, समौआ (पट०-४)। [अस + कलाक]

असठी—(सं०) मोरी (बोसती) के नीचे की अंकी मूँच (गवा)। [अपठी?]

असनी—(सं०)—(१) भाविन में होनेवाला सकंर छिलकावाला एक अंश बाव (सा०-१, पट०-४, पट०-१, भाव०-१)। (२) वह उड़द, जो बगहन में फलती है (अं०)। दे०—कटो। [आसिन + ई = असनी < आसिनीय]। (३) पहला नखन, अरिबनी (पट०-४, भाव०-१, अंवा०)। दे०—अरिबनी। [अरिबनी]

असफगोल—(सं०) एक प्रकार की ठिक-जैसे दानवाली वस्तु, जो तरब वस्तु के साथ मिलने पर फलकर लसदार बन जाती है तथा जिसके दाने और मूँची वेद की बीमारियों में खाई जाती है। इसका दाना मूर एवं गुलाबी होता है और मूँची स्वैत-मूरी होती है। पर्या०—सफगोल (पट०-४, भाव०-१, अंवा०)। [इसफगोल (अ०)]

असमानी—(सं०) हफा मीका रंब (पट०-४, भाव०-१)। दे०—कुपुन। [आसमान + ई = आसमानी (अ०)। मिला०—आरा (विज्ञा) + मान (संस्कृ०)]।

असरा—कफ़ी का वह बाव जो कच्चा होता है (अंवा०-१, पट०-४)। पर्या०—असरा (भाव०-१)। [अ + सरा < असार]

असराफ—(सं०) अंकी अंकी के काश्तकार (पट०-४)। पर्या०—सुरफा (पट०)। सुरफान (गवा), बड़ आदमी (अं० उ०)। [असराफ (अ०)]

असरेखा—(सं०) नया नखन, बाधेबा। वह नखन प्रायः सामन के अंत में जाता है। वह बख्तकार छह नखनों से बना है। इसका देवता सूर्य है। कहा०—'वे न अरे असरेखा मग्ना।' कंर मरे असरेखा मग्ना ॥'—जो आक्का और मगा नखन में नहीं भरता है, वह उबटक नहीं भरता है जबतक पुनः दूसरे वर्ष बाधेबा और मगा नखन नहीं आ जाते। पर्या०—असरेम, असरेसा

(अंवा०), असरेखा। असरेखा (अंवा०)। [आरलेवा]

असरेम—(सं०) दे०—असरेखा।

असरेखा—(सं०)—(अंवा०)। दे०—असरेखा।

असल—(सं०) वह मूलधन, जो मूर पर दिया गया हो (पट०-४, भाव०-१, अंवा०)। पर्या०—मूर, मूल (आहा०), मूरी रुपया (प०-१)। [असल—अर०]

असल-के-असल—(सं०) जिस बाव पर खरीदा गया हो, उसी बाव पर बेचने की प्रक्रिया (प०-१, पट०-४, भाव०-१, अंवा०)। दे०—बिको के बाव।

असला—(सं०)—(भाव०-१)। दे०—असरा।

असलाएल—(वि०) लड़ना, स्वाद उतरना, चलना (पु०-१, भाव०-१)। [अ + सलाएल < अ-सराएल (= आ + √ स = गच्छ होना, लड़ना), मिला०—सल्य (अ०)]

असलेखा—(सं०) नया नखन, बाधेबा। दे०—असरेखा [आरलेवा]।

असाह—(सं०) बापाइ, भारतीय वर्ष का चौथा और चौथा का अतिम मास। प्रायः मून के अंत और गुलाई के आदि के १५ दिन। इस मास की पूर्णिमा को प्रायः उत्तराषाढ़ नखन पड़ता है। अतः बापाइ नाम पड़ा है। (पट०-४, भाव०-१, अंवा०, आहा०, सा०, भाव०)। दे०—असाह।

असाही—(सं०)—(१) बापाइ में बोई जानेवाली मील की दूसरी संती (अं० उ०)। दे०—कपुनी। (२) असाह में बोयी जानेवाली फसल। [असाह + ई < आसाहीय]

असाही के कोइ—(सं०) ऊन की मूँच कोइमी, जो बापाइ या आर्शन-नखन में होती है (अं०)। दे०—असाही कोइमी। [असाही + कोइ]

असाही कोइन—(सं०) बापाइ महीने में ऊन के अंत की हल्की कोइई (पट०)। दे०—असाही कोर। [असाही + कोइन]

असाही कोर—(सं०) बापाइ महीने में ऊन के अंत की हल्की कोइई। पर्या०—टोऊक (अंवा०, उ०-१, भाव०, अंवा०), असाही कोइन (पट०), आदरा-कोरन (अंवा०, उ०-१)। [असाही + कोर]

असामिबार—(सं०) वह समझौता, जिसके द्वारा किसान लोग यूरोपियन निरुद्धों के साथ मील की संती में प्रवृत्त हुए थे। दे०—रैयती। [असामि + बार < आसामी (अ०)]

असामिबार—(सं०) दे०—रैयती। [असामि + बार < आसामी (अ०) + बार]

असामी—(सं०)—(१) कर्ब लेनेवाला किसान (भाव०-१, अंवा०)। दे०—अहुका। (२) दे०—रिनिहा। (३) दूसरे की अधिकृत जमीन को मगरी आदि किसी वस्तु पर खोलेवाला किसान। पर्या०—रैयत, परजा, कारवकार, पोलेदार, (पट०, भाव०-१)। [आसामी (अ०) मिला०—अस्थामी (संस्कृ०)]

असार—(सं०) फास की शोक लेव करवाने की क्रिया (प०-१)। दे०—बार पिटावक। [आसार]

असुनी—(सं०)—(भाव०-१)। दे०—अरिबनी।

असेरी—(सं०) बावकी जमीन में पटवारी की प्रतिमन जावा देर के हिसाब से मिलनेवाला पारिवयिक (आहा०)। दे०—गौबा। [अ + सेरी < अचसेरी < अर्चसेट]

अरिबनी—(सं०) पहला नखन, जिसकी आकृति मोड़े के मूँच जैसी जाती है। पर्या०—असनी, असुनी (भाव०-१)। [अरिबनी]

अहमुल—(सं०) वह पटु, जो हमेशा बीच निकालता हो (पट०-१)। [अह + मुल < अहिमुल]

अहरा—(सं०)—(१) जल के संग्रह के लिए बना हुआ जलाशय, लजाना, अहरे की बेंद (प० वि०, भाव०-१)। पर्या०—बौध, भरयन (अंवा०), धूर (उ०-१), छरकी (प०-१, अंवा०)। (२) बाव के चिरी हुई बाव की उपजवाली और अंकी सतह के जल-प्रवाह से युक्त अंकी समतल भूमि (प०-१, उ०-१)। दे०—बेंदड़ी। [आहार, जलाधार, आहार]

अहरी—(सं०)—(१) छोटा जलाशय। दे०—बेंदड़ी। (२) संतों की सीमा, जो सामान्य भूमि से अंकी उठी रहती है, बेंद (पट०, भाव०-१)। दे०—बार। पर्या०—अहीर।

लेहेंही = जलबरो के पानी पीने के लिए बनाया गया होय (भाष०) । [अहुरा + ई (बन्धा० स्त्री० प्र०)]
 अहुरी—(सं०) बेल के लुर का गत्ता (बन्धा०) । [अ + हुरी < अर्ध-सुर]
 अहुरा—(सं०) मूठा या पूसा से बनी कतल की दाहि (पु० सं०, भाष०-१) दे०—बैरासा ।

आ

आँस—(सं०) एक प्रकार का बरदा जान (बर०, पूर्णि०-१) । [आसु (सं०), आसु (सं०), आसुस हि०]
 आँसू—(सं०) (जोग, मय०, जल-१) । दे०—अँकड़ा ।
 आँख—(सं०) (१) बीचवाले बालू में निकला हुआ अकुर (पट०-४, भाष०-१, बन्धा०) । दे०—आँख । (२) ऊँस का अँकुर (सं० उ०, साहा०, भाष०, बन्धा०, भाष०-१) । पर्या०—अँखिया (उ० सं०), अँखिया (पट०), कनसी (उ० सं०), गौमी (उ० भाष०) । (३) ऊँस के होने का बीज-जैसा वह स्थान, जहाँ से अकुर निकलता है (भाष०, प०, उ० सं० भाष०-१) पर्या०—अँखिया (उ० सं०), अँखिया (पट०), अँखिया (पट०), अँखिया (पट०, पु० सं०), अँखिया (पट०, भाष०) । (४) बीज की गड पर बीज-जैसा स्थान, जहाँ से अकुर निकलता है (बिहा०, भाष०) । [अँखि (सं०), अँखि (भा०), अँखि]
 आँखा—(सं०) दे०—आँखा ।
 आँखगुला—(सं०) बोट-बन्दरे का एक तरीका । इनमें जिनमें आँखियों में सामान बोटगा होता है, उनमें हिम्मे लगाकर हर बारभी के लिए अलग-अलग नाम मुखक बन्दुर्ग नाम की जाती है । कोई लड़का जबब छिटा रहता है । उन्हींको देखकर हिम्मे जाने हैं, जो एक-एक मुखक गड-गड हिम्मे में रखा जाता है, उनका बड़ी हिम्मा हो जाता है (उ० सं०) । [अँखि + गुट (बर०), गुट + कुर > गुट > गुला] अँखि + गुट (बिहा०, भाष०, गुट > गुट > गुला)

आँखि—(सं०) (१) बीचवाले बालू में निकला अँकुर । पर्या०—आँखि (पट०-४, भाष०-१) । (२) दे०—आँखि-१ । [अँखि]
 आँखुर—(सं०) अनाज के बोटवारे में किसान द्वारा प्रतिफल एक या दो घेर लिया जानेवाला बँस (साहा०) । पर्या०—मुठिया (पट०-४) । दे०—अँखुरी । [अँखलि]
 आँखुरी—(सं०) अन्न बोने के समय किसान की ओर से बड़ई की निकलेवाला एक निरिपल (अँखलि-भाष०) बन्न-परिमाण (बन्धा०) । दे०—अँखुरी । [अँखलि]
 आँट—(सं०) (१) बँस (बन्धा०-१) । (२) पोखरे का किनारा (बन्धा०-१, भाष०-१) । [अँटी (हि०)—हि० गु० सा०, मिला०—आउट (भा०) < आ + अँट]
 आँटा—(सं०) बी, गेहूँ आदि का पीसा हुआ पुर्ण । पर्या०—आटा, पिसान, कनिक, चिकस (पु० सं०), चिकसा (उ० भाष०, भाष०-१) । [अँट = 'अँट'...चतुष्कमकयोः—(जने०), 'अँट' मको च' (मेवि०), अँट > आटा]
 आँटी—(सं०) पान आदि काटने और होने की मझुरी, जो प्रति बीजा एक आँटी के हिसाब से दी जाती है (बर०-१, भाष०-१, जन्म) । [अँट + ई—(हि०)—अँटना; (अड ?—हि० सं० सा०) [मिला०—ताड (सं० सं०); ताडलु ताडने घोषे पृष्टि मेव तुजादिपु (मेवि०, जने०)]
 आँटी, अँटिया—(सं०) (१) तँवार होने पर रोपने के बिना उखाड़े हुए पान, मझुरा आदि के बीज के पोथी का पूजा या उडन (सं० उ०, उ० सं०, बन्धा०-१, भाष०) । (२) अनाज निकाल लेने के बाद पुत्राक का पूजा (बँसल) (सं० उ०, सा०, भाष०-१) । दे०—पूजा । (३) अँटिया बापसरी से बड़ी दोनों मुआओं के मंदर मरकर बागँबासी कनल की राशि (उ० सं०-साहा०) । दे०—पूजा । [अँट + ई, इवा (हि०)—अँटना; ताड (सं० सं०), मुष्टियेयतृयादिपु (मेवि०—जने०)]
 आँठि—(सं०) एक प्रकार की भास, जिसे पशु खाते हैं । दे०—अँठकी । [आँठिल—मिला०—अग्न्या चाम्लोय्याम्—(मेवि०)]

आँठी—(सं०) (१) एक प्रकार की भास, जिसे पशु खाते हैं (पया, उ० सं० साहा०) । दे०—अँठकी । (२) आम या किसी दूसरे फल की गुठली (बन्धा०-१, भाष०-१) । (३) मवेशियों का एक प्रकार का रोग । इसमें वह काफी खासता है (बन्धा०-१, पट०-४) । पर्या०—उरका (पट०-४) । [अँठी, अँठिल—मिला०—अग्न्या चाम्लोय्याम्—(मेवि०)]
 आँठी के रोटी—(सं०) आम की गुठली को पोसकर बनाई गई रोटी । पर्या०—चिसली के रोटी (बन्धा०), अमोठी के रोटी (पया, उ० सं०), गुग्गा (उ० भाष०, भाष०-१) ।
 आँठा—(सं०) एक प्रकार का फल (बर०-१) । पर्या०—उरका (भाष०-१) ।
 आँतर—(सं०) बेल बोतने के समय एक पाह में कुछ हटकर आये की ओर से जोतने की प्रक्रिया, जिससे बँस आसानी से पून लगे और बेल की जुलाई हो सके (बर०, पूर्णि०-१, पट०-४, भाष०-१, बन्धा०, भाष०) । पर्या०—हट्टा (उ० सं०, उ० सं०) । दोसर आँतर भरल (मुहा०)—दूसरी आँतर की जुलाई आरंभ करमा । [अँतर, अँतरा]
 आँतर, अँतरा—(सं०) पान की लताओं या पतियों के बीच का स्थान (बिहा०, भाष०) । दे०—अँतरा । [अँतर]
 आँवट—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीसा हुआ बी (उ० सं० वि०, उ० सं० सं०) । दे०—अँवरा । [देही]
 आँसु—(सं०) (१) बरदा फल (बर०-१ पूर्णि०-१) । (२) एक प्रकार का बाल । [आँसु]
 आँसु—(सं०) सामान्य भूमि से उठी उठी हुई लेंचों की बीमा, मँड, (पया, उ० सं०) दे०—आँसु । पर्या०—आँसु (पट०-४) [दे०—आँसु]
 आँवटकेन—(सं०) बीनी सिध में दूर से लाये जानेवाले ऊँस, जिसकी तोल बाहर ही कर की जाती है (वि०, उ०, हरि०) । [मिला०—मँटकेन] [आँवट + केन (सं०)]
 आँवट—(सं०) कोठी या बकारी का वह मुँह, जिससे जल निकाला जाता है । दे०—आँवट । [आँवट, अँवट]

आक—(सं०) ऊपर भूमि में होनेवाला एक प्रकार का प्रसिद्ध बीमा (बर०-१) । पर्या०—अकवन (पट०-४, बन्धा०, भाष०-१) । [अक]
 आकासफल—(सं०) आसमान से गिरनेवाले फले । पर्या०—बनौरी (उ० सं०-१, पट०-४, बन्धा०, भाष०-१) [आकाश + फल]
 आखा—(सं०) मवेशियों की पीठ पर होने के लिए रखा हुआ बोरा । पर्या०—आँखा, संगी (बन्धा०), गोठिया (सं० सं०), पट्टा (सं० सं०), जोरा, गोम (साहा०) । [देशी, मिला०—असु]
 आखिरी पटावन—(सं०) ऊँस की तीसरी या अंतिम बिचाई (पट०, भाष०-१) । पर्या०—तेसर पटावन, तेसर पानी (पट० से अन्ध) तेसरो पटावन, तेसरो पानी (उ०, भाष०, भाष०-१) । [आखिरी + पटावन]
 आगा—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊँस के ऊपर (सिरा) का टुकड़ा, जो बीर भाग की जपेला बस्ती उबता है (उ० भाष०) । पर्या०—अगा (भाष०-१) । दे०—अँगेरी । [अम, अमकायु]
 आधी—(सं०) कृष्ण में लिदे गये अन्न के बीच पर बिना जानेवाला दूध (प०, उ० सं० सं०, भाष०-१) । पर्या०—अगवन (उ० सं० साहा०), आधा (पट०), कठोर (पट०) । [अर्ध]
 आटा—(सं०) बी, गेहूँ आदि का पीसा हुआ पुर्ण । दे०—आटा । [अँट, (अँट...चतुष्कमकयोः—जने०), (अँट मको च—मेवि०)]
 आठक—(सं०) गौरासी की बँट के मंत्र का गौठ-वार बँस (उ० सं० साहा०) । दे०—एक । [देशी (?)]
 आधा—(सं०) ११ पैका बन्न का परिमाण, जो प्रायः बार घेर से बीच घेर तक होता है (भाष०-१) । [आठक]
 आँठ—(सं०) बी घेर आठ छटा की एक तोल । पर्या०—अँठिया (पट०-४, बन्धा०) । [आठक, अँठक]
 आँठ—(सं०) एक प्रकार का मोटा कंद, जिसका मसालों और औषधियों में उपयोग होता है (उ० सं० सं०, उ० सं०, उ० सं०) । दे०—अवरका । [आँठक]

आर्द्रा—(सं०)—दे०—अक्षर। [आर्द्रक]
आदीचक—(सं०) एक प्रकार का खाने योग्य
कंद। पर्या०—कंद, चोकन्दर। [आदी+चक]
आध्याध—(सं०) किसी जमीनारी या संघर्ष के
बाधे भाग का अधिकारी (शाहा०, भाग०-१)।
दे०—अधिया। [आधे+आध<अधो]

आन—(सं०) कोठी या बखारी का वह मुँह, जिससे
अन्न निकाला जाता है (भाग० १)। पर्या०—
आना, आन, मोहना (पु० सं०, पट०)
मुँह (पं० उ०), मुखा (पट० ४)। [आनन,
अनायन]

आना—(सं०)—(भाग०)। दे०—आन।
[आनन, अनायन]

आफत—(सं०) (१) बाढ़, वर्षा आदि के कारण
नयी ज़मीन में हुई जलवृद्धि (पट०, भाग०-१)।
दे०—आहर। (२) कष्ट, विपत्ति। [आफत
(सं०), मिला०—आफत (संस्कृत०)]

आबपारी—(सं०) सिंचाई (सा०-१)। पर्या०—
आपारी (पट०-४)। [आप+पारी (का०)]

आबादी—(सं०) बगीचा या वह भूमि, जिसमें
संतो होनी है। पर्या०—आबादी (पट०-४,
भाग०-१)। [आबाद+ई (का०)]

आभा—(सं०) काबूझा—जैसे धरकवासी लकड़ी
की बनी चीज़, जो संत में
पानी पठाने के काम में आती
है (सं० उ०)। दे०—हुवा। —
पर्या०—बाँड़ (पट०-१),
झिझा (भाग०-१)।



आभा

[मिला०—आभाय —
आभायों पर एक पूर्णतयायनयोरमि-सेवि०)
अभि—नाम में से अलगाई के निर्माण के लिए
लकड़ी का कुदाल जैसा औजार। "अभिः
क्षी कष्टकुदालः—(अभर)"]

आभी—(सं०) कड़ी मिट्टी काटने के लिए नोक-
दार मजदूर एक प्रकार का कावरा (गया)
दे०—कींग। पर्या०—अंग्रेडो (पट०-४)। [आ
+भिद=यन्त्रपूर्वक काटना-मिला०—अभि
=काष्ठ-कुदाल]

आम—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध फल
(बिहा०)। [आम्र]

आम के बगीचा—(सं०) आम का बगीचा।
(भाग०-१)। पर्या०—गाछी (सं०, भाग०-१)।
[आम+के+बगीचा<वागीचा (का०),
मिला०—आम्र, संस्कृत०]=वृक्षाणा समूहः—
"आम्रं वनं तलं तलं गुहिल समर्थं वसम्"—
त्रिका०]।

आमदनी—(सं०) बानेवाला धन (भाग०-१)।
[आमदनी (का०)]

आमन—(सं०) एक प्रकार का धान (हर०-१,
पूणि०-१)। [आमन (देसी०), मिला०—
आमाव, आम्रान्न=आम के सट्टा धान]

आमाचउद—(सं०) एक प्रकार का धान। इसकी
बाल में तीन-तीन धान का एक-एक गुच्छा रहता
है। पर्या०—आमाचौर (हर०-१, भाग०-१)।
[आमा+चउद=(आम की तरह गुच्छावाला
धान), आमा<आम्र, चउद<गुप्त अथवा
गोध<अथुपु 'परिवेष्टने']

आमाचौर—(सं०)—(हर०-१, भाग०-१)। दे०—
आमाचउद। [आमा+चौर<आमा+चउद
<आम्रगुप्त, आम्रगोध (?)]

आयसा—(सं०) वह जमीन, जिसे सरकार दान
कर देती है (सा०-१)। [आयसा (सं०)=वह
भूमि जो इयाम या मुदला को बिना लगान या
कम लगान पर दी जाय (हि० सं० सा०)]

आर—(सं०)—(१) वह संत या भंडान, जहाँ गायें
बराई जाती हैं (सं० भाग०)। दे०—बराई।
पर्या०—आरागाह (पट०-४)। (२) संतों के
बीच की सीमा, जो सामान्य भूमि से ऊँची उठी
रहती है, मेड़। पर्या०—आर (चंपा०-१), आरि,
आरी, देवेड़ (सं० उ०), अहरी, अलंग,
परांड (पट०, गया, ब०-च०), परंगा, गेंडारी,
आइल, आल (गया, ब० पुं०), डोंड (ब०-
ब० साहा०)। (३) माछी के किनारे की घेरने
वाली उठी हुई जमीन (सं०)। दे०—मेड़।
(४) पहले बोती हुई रेखा को काटकर की
गई जुताई (चंपा०, ब० भाग०)। दे०—आरा।
[आर, आरीह, आल, अल (पुल), मिला०—
अरु अमियोगे, अरुह-उधमने]

आर—(सं०) मवेशियों को हँकनेवाली छड़ी के
अंत का मुकीला और कटिदार भाग (ब० भाग०)

दे०—बराई। पर्या०—अरउआ (पट०-४,
भाग०-१)। [अर, आर, अराम]
आरहा—(सं०) सपू, अनाज बाँध की नील पंके
की नाव (सं०-१, भाग०-१)। [आरहक
(संस्कृत०), आह (हि०)]

आरा—(सं०)—(१) पहले बोती हुई रेखा को
काटकर की गई दूसरी जुताई। पर्या०—
आर (चंपा०, ब० भाग०), समार (ब०-
पुं० सं०), सन्धार (भाग०)। (२) सीपने
के निमित्त बनी माछी का बहुत आंतरिक
भाग (ब०-पुं०)। पर्या०—पैन, पैनि। डोंगर
(ब० सं०, पट०, गया), नारी, करहा (पट०,
गया), भीरा (पुं० सं०), डोंग (पट०, ब०-पुं०)
(३) माछी के पहिले
की पुट्टी के बीच में
जड़ी हुई ककड़ी की
मोटी मोर जोड़ी पट्टी।
(४) मोहे का बना,
रेतकर ककड़ी चीरने
का दोतीदार हथियार
(बिहा०, भाग०)। (५)
टंकुवा या सूना, जिससे
चमड़ा सींचा जाता है।
[अर, आर, आरा, आल,
आलि, आलवाल]



आरा-१



आरा-२

आरि—(सं०) संतों की सीमा, जो सामान्य भूमि
से ऊँची उठी रहती है, मेड़। (बिहा०, भाग०)।
दे०—आर। लोको—"आरि बाई व कपार
छाटी, बीच बसा चरवाही।" यदि तुम आरि
(मेड़) पर बाँधे हो तो अपने चिर की रक्षा के
लिए छाटी रखो, (और तब) तुम बंगा (कपाल)
के संत के बीच अपने गन्तु चराओ। [अर,
आर, आल, आलि, आलवाल]

आरिछोटल—(मुहा०) मेड़ काटना वा काटना
(सं० भाग०-१)। दे०—गोहट। [आरि+
छोटल (देसी०)]

आरी—(सं०)—(१) संतों की सीमा, जो सामान्य
भूमि से कुछ ऊँची उठी रहती है, मेड़। दे०—
आर। पर्या०—आरी (चंपा०-१, भाग०-१)
[आर, आलि, आलवाल] (२) ककड़ी
चीरने का एक औजार, छोटा चारा। (चंपा०,

पट०-४, भाग०-१, भाग०)। [आर+ई<आर]
आरीवास—(सं०) संत के चारों ओर लम्बे-
गोल बाकार की जुताई (गया, पट०-४) दे०—
चोकेडा। [आरी+वास, आर+वास (देसी०)]
आरु—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध गोल कन्द,
जिसकी तरकारी बनाई जाती है (पुं० सं०)।
दे०—आलू। [आहू, आलू]

आल—(सं०) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई
संतों की सीमा, मेड़। (गया, ब० पुं०)। दे०—
आर। [आल, आर, आलवाल, आलि]

आलू—(सं०) एक प्रकार का गोल कंद, जिसकी
तरकारी बनाई जाती है (बिहा० भाग०)।
पर्या०—आरु (पुं० सं०), अलुआ, अलुई
(सं० उ०, भाग०-१)। [आहू, आलू]

आलो—(सं०) पूरी फसल के पकने के पहले ही
खाने के लिए किसान द्वारा काटा गया अनाज
(गया)। [देसी]

आस—(सं०) खाल (हर०-१, पूणि०-१)। [आस
(संस्कृत०)=राल, धूलि]

आसन—(सं०) एक प्रकार का वृक्ष (हर०-१
पूणि०-१)। [असन]

आसावास—(सं०) बगीचदार की ओर से किसान
को बोवाई मालगुजारी या मालगुजारी के
बिना परती जमीन देने की प्रणाली (चंपा०, ब०
सं०)। दे०—खिलही [आसा+वास (देसी)]

आसिन—(सं०) आश्विन, भारतीय वर्ष का
सातवाँ और शरद ऋतु का पहला मास
(सितम्बर के अंत और अक्टूबर के आदि के भागः
१५-१५ बिज)। आश्विन की पूर्णिमा की प्रायः
अश्विनी नक्षत्र हुआ करता है, अतः इस मास
का नाम आश्विन पड़ा। उषोत्थि-गणना के
अनुसार कभी आश्विन से ही वर्ष का आरंभ
किया जाता था, तब यह पहला मास था।
[आश्विन<आश्विनी<अश्व+इन् (सं०)]

आहर—(सं०)—(१) बीच से घिरी हुई धान की
उपजवाली, जलप्रवाह से युक्त, ऊँची समतल
भूमि (सं० उ०, ब०-पुं०, भाग०-१)। दे०—उहेड़ी।
(२) दो चढ़ावों या बसाकियों के बीच में
उठाया गया किनारा या मेड़ (ब० पुं०,
भाग०-१)। दे०—कोर्ना [आहर, आघार]।

आही—(सं०) और (बहर) के किनारे की सीते-
जैसी गहरी जमीन । [देही]
आहुत—(सं०) गूँठा या पूजा से बड़ी कलक की
राशि (पू० मं०, भाष०-१) । दे०—बोँदा ।
[देही]

इ

ईकड़ी—(सं०) जगज में पाया जानेवाला छोटा-
छोटा कंकड़ । दे०—बैकड़ी । [मिला—बैकुर]
ईकरी—(सं०) दे०—ईकड़ी ।
ईगुर—(सं०) कूटकर छिलका-रहित किया हुआ
जो । पयो०—इंगुरी । [देही, मिला०—इंगुर
(=रंग), हिंगुल (संस्क०)]
ईगुरी—(सं०)—दे०—इंगुर । [देही]
ईच—(सं०) एक धूँट का बारहवाँ हिस्सा (हरि०,
री०) ।
ईजर—(सं०) एक जंगली पेड़ (बु०-१, भाष०-१)
[इन्जल=जल-मयान भूमि में उगनेवाला एक
पौधा—मो० वि० वि०]
ईजोरिया—(सं०) सुकल पत्र । वहीने के कृष्णपत्र
के अतिरिक्त दूसरा पत्र, जिसमें चंद्रमा की कला
प्रतिबिम्ब बहती है और रात उबेली होती जाती
है । (पर० १) दे०—इजोरिया । [इन्जुओतिष्,
ज्योतिष्, ज्योतिर]
ईदरा—(सं०) ईद, पत्थर से बनाया हुआ गढ़ा
कुर्वा (पट०-४) । दे०—इदारा । [इन्द्रवाट,
अन्धु, इरंघर < इर = जल + धर = धारण
करनेवाला, कुर्वा] ।
ईदारा—(सं०) ईद-पत्थर से बनाया हुआ गढ़ा
कुर्वा । दे०—इदारा । [अन्धु, इन्द्रवाट, इरंघर]
ईकड़ी—(सं०) (१) सरकंडे की तरह की एक
पास, जो टट्टी या बिजने के काम में आती है ।
(चं० ०-१) पयो०—ईकर (पट०-४) । (२)
अनाज में मिलनेवाला छोटा कंकड़ । दे०—
ईकड़ी । इकट, इकट=एक प्रकार का सर-
कंडा (मो० वि० वि०) ।
ईकरी—(सं०)—(१) एक प्रकार की बात । (२)
पान की पंक्तियों का अवलंबन (ब०-पू०, सा०) ।
दे०—कोरी । [इकट, इकट=एक प्रकार का
सरकंडा]—(मो० वि० वि०)]

इकर—(सं०) दे०—इकरी ।
इजाफा—(सं०) लगान में की गई वृद्धि (सा०-१,
पट०-४, भा०-१) । [इजाफा (ब०)]
इजमाल लगान—(सं०) अनेक मूल्यामियों की
सम्मिलित मासगुजारी (सा०-१) । [इजमाल +
लगान (का०)]
इजारा—(सं०) बंधक पर लिया गया ढोका ।
(पट०-४, भा०-१) । पयो०—जरपेरागी ठीका ।
[इजारा (का०)]
इजोरिया—(सं०) सुकल पत्र (बु०-१-पूणि०-१) ।
दे०—ईजोरिया । [इजोरिया < इन्जुओतिर,
< ज्योतिर]
इनर केल—(सं०) एक लता-विशेष (चं० ०-१,
बर०-१, पूणि०-१) । [इन्द्रवल्ली]
इनाम—(सं०) (१) जैसी कभी के कायतकारों
की भूमिकर से भूमि (पट०) । दे०—माकी ।
[इन + आम (ब०)] (२) प्रसन्नता का
सौहार्द के कारण मिलने पर अधिकृत कर-मुक्त
भूमि । दे०—खरीदगी । [इन + आम (ब०)]
(३) पुस्ति-अधिकारियों, भूमिस्टों के जर्द-
कियों या कांस्टेबलों को या किसी दूसरे बड़े सर-
कारी अफसर के द्वारा जी शान-प्रवेश करने,
सिबिर डालने या किसी विशेष अवसर पर रखा
गया या दिया गया पुरस्कार (ब०-मं०, भा०-१) ।
दे०—सलाही । [इन + आम (ब०)]
इनामत—(सं०) प्रसन्नता या सौहार्द के कारण
मिलने पर अधिकृत कर मुक्त भूमि । दे०—
इनाम, खरीदगी । [इन + आमत (ब०)]
इनार—(सं०) ईद-पत्थर से बनाया हुआ गढ़ा
कुर्वा । (चं० ०-१, पट०-४, भा०-१) ।
दे०—इदारा । [मिला०—इन्द्रवाट, इरंघर
(=इरा + धर = जलधर), अन्धु, < ०
इन्द्रागार (=पु० कु० ब०)—नेपा०]
इनारा—(सं०) ईद-पत्थर से बनाया हुआ गढ़ा
कुर्वा (विहा०, भा०) । पयो०—ईदारा, इनार
(चं० ०), इंदरा (पट०-१, भा०-१) । [इन्द्र-
वाट, इरंघर (इरा + धर = जलधर), अन्धु,
< ० इन्द्रागार (=पु० कु० ब०)—नेपा०] ।
इंदकमल—(सं०) एक प्रकार का फूल (बर०-१) ।
[इन्दुकमल]

इमली—(सं०) एक प्रकार की लट्टी फली, जो
लंबी होती है । इसका पेड़ बड़ा होता है,
पत्तियाँ छोटी-छोटी होती हैं, फल लकड़ी बड़ी
मजबूत होती है । [अम्लिका, (संस्क०),
अमिलिका (ग्रा०), इमली (हि०), इम्लि
(ने०); इमली (ब०), आमिड़ी (सि०),
आमली (ब०), आमली (ब०) अमिल्ल
(सि०)]
इमली के चार्ई—(सं०) इमली की एक गिरह
(पट०-१) । [इमली के + चार्ई]
इमिरली—(सं०) (१) एक प्रकार का भारमुक्त
फल, जिसकी रसदार तरकारी बनती है ।
पयो०—रसचरना (ब०) । (२) एक प्रकार
की मिठाई जो जलेबी के आकार की होती है ।
[अमृत]
इलाम—(सं०) दे०—इनाम । [इनाम (ब०)]
इलाही गज—(सं०) बकबर के समय की राष्ट्रीय
नाप जो १३ इंच की होती थी । [इलाही +
गज (ब०)]
इस्तमरारी—(सं०) निश्चित कर (राजस्व) की
वर्ष पर भूमि जोतनेवाला मजदारी । टि०—
मौखी और इस्तमरारी में भेद करता प्रायः
कठिन होता है । इस भेद को न तो कभीवार
ही समझा है और न कायतकारी । [अ०]
इस्तमरारी बंदोबस्त—(सं०) भूमि के इस्त-
मरारी बंदोबस्त करने की प्रक्रिया [इस्त-
मरारी + बंदोबस्त (का०)]
ई
ईकर—(सं०) पान की लता का बाजार-स्तम्भ,
जो प्रथम कोरों के बीच में सह-सह पड़ते हैं
(साहा०, पट०-४) । दे०—तरई । [इकट,
इकट] । दे०—इकर ।
ईट—(सं०) लीच में डाबा और भाग में पकाया
हुआ मिट्टी का बहुकोण, चं०, मोटा, मजबूत
बनाने का साधन-विशेष (ब० ०) । दे०—ईटा
पयो०—ईटा (पट०-४, भा०-१, चं० ०) ।
[इकट (संस्क०) > इकट (भा०) >
इकट (भा०) > इकट > ईटा > ईट] ।
ईटा—(सं०) दे०—ईट । पयो०—ईट, ईटा

(ब० ०), ईटा (पट०, गवा, ब० पू०) ।
लोको—“अन में ध्यान, बगल में ईटा ।”
—उपर से मोठी बातें और तद्ब्यवहार करना, पर
भीतर-ही-भीतर आघात पहुँचाने की तैयारी ।
[इकट (संस्क०) > इकट (भा०) > इकट
(भा०) > इकट > ईटा, ईटा > ईट]
ईकर—(सं०)—(पट०-४) । दे०—इकटो-१ ।
ईनार—(सं०)—(चं० ०-१) । दे०—इनारा ।
ईस—(सं०)—(१) हल में लगी लंबी लकड़ी,
जिसमें भुजा या
पाको बड़ा रहता
है । पयो०—हरीस
(पट०-४, ब० पू०-१,
भा०-१) । (२)
एक जंगली लकड़ी । [ईसा (संस्क०), ईसा
(भा०)]

उ

उकटनी—(सं०) बीच बोन के पहले बोंत के
पुराने पीपों की बड़ या बात यावि को उखाड़
कर बाहर निकाल फेंकने की प्रक्रिया । (चं० ०,
पट०-४) । पयो०—उखाना (पट०-४) ।
[उकटनी + ई < *उत्तरायण]
उकटल—(सं०) फटे हुए जगज के पीपों को
दोनी के तबब उकट-पकट करना (पट०-४,
भा०-५, मं०-२) । दे०—उकटल । (वि०)
उकट-पकट की हुई वस्तु । [उकट + ल (भा०)
उत् + कृत्, उत् + कृप्] ।
उकठल—(सं०) पेड़-पौधों का सूखना (साहा०-१) ।
(वि०) सूखा हुआ पेड़-पौधा । [उकठ + ल
(भा०) < *उत्कल, अकल] ।
उकठा—(सं०)—(१) अधिक वर्षा के कारण मरा
हुआ बना या कोई दूसरी फल (ब०-मं० साहा०) ।
दे०—मराइल । (२) गेहूँ में लगा पालो का
रोव, जो अनाज को सूखा देता है (ब०) ।
पयो०—उकड़ा, उखरा (भा०-१), उकसा ।
[अकल * > उकट, उकट (भा०) >
उकट, उकट > उकठा, उकठा]
उकदल—(सं०)—(१) किसी पेड़ या पौधा का
एक प्रकार के कीड़ा लगने के कारण सूख जाना



ईस

भाग-१)। दे०—अस्वयम् । [उच्चक,ओच्चक< 'उच्च' समवाये] ।

उच्चकुल—(सं०)—(१) शोकसे बनाया निकालने के समय देकुली को ऊपर की ओर टिकाये रखने के लिए लकड़ी का एक टुकड़ा (४० माप०, पद०-४)। (२) किसी प्रकार की वस्तु के सहारे के लिए प्रयुक्त लकड़ी यादि का टुकड़ा (भाग-१)। दे०—टंकनी । [उच्च+कुल< उच्च+कुल] ।

उच्चली (सं०) जंजीरी की जमीन (४० माप०, माप०-१)। दे०—ऊपर-जामर । [उच्च+ली (सं०)< उच्चल] ।

उच्चवट—(सं०) छप्पर यादि को सहारा देने के लिए लकड़ी का मोटा आधार स्तंभ (३०-४० मा०)। दे०—जंजी । [उच्च+वट] ।

उच्चास—(सं०) जंजीरी की जमीन (भाग०, पद०-४ माप०, माप०)। दे०—उपरगार । [उच्च+स] ।

उच्छटनी—(सं०)—(१) हाथ से की गई पास यादि की लकड़ी (चपा०, मा०)। दे०—चिल्लरनी । (२) बोते या कोड़े हुए जंत से पास निकालने की प्रक्रिया (चपा०-१)। (३) माल या शकर-कंद के जंत में फसल कोड़ लेने के ज्ञात जंत की कोड़कर, उससे छूटी हुई फसल को निकालने की प्रक्रिया (चपा०-१)। [देही] ।

उच्छाड़ी—(सं०) बनरोपनी के जंत में किया जानेवाला सहयोग (पद०)। दे०—जोजली । पर्या०—बनउच्छाड़ (पद०-४)। [देही] ।

उच्छाड़ल—(सं०)—(१) बोने के दो-तीन दिन पूर्व जंत की बोतकर जोर हुआ देकर छोड़ देना (चपा०-१)। (२) किसी घर को फिर से छाने के लिए उखाड़ना (चपा०-१)। [उच्छाड़+ल (सं०-प्र०)< उत्साद< उत्+सद] ।

उच्छिदल—(सं०) बोते-कोड़े हुए जंत से बाह निकालना (चपा०-१)-पर्या०—तामल (पद०-४)। [उच्छिद+ल (सं०)< *उत्+चिद, मिला०—*चिद-नेपा०] ।

उच्छड़—(सं०) अस्वयम् या बर्बाद नाव । दे०—बनका । पर्या०—उच्छड़ल (पद०-४, माप०-१)। [उच्छड़ना

(हि०), मिला०—उच्छड़+ज (सं०-प्र०) (=बयोहानी)> उच्छड़, उच्छड़ल] ।

उच्छड़ल—(सं०)—(पद०-४, माप०-१)। दे०—उच्छड़ । (सं०) उच्छड़ना, फसल यादि का नष्ट होना । [उच्छड़+ल (सं०)< उच्छड़ल< उच्छड़+ज (सं०-प्र०) (=बयोहानी)। संस०—< *उच्छड़ल्यति मिला०—जटा (सं०-प्र०), उच्छाड़ल (सं०)—नेपा०] ।

उच्छड़ना—(सं०) (१) अस्वयम् नाव । दे०—बनका । (२) वह जंत, जिससे फसल नष्ट हो गई है, (३) छूटा पशु । [उच्छड़ना (हि०), मिला०—उच्छड़+ज (सं०-प्र०) (=बयोहानी)> उच्छड़, उच्छड़ल] ।

उच्छड़ना—(सं०) पानी में डूबते समय की वह अवस्था, जब डूबनेवाला पानी के ऊपर और नीचे जाता-जाता है । (चपा०-१, पद०-४) [उच्छड़ना] ।

उच्छड़ना—(सं०) पानी में डूबने या किसी चीज से मुँह डूँक जाने से उत्पन्न स्वासरोध के कारण व्याकुल हो जाना (चपा०-१)। (सं०) उच्छड़ना । पर्या०—उच्छड़ना (पद०-४)। [उच्छड़ना+आसल (सं०)< उच्छड़ल< उच्छड़+ज (सं०-प्र०)] ।

उच्छड़ना—(सं०, हि०)—(पद०-४)। दे०—उच्छड़ना ।

उच्छड़ना—(सं०) एक प्रकार का उच्छाड़ना शकरकंद (४० मा०, माप०-१)। दे०—देही । (सं०) कोई वस्तु, जो उच्छाड़ी हो । [उच्छड़ल] ।

उच्छड़नी—(सं०) तीन पक्षधारे में होनेवाली उच्छाड़ना की मकई (सा०-१)। (सं०) उच्छाड़ी वस्तु । [उच्छड़ल+नी< उच्छड़ल] ।

उच्छड़नी—(सं०) उच्छाड़ना का नष्ट होना (पद०-१)। [उच्छड़नी+वृत्तल< उच्छड़ल+वृत्तल] ।

उच्छड़नी—(सं०) बर्बाद जंतु की उच्छाड़ना के बाद जानेवाली जंतु (चपा०-१)। [उच्छड़ल+जंतु] ।

उच्छड़ल—(सं०)—(१) उच्छाड़ना हुआ नाव, छूटा पशु, फसल बिहोना जंत । दे०—बनका । (सं०) (२) उच्छाड़ना, फसल यादि का नष्ट होना ।

[उच्छड़ल (सं०-प्र०) उच्छड़ल+ज (सं०-प्र०) (=बयोहानी)। < *उच्छड़ल< उच्छड़ल+ज (सं०-प्र०) (=बयोहानी)।

उच्छाड़ना—(सं०)—(१) वह पशु, जो किसी देखभाल के बिना चलने के लिए छोड़ दिया जाता है (४० माप०, माप०-१)। दे०—बनरिया । (२) बिना घरवाहे का जोर (४० मा०)। (३) डूबने की अवस्था करनेवाला पशु (४०-१)। (सं०) [उच्छाड़ल+ज (सं०-प्र०)] ।

उच्छाड़ना—(सं०) एक धान विधान, जो उच्छाड़ना और लवा होता है । (पद०-१) [उच्छाड़ल+ज (सं०-प्र०)< उच्छाड़ल+ज (सं०-प्र०)] ।

उच्छाड़ना—(सं०) एक प्रकार का धान, जो काल्पनिक जंत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है, (भाग०-४ मा०)। पर्या०—जामर (सा०, ४०-४ मा०)। [उच्छाड़ल< उच्छाड़ल+ज (सं०-प्र०)] ।

उच्छाड़ना—(सं०) (१) उच्छाड़ना हुआ नाव । (२) उच्छाड़ना हुआ धान । दे०—बनका । (३) छूटा पशु, फसल-बिहोना जंत । [उच्छाड़ना (हि०) उच्छड़ल+ज (सं०-प्र०)> उच्छड़ल, उच्छड़ल] ।

उच्छाड़ल—(सं०) किसी वस्तु को उच्छाड़ना, उच्छाड़ल, किया की प्र० हि० । (चपा०-१, माप०-१)। (सं०)—उच्छाड़ल हुआ वीर । [उच्छाड़ल+ल (सं०-प्र०) उच्छड़ल+ज (सं०-प्र०) (=बयोहानी)> उच्छड़ल, उच्छड़ल] । < *उच्छाड़ल्यति, मिला०—जटा (सं०-प्र०)=मूल, उच्छाड़ल, (सा०), उच्छाड़ल (चपा०), उच्छाड़ल (भाग०), उच्छाड़ल (सं०), उच्छाड़ल (हि०, वं०), उच्छाड़ल (सं०), उच्छाड़ल (सं०), उच्छाड़ल (सं०), उच्छाड़ल (सं०), उच्छाड़ल (सं०)।

उच्छाड़ल—(सं०) उच्छाड़ल में प्रथम-प्रथम काफी बर्बा होने पर उच्छाड़ल का सामूहिक रूप से बाहर निकलना (चपा०-१)। [उच्छाड़ल+ज (सं०-प्र०)< उच्छाड़ल+ज (सं०-प्र०)> उच्छाड़ल, उच्छाड़ल] ।

उच्छाड़ल—(सं०) वह पशु, जो बिना किसी देखभाल के चलने के लिए छोड़ दिया जाता है (४० मा०)। दे०—बनरिया । [उच्छाड़ल] ।

उच्छाड़ल—(सं०) किसी वस्तु के नीचे, उसको उच्छाड़ल को उच्छाड़ल करने के लिए प्रयुक्त लकड़ी

यादि का टुकड़ा (चपा०-१)। पर्या०—उच्छाड़ल (भाग०-१)। [उच्छाड़ल+ज (सं०-प्र०)< उच्छाड़ल] ।

उच्छाड़ल—(सं०)—(१) धान: धान नहीं होने की जानेवाली जंत की पहली कोड़नी (कोड़ाई) (चपा०, मा०)। दे०—बनरिया । (२) उच्छाड़ल कोड़ाई करने के ज्ञात के जंतों के बाह यादि की की जानेवाली लकड़ी (चपा०, माप०)। [देही] ।

उच्छाड़ल—(सं०) किसी वस्तु से ज्ञात यादि का बाहर निकलना । (सं०) वह धान, जो किसी वस्तु से नीचे एक दिया गया हो (चपा०-१, पद०-४, माप०-१)। [उच्छाड़ल+ल (सं०), उच्छाड़ल (हि०, वं०, मा०), < *उच्छाड़ल< उच्छाड़ल+ज (सं०-प्र०) (सं०-प्र०), उच्छाड़ल< उच्छाड़ल+ज (सं०-प्र०)] ।

उच्छाड़ल—(सं०) (१) उच्छाड़ल करने के उच्छाड़ल करने की लकड़ी (पद०-४)। पर्या०—उच्छाड़ल (चपा०-४, माप०-१), उच्छाड़ल (भाग०-१)। (२) उच्छाड़ल की बाह उच्छाड़ल करने की लकड़ी (४० मा०, पद०-४)। [उच्छाड़ल+ज (सं०-प्र०) मिला०—उच्छाड़ल] ।

उच्छाड़ल—(सं०) दे०—उच्छाड़ल । (सं०) उच्छाड़ल की वस्तु ।

उच्छाड़ल—(सं०) (१) उच्छाड़ल, बना, जो, मुँह या कोई अस्वयम् या दीन जिते हुए धान, जो एक ही साथ बोने गये हैं (पद०)। पर्या०—उच्छाड़ल (पद०-४), उच्छाड़ल (भाग०)। (२) उच्छाड़ल के बाह जंतु के नीचे लगी हुई एक मजबूत छड़ी, जिससे वह जमीन पर गिरने पाती है । [देही] ।

उच्छाड़ल—(सं०)—(१) दे० उच्छाड़ल । (२) जो-मुँह के साथ एक-ही करके बोना जानेवाला उच्छाड़ल या धान (भाग०)। उच्छाड़ल—उच्छाड़ल का धान । उच्छाड़ल—उच्छाड़ल का उच्छाड़ल । उच्छाड़ल—उच्छाड़ल का उच्छाड़ल ।

उच्छाड़ल—(सं०) दे०—उच्छाड़ल (पद०-४, माप०-१)। उच्छाड़ल—(सं०) बिना ज्ञात मजबूती लिए

काम करने वाला हलवाहा (पू० सं०, व० सं०, भाग०-१) । [उत्थ < उत् + √स्था]

उठनी — (सं०) वह जमीन, जो कमी परती नहीं रहती (बं०) । दे०—अवाद । मिला०—परती वा पड़ी । [उठनी, उठना (हिं०) < उत् + √स्था]

उठल — (कि०) — (१) उठना, खड़ा होना । (२) मादा पशुओं का मधुनेच्छुक होना । पर्या०—बरदियाएल, मेसाएल । (कि०)—उठी हुई, मधुनेच्छुक, [उठल (प्र०) < उठ < *उत्थ < उत् + √स्था, उठ्नु (ने०) < * उत्थति, मिला०—उत्तिष्ठति (सं०), उत्थाति (बा०), उत्थेदि (प्र०)]

उठाएल — (कि०) — (१) पोस्ते की फली में से अफीम का उठाना या सघड़ करना । (२) किसी वस्तु का उठाना । पर्या०—काछल (उ०-व० उ०-व० सं०), पोछल (उ०-व० सं०) । [उठा + एल (कि० प्र०, प्र०)], उठना (हिं०) < * उत्था < उत् + √स्था । उठाउनु (ने०) < * उत्थाय, मिला०—उत्थायति (सं०), उत्थापेति (बा०), उत्थावेदि (प्र०), उठ्नी (कुमा०), उठान (बं०), उठावना (बो०), उठाना (हिं०), उठाउणा (बं०), उठाउनु (गु०) उठाविणे (मरा०)—नेपा०]

उठान हारल — (सं०) किसी मवेशी की वह अवस्था, जब कमजोर होने से उससे उठा-बैठा नहीं जाता (बं०-१) । पर्या०—उठौना हारल (भाग०-१) । [उठल + हारल]

उठानो — (सं०) अनुपयोगी दुबल गाय या भैंस (व० भाग०, भाग०-१) । दे०—टुडाह । [उत्थापनोय = स्वयं उठने में असमर्थ, उठने योग्य]

उठारा — (सं०) — (१) धान के रोपने का अंत होना (सं०-१) । (२) किसी नये प्रारम्भ हुए काम का अंत होना (सं०-१) । [उत्तर, उत्तरा]

उठौना — (सं०) — प्रसिद्ध निवस दर पर निवसित रूप से दूध या किसी वस्तु को देने का काम या प्र० (सं०-१, भाग०-१) । [देशी]

उठौना हारल — सं० — (भाग०-१) दे०—उठान हारल । [उठौना + हारल]

उठौनिहार — (वि०) — (१) पोस्ते की फली पर इकट्ठी हुई अफीम को उठानेवाला पुरुष । (२) किसी वस्तु को उठानेवाला पुरुष । पर्या०—उठौनिहारिन (स्त्री०) । [उठौनि + हार (प्र०)]

उठौनिहारिन — (वि०) “उठौनिहार” का स्त्री० दे०—उठौनिहार । [उठौनि + हारिन]

उड़ल — (कि०) उड़ना । (वि०)—उड़ी हुई वस्तु । उड़ावल — (कि०) उड़ल किया का प्र० । उठाना, चिड़ियों का लंतों से अगाना । [उड़ाव + ल, उड़ + आवल (प्र०) < *उड्यु < उड्युयति (सं०), उड्डावेदि (प्र०), उठाना (हिं०), उड़ाउनु (ने०), उड़ल (बं०), उड़ौना (प०)]

उड़ाहल — (कि०) — (१) किसी नये बतन को काम में लाना (बं०-१, सा०-१, वट०-४, भाग०-१) । (२) कुएं को सफाई के लिए उसके कीचड़, पानी आदि को निकास निकालना (वट०-४, भाग०-१, सं०-१) । [उद्वहल (?)]

उदकल — (कि०) किसी वस्तु का नीचे की ओर लुढ़कना । (वि०) लुढ़को हुई वस्तु । [उदक + ल (प्र०) < उदक, उदक < *अवक्य < अव + √कृष्]

उदकावल — (कि०) उदकल किया की प्र० कि० । किसी वस्तु को ऊपर की ओर से नीचे की ओर लुढ़काना । उकमाना (वि०) लुढ़काई हुई वस्तु । [उदक + आवल (प्र०) < उदक्य < उत् + √कृष्, अवक्य < अव + √कृष्]

उदकाहु — (सं०) वह हाथू स्थान, जहाँ से किसी चीज के फिर जाने का अवसर होता है (बं०-१, भाग०-१) । [उदक + आहु < अव + कृष्]

उतरल — (कि०) उतरना, ऊपर से नीचे आना । [उतर + ल (प्र०) < *अवतर < अव + √तृ]

उतरा — (सं०) उत्तर फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्रपद नक्षत्र; किंतु विशेषतः उत्तरा से उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र ही लिया जाता है । यह निम्नांकित कदावत से प्रमाणित होता है—

उतरा में त्रिनि रोपहुँ बंवा ।
 तीन बान होए तेरहे पंवा ॥

—है माई, उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र में धान मठ रोपी, यदि रोपी में तीनों बान मिलेंगे और तेरह सप्ताह की मिलेगी ।

उतराषाढ़ — (सं०) इक्ष्मीसर्वा नक्षत्र, उत्तराषाढ़, यह पूरा महीने में पड़ता है । [उत्तराषाढ़]

उतरा फाल्गुनी — (सं०) बारहवां नक्षत्र, उत्तर फाल्गुनी, यह प्रायः मादो के शुक्लपक्ष में पड़ता है । [उतरा + फाल्गुनी < *उतर + फाल्गुनी]

उतान — (वि०) उतान, उलटना । उतान हो अल (मुहा०)—उलट जाना, पित हो जाना । [उतान]

उतारल — (कि०) उतरल कि० का प्र० । उतारना, गाड़ी का ऊँचा या हल का पालो बल के कंचे से उतारना । [उतर + ल (प्र०) < *उतर < उत + √तृ (सं०) उतारना (हिं०), उतानु (ने०), उतड़ना (पं०), उतारु (गु०), उतारु (मरा०)]

उतेर — (सं०) — (१) मटर का हरा और कोमल छोटीदार पौधा, जो खेत से उखाड़ लिया जाता है (सा०-१) । (२) मवेशियों के खाने के लिए रखी हुई या निकासी हुई फसल या घास (भाहा०-१) । (३) कमजोर पौधा, जो खेत से निकाल दिया जाता है । [उ + तेर < *अवतीर्य, अवतर]

उतर भाद्रपद — (सं०) छत्तीसवां नक्षत्र, उत्तर भाद्रपद, यह फाल्गुन कृष्ण में पड़ता है । [उतर + भाद्रपद]

उबर — (वि०) छिलना (वट०-४, भाग०-१) दे०—उबल । [उ + भर < *उत्थल, उत्तल]

उबल — (वि०) कन गहरा, छिलना (बं०-१) । पर्या०—उबर (वट०-४, भाग०-१) । [उत्थल < *उत्थल, उत्तल]

उदंगर — (सं०) वह पशु, जो बिना किसी देहबाल के चलने के लिए छोड़ दिया जाता है (वट०) । दे०—अनेरिया । पर्या०—उदाम (भाग०-१) । [< *उदराल = वैधन से निकला हुआ]

उद्वं — (सं०) वह मवेशी, जिसके दूध के दंत अभी नहीं टूटें हों (वट०-४, बं०-१, भाग०) । पर्या०—अद्वंत (पु०, भाग०-१) ।

“उद्वत बरदे अद्वत बिअय,
 बाय बाय या लसने बाय ।”—बाय ।

यदि मवेशी अद्वत ही बरदाह (शामिन हो) और बच्चा दे, तो वह या तो स्वयं मरे या स्वामी का नाश करे ।

[उ + दन्त < अ + दन्त]

उद्व के पानी ले जाएल — (मुहा०) खेत की सघड़ से नीचे पानी खनने पर उसे ऊपर प्रवा-

हित कर सिंचाई करना । उक्त प्रकार की सिंचाई की प्रक्रिया (वट०-४, सा०-१)

पर्या०—उखैया (व०-पु०) । [उद्व < *उद्वह]

उदाम — (सं०) वह पशु, जो बिना किसी देहबाल के ही चलने के लिए छोड़ दिया जाता है (भाग०-१) । दे०—अनेरिया । [< *उदाम < उद + दाम = बंधन रहित]

उदाल — (सं०) — (१) एक प्रसिद्ध वृक्ष का बीज । (२) उस बीज की माला (वट०-४) । [उदाल]

उधार — (सं०) वह रकम, जो पशु को देने के बाद पर की गई हो (वट०-४, बं०-१, भाग०-१) । [उद्व + हार = उद्वर > उधार]

उधेरल — (कि०) किसी कंच आदि को हाथ से छोड़ना (बं०-१) । (वि०)—हाथ से छोड़ी हुई वस्तु । [उधे + ल (कि० प्र०) < उध + ल]

उन्दा चिरचिरी — (सं०) एक प्रकार की घास, जो पशुओं के चारे के काम आती है (पु० सं०, पया, वट०-४, भाग०-१) । [उन्दा < उलटा < *उल्टा । चिरचिरी (= अवासानं)]

उनवत — (कि०) फिर जाना (कासर घड़ा का—चिरना) (बं०) । [उनव + ल (कि० प्र०) < *उत्तम < उद्व + √नम् = मुक्तता]

उनहल — (वि०) लकड़ी की वस्तुओं या कुदास, हल-जंती चीजों का किसी कारण टूटना-भंग होना वा उबर जाना । [< *उकल, उकल]

उनवाहा — (सं०) खेत जोतन के समय किसी आदमी के एवम में किसी दूसरे आदमी का काम करना (सा०-१) । [< *अन्वाह < अनु + आ + √वह + आ (= घस)]

उनाह — (सं०) — (१) धान की खेती में धान बोने के पश्चात् घास-घास आदि की सफाई करने और बीच की नीचे खाने के लिए पुनः की जानेवाली हलकी-सी जुताई (उ०-पु०, व०-पु० सं०, भाग०-१) । पर्या०—गजर (उ०-पु० सं०), समाह (वट०), बिराह (पया), बिदाह (प०, वट०, पया), बिदहनी (बं०, व०-पु०) । उवाहना, उनाहना, उनाहना (वट०-१, भाग०-१) । [उन + आह < उन + वह < अनु (पीछे) + वाह] (२) किसी रोप से मुक्त होने के लिए साफ लेना

(बं०-१)। (३) बीच छोट देने के दो-तीन दिनों के बाद बत में हल खोतना (बं०-१)।
 [उत्तान, उदवाह, मिला० उच्छाह]
 उनाहना—(बं०)—(ब०-१)। दे०—उनाह।
 उनाहनी—(बं०) बीच बाने के बाद भी मिट्टी पीली रहने पर उसे बाड़े-बाड़े (सोमार) बाँत-कर और हुना देकर बत को बराबर कर देना (ब०-१, पु०-१)। दे०—उनाह। [अनुवहनी]
 उपबाबेंदी—(बं०) दूसरे द्वारा निश्चित की हुई रकम से अधिक देकर बीच प्राप्त करने की चेष्टा (बं०-१)। [उपक्यविधि, उपक्यवृद्धि]
 उपछल—(बं०) हाथ या किसी चीज से पानी बाहर खेंकना (बं०-१, भा०-१, बं०, पद०-४)। (बि०) उपछा हुआ (बं०); पानी उपछने की प्रक्रिया। पर्या०—उबछल, उबिछल। [उपछल < उपच्छन (प्र०) < *उत्प्रोच्छा]
 उपजा—(बं०) कमल, पंजावार (ब०-१, पद०-४, भा०-१)। [उत्पाद]
 उपटल—(बि०) (१) पानी का उमड़ना या मेड़ या बाँच से बाहर आ जाना (बं०-१, पद०-४, भा०-१)। (२) किसी हथियार की बोट का बीला होकर निकल जाना (बं०)। (३) बाढ़ या वर्षा के कारण पानी का घेरे से बाहर निकल कर बहने लगना (बं०-१, भा०-१)। [उपट + ल (बि० प्र०) < *उत्पट, उत्पत्ति]
 उपटोह—(बि०) वह ठोकी हुई चीज, जो खोली होकर निकल जाती है (बं०-१)। [उपट + औ + उ < *उत्पट्यालु]
 उपटा—(बं०) नहर या पैग बाँध का मुँह खोल-कर जमीन की सतह से ऊँची सतह पर बल-प्रवाह के द्वारा पूर्ण रूपेण की जानेवाली की बत बाराबाहिक सिंचाई (बं० भा०, पद०-४)। दे०—उपटा। [उपट < उपट < *उत्पट, उत्पत्ति]
 उपटावल—(बि०) उपटल (बि०) का प्र०। उपटाना। [उपट + आवल (प्र०) < *उत्पट, उत्पत्ति]
 उपरपाटो—(बं०) हल और हरीस के जोड़ में लगाया जानेवाला ऊपर का दूसरा पंचड़ (बं० भा०, भा०-१, दे०-१)। पर्या०—पाटा (पद०-४) पाट (बं० बं०)। [उपर + पाटो < उपरि + पाट]



उपरवार—(बं०) ऊँची जमीन (पद०, उ०-४०, भा०-१)। पर्या०—बहरभूम (बं० बं०), उपार (बं० बं०); डिहाँस (पद०), टोंक, पचा, बं० बं०, बं०)। डील (शाहा०), डीह (बं० भा०, भा०-१), उचास (हजा०), डीवर (हजा०), मिट्टा (भा०-१) उपराहुत, ऊपराहुत (बं०)। [उपर + वाह (प्र० = वाह) < कल (संस्क० प्र०), < *उपरिवह]
 उपराबेंदी—(बं०) प्रतिपत्ति (बं०-१)। दे०—उपराबेंदी। [उपरा + बेंदी < *उपरिवृद्धि]
 उपरार—(बं०)—(बं०-१)। दे०—उपरवार। [उपर + आर < उपवार]
 उपराहुत—(बं०) दे०—ऊपराहुत, उपरवार।
 उपरीछल—(बि०) बाढ़ बाँध के पानी का, किनारे को पार कर ऊपर से निकलना (शाहा०-१)। [उपरीछ + ल (प्र०) < ऊपर + औछ < उंच, *उदंच = बाहर निकलना]
 उपलाइल—(बि०) किसी हलकी चीज का पानी के ऊपर की सतह पर बहना। (बि०) उपलाया हुआ (बं०-१, भा०-१)। पर्या०—उपलाएल (पद०-४)। [उपल + आइल (प्र०) < *उप + आल = तैरना, ऊपर झलना]
 उपलाएल—(बि०)—(पद०-४)। दे०—उपलाइल।
 उपाइल—(बि०) धान या किसी फसल को बढ़-समेत सींचकर उगाइ देना (ब०-१, पु०-१)। [उपाइ + ल (बि० प्र०) < *उत्पाट < उत् + पाट]
 उफंगिया—(बं०) किसी तरह की मजदूरी लेकर काम करनेवाला संतिहर मजदूर (गवा, बं०)। दे०—बन। [देरी]
 उबछल—(बि०)—(भा०-१, पद०-४)। दे०—उपछल।
 उबहनी—(बं०) किसी बर्तन में बाँधकर पानी निकालनेवाली रस्ती (पद०-४, बं०-१, भा०-१)। पर्या०—उबहनी, उबहैन (बं० भा०), उबेन (उ०-४० बं०), उबैन (भा०-१)। [< *उबहन]
 उबहनी—(बं०) लाटा में उभा हुआ पानी निकालने का रस्ता (बं०, उ०-४० बं०, पद०-४)। दे०—बरहा। [< *उबहन]

उबहनी—(बं०)। दे०—उबहन। [< *उबहन]
 उबहैन—(बं०)—(बं० भा०)। दे०—उबहन।
 उबिछल—(बि०) हाथ की बंकि या किसी छकने वादि से पानी उलीच कर बत पटाया (बं०-१, पद०-४)। दे०—उपछल। [उबिछल < उपछल < उपोच्छल (प्र०) < *उत्प्रोच्छा (संस्क०)]
 उबेर—(बं०)—(१) वह बत या मैदान, जहाँ बार बार जाती है (शाहा०)। दे०—बराई। [< *उद्वृत < उव + वृ (?)] (२) वर्षा बंद हो जाना (ब०-१, बं०-१)। [< *उद्धार, < *उद्वेल (?)]। (३) कलक कटने के बाद वे बत, जहाँ बार बार जाती है। [उद्वृत]
 उबेरा—(बं०) वह बत या मैदान, जहाँ बार बार जाती है (बं० बं०)। दे०—बराई। [< *उद्वृत < उव + वृ]
 उबर-साबर—(बं०) ऊँची-नीची जमीन (उ०-४०, उ०-४० बं०, भा०-१)। पर्या०—मटहा (उ०-४० बं०), डाबर (बं०, उ०-४० बं०), उबर-साबर (पद०, पचा, बं० बं०, भा०-१), ऊँचाला (पद०, बं०, पचा), ऊलर-साबर (शाहा०), उबली (बं० भा०)। [उद्वृत + उव, उपरि + खल अथवा उभर का अनु०]
 उबैन—(बं०) कुना से पानी निकालने की बोरी (बं०-१, भा०-१)। दे०—उबहन। पर्या०—उबहन (पद०-४)। [< *उबहन]
 उमकल—(बि०) किसी वस्तु का उबंग में आकर उलटना-फटना। उल्लेखित होना। जोल में आना (बं०-१, बं०, पद०-४)। [< *उव + उमक = उलटना > उमकल, उमकल (बं०) < *उकम, < *उत्कमयति (?)]। मिला० क्रामयति, उल्लामति (संस्क०), उल्लामति (ग०), उकमई (प्र०)—नेपा०]
 उममी—(बं०) होरहा बनाने के लिए मड़ए की काटी हुई हरी बाल (बं०, बं०)। पर्या०—ऊमी, उनी (बं०)। डि०—जो और गेहूँ की बाल को जाग में भूनकर की उममी बनाई जाती है (शाहा०)। [< *उलमुक

(संस्क०), उम्मुक (प्र०) मि०—उम्मुक (प्र०) = दण्ड, जला हुआ]
 उरकुस्सी—(बं०)—(१) एक पराशित बाँध, जो पोखे बाँध फसल को हानि पहुँचाती है (बं०-४० वि०)। पर्या०—बिछौतिया, बिछवतिया, भरभाड़ (बं०-४० शाहा०), ठोकरा (शाहा०, बं०)। (२) एक प्रकार का पोषा, जिसकी पतियों के लगने पर पोरों से बुझाहट होती है (बं०-१, बं०, भा०-१)। गृहा०—उरकुस्सी लगल = व्याकुल होना, स्थिर न रहना। [कलाइ (हि०), अलानुशी, अलानुशी (बं०), < *अलिशक (संस्क०)]
 उरवी—(बं०) एक प्रकार का बलहन, जो स्लेटी रंग का, छोटा और बीच में बजली-सी पतली रेखा मिले होता है। इसकी बाँध पकने पर चिकनी होती है। दे०—उरिव। [शुद्ध (१), उडिद (बेनी)—'उडिदो माय-धान्यम्—दे० ना० भा०]
 उरिव—(बं०) दे०—उरवी। पर्या०—कलाई, कराई, कलाय (भा०-१), मास कराई (बं० बं०), उरवी (ब०-१, पु०-१, भा०-१)। [< *शुद्ध, (१), उडिद (बेनी) उडिदो मायधान्यम्—दे० ना० भा०। माय (संस्क०), मास (ग०, भा०), माह (बं०), उडद, उडिद (हि०), मायकलाय (बं०), उडिद (ग०), उडद, उडद (ग०), उरिद, उरिद (बि०)]
 उलटल—(बि०) उलटना, गाड़ी आदि का उलट जाना। [उलट + ल (प्र०) < *उलट, उलटयते। कुलटानु (कल०) ओलटिव (प्र०), उलटा (बं०), उलिटना (बं०), उलटना (हि०), उलटनु (बं०) उलटणा (बं०), उलटणो (ग०), उलटणु (ग०) नेपा०]
 उलटावल—(बि०)—उलटल (बि०) का प्र०। उलटाना।
 उलटा सरसों—(बं०) वह सरसों, जिसकी फली ऊपर की ओर उठी न होकर नीचे की ओर झुकी होती है (प्र०: संच)। [उलटो + सरसों < *उलट + सरप]
 उलक्या—(बं०) गाड़ी की पीछे की ओर गिरने से बचाने के लिए लकड़ी या बाँस की बनाई

हुई बुझी (बिह०, भाष०) । दे० - एडा ।

[उलवा, उलरना (हि०),

< √ओलडि 'उत्वे

पणे = ऊम उठाना,

फेंकना; ओलपडक, उल-

पडक । < *उल्लटयति,

*उल्लटति - ने०]

उलवा—(बि०) उल जा या भूना हुआ मनाम ।

उलवा दाल—(सं०) उलाई (भाग पर धूनकर

बनाई हुई) दाल । दे०-दाल । पर्या०-उलावला

दाल (पट०-४, भाष०-१) । [उलवा + दाल,

उलवा < √उल = उलाना अथवा आग पर

थोड़ा भूना]

उलाहल—(बि०)-(१) दे०-उलाहल २, ४ । (२)

धूप या धुंक् हुआ लगने से कच्ची लकड़ी का

सूख कर टेढ़ा हो जाना । (पट०-४, भाष०-४)

दे०-उलहल । [उलह+ल (प्र०) < उलह

< *उलह (?) < उद् + √लह]

उलार—(सं०) पीछे झार पड़ने के कारण गाड़ी

का पीछे की ओर झुक जाना, चपा०-१, पट०-४,

भाष०-१, भाष०-१) । मुहा०-उलार होना

= उलार होना । [< *उलपड, < *ओलपड

< ओलडि (उल्लेख) वा < *उल्लट, उल्लट-

यति, उल्लटति (संस्क०)-नेपा०]

उलावला—(बि०) किसी मनाम को हलके-हलके

भूना (चपा०-१, पट०-४, भाष०-१) ।

(बि०) उलावा हुआ मनाम । [उलाव+ल,

उल + आवल (प्र०) < √उल = भूना,

गर्भ करना]

उलावला दाल—(सं०) दे०-उलवा दाल ।

[उलाव+ल (हि० प्र०) < √उल = भूना]

उलकावला—(बि०) —(१) काम भादि को

उवाले समय, किसी लकड़ी से बलाना । (२)

चिउरा कुटते समय ओसल में लकड़ी या बाल

के छोटे टुकड़े से उसे बलाना । (३) बीपक की

बत्ती की आगे की ओर उलकाना (चपा०-१,

पट०-१, भाष०-१) । [< *उत्कर्ष, < *उत्कर्ष]

उलटल—(बि०) फसल का उठ जाना या लहरा हो

जाना (पट०-१) । [उलट+ल (प्र०) < *उत्सद

< उत् + √सद]



उलवा

उलटावल—(बि०) फसल को उठा लेना

या उखाड़ना (चपा०-१) । [उलट + आवल

(प्र०) < *उत्सद < उत् + √सद]

उलठ—(सं०) (१) कमजोर मिट्टी (पट०-४,

पट०-४, भाष०-१) । दे०-हुलक ।

(२) किसी रस्सी की चीज का उस सूत जाना

(चपा०) । [< *उत्सृष्ट]

उलनल—(बि०) धान या किसी मनाम को

उवाकना (चपा०-१, भाष०-१, चपा०) । (बि०)

—उवाला हुआ, उलना हुआ धान भादि ।

[< *उल्लापति, < *उत्सद, < *उत्तु धीणाति,

मिल्ला—धीणाति (संस्क०), उलनना

(हि०), उल्लिन् (ने०)-नेपा०]

उलना, उलना—(सं०)-(१) धान उवाककर

तैयार किया हुआ भावक (चपा०-१, चपा०,

भाष०-१) । दे०-वाउर । (२) नरहर, सूँव,

पना भादि को उवाककर बनाया गया भाव

पदार्थ (पट०-१, पटि०-१) । [< *उल्लाप,

< *उत्सिन्न < उत् + ध्याय]

उलनापौरी—(सं०) धान उलनने का काम

(चपा०-१, भाष०-१) । [उलना+पौरी < पर्याय]

उलरल—(बि०) किसी काम का जल्दी-जल्दी

पूरा होना (चपा०-१, पट०-४, भाष०-१) ।

[उलर + ल (बि० प्र०) < *उलर]

उलिनल—(बि०) पानी में धान भादि डाल-

कर, भाग पर रखकर उवाकना (चपा०-१,

पट०-४) । (बि०), उवाला हुआ । [उलिन +

ल, उल्ल, उत्सिन्न]

उलना—(सं०) —(चपा०-१) । दे०-उलना ।

उलसर—(सं०) वह मूमि, जिनमें रेह अधिक हो

और जो खेतों के योग्य न हो (पट०-४,

चपा०, भाष०-१) । दे०-ऊपर : [ऊलर]

ऊ

ऊँट—(सं०) एक प्रसिद्ध चतुष्पाद पशु, जो लंबी

और ऊँची बदनवाला होता है तथा रेगिस्तान

में बहुतायत से पाया जाता है । कहीं-कहीं

इससे हल बनाने का काम भी लिया जाता है ।

पर्या०-शुतर (पट० प्र०) । [उट्ट (संस्क०),

उट्ट (प्रा०)]

ऊँटा—(सं०) एक कौटुंबीय पौधा, जिसके बीज से

बुबकी की चिकित्सा के लिए तेल बनाया जाता

है (पट०-४, भाष०-१) । [उट्टकपटक]

ऊँल—(सं०)-दे०-ऊल ।

ऊल, उल्लि—(सं०) एक प्रकार का दंडाकार पौधा,

जिसका रस मीठा होता है और जिससे गूड़, बीजी

भादि बनाई जाती है । पर्या०-कैवारी (सं०,

पट०, गवा, द०-पू० बिह०), कुरियाद द०-पू०

सं०) । [< *इल्ल (संस्क०), इल्ल (प्रा०), आल,

इल्ल, कुरिय (सं०), ऊल, उस (परा०), उस,

रोरडी (पु०), कानुपुड, कनु (क०), किकु, से०),

इल्ल (स०), लडि, लडि सेलकी (परा०),

गल्ल, गंडा (सं०), कल्ल (प्रा०), नए शकर

(क०), कसमुस्तुकर (स०), ईल्ल, ऊल (हि०) ।

[कैवारी < कानुपुड, कुरियार < कौरुकर]

ऊल नम्बर २४—(सं०) ऊल का एक पारि-

भाषिक भेद । यह हलके लाल रंग का पतला

ऊल है । यह बैसी मीची जमीन में, जहाँ पानी

बना होता है, रोपा जाता और अधिक परि-

भाष में उपजाता है (बिह०, सी०) । [ऊल +

नम्बर + २४ ऊल (हि०) + नम्बर (सं०) +

२४ (संख्या)]

ऊल—ऊल के साथ बिस्व में नंबर भारत की विभिन्न

ऊल-अनुसंधानसंस्थानों के वैज्ञानिक लोग के

विभिन्न प्रयोगों पर आधारित है ।

ऊल नम्बर ३१३—(सं०) ऊल का एक पारि-

भाषिक भेद, जो उबले रंग का होता है । इसकी

उपज अच्छी होती है, इसका छिलका पतला

होता है । यह ऊल गरम और रस से भरा होता

है । इसका गूड़ साफ होता है । बीजी की मात्रा

भी अधिक होती है । भावकाल बीमारी लगने के

कारण इसकी खेती बहुत कम हो गई है (बिह०,

सी०, हरि०) । [ऊल + नम्बर + ३१३ < ऊल

(हि०) + नम्बर (सं०) + ३१३ (संख्या)]

ऊल नम्बर ३२१—(सं०) ऊल का एक पारि-

भाषिक भेद । यह लाल रंग का और मोटा

होता है । यह गरम और रसीला होता है ।

इसका गूड़ अच्छा नहीं होता । कुछ वर्ष पूर्व

इसकी खेती बुरा होती थी । इसमें बीमारी

कम होने के कारण इसकी खेती अब कम हो

गई है (मिला०-लाल गोंदी, लाल गोंडा) (बिह०,

सी० हरि०) । [ऊल (हि०) + नम्बर

< नम्बर (सं०) + ३२१ (संख्या)]

ऊल नम्बर ४१३—(सं०) ऊल का एक पारि-

भाषिक भेद । यह काफी मोटा और मजबूत

होता है । इसकी उपज अच्छी होती है ।

(बिह०, सी०) । [ऊल (हि०) + नम्बर < नम्बर

(सं०) + ४१३ (संख्या)]

ऊल नम्बर ४४३—(सं०) ऊल का एक पारि-

भाषिक भेद, जो काफी मोटा और मजबूत होता

है । पर्या०-समसेर (सी०), इकहवा, इकी-

हवा (मोब०), कटहवा (मग०) । [ऊल (हि०)

+ नम्बर < नम्बर (सं०) + ४४३ (संख्या)]

ऊलर-काबड़—(सं०)-(वाहा०) दे०-उलर-

काबर । [ऊलर + काबड़, ऊलर < उल्लाप

ऊल्लेना (हि०) < *उत्कर्षण < *उत्सन्न,

खावक < खर्प (?)]

ऊल्लि—(सं०)-(सी०, मोब०, भाष०) । दे०-ऊल ।

ऊना डेढ़ी जोत—(सं०) खेत की डेढ़ी जूताई

(चपा०) । दे०-ऊना ड्योड़ी जोत । [ऊना

+ डेढ़ी + जोत—(सी०)]

ऊना ड्योड़ी जोत—(सं०) खेत की डेढ़ी जूताई

(सा०, पट०) । पर्या०-ऊना डेढ़ी जोत (चपा०) ।

[ऊना + ड्योड़ी + जोत—(सी०)]

ऊना फानी—(सं०) खेत की बोवाई की ओर

से जूताई (पट०) । दे०-फानी । [ऊना +

फानी—(सी०)]

ऊनी—(सं०)-(चपा०) । दे०-ऊनी, ऊनी ।

[मिला०-ऊनी]

ऊपरानुव—(सं०) ऊपर की ओर वाली जमीन ।

ऊँची जमीन (चपा०-१) । दे०-ऊपरवार ।

[ऊपर + आहुत < उपरि + आभूत (?)]

ऊबर-खाबर—(सं०)-(पट०-४, भाष०-१) ।

(दे०-ऊबर-खानर) । [ऊबर + खावक, ऊबर

< उदकर्ष (?)] खावक (प्रा०) वा < खर्प]

ऊमि—(सं०) गहूँ के कच्चे दाने, जिन्हें पीस-

कर और तल कर बड़ी बनाई जाती है या जो

भून कर खाये जाते हैं (चपा०-१) । [मिला०-

ऊमी]

ऊमी, छमी—(सं०) होरहा बनाने के लिए गहूँ

की काटी हुई हरी बाल (ब० ब०, ब०-१) ।
दे०—उम्मी । पर्या०—ऊनी (ब०-१) ।
[मिला०—उम्मी]
ऊनी, ऊनी—(ब०) दे०—उम्मी, ऊनी ।
ऊलुस—(ब०) खाने के बाद नीकर के लिए छोड़
धिया गया जूटन । दे०—नेवाला । [देशी]
ऊसर—(ब०) (बाग०-१, ब०-१, भागः सर्वत्र) ।
दे०—उसर । पर्या०—उसर, रेहाह, रेहाह
(ब० ब०), रेहाह (ब०, गवा, ब० ब०) ।
[ऊसर]

ऐकरी—(ब०) बिना साक किया हुआ बाग ।
(ब०-४) । दे०—अकरी । [ऐकर + ई
८ ऐकर ८ अकर ८ अकर ८ अकर ८
८ अकर ८ अकर]
ऐकियावला (बि०)—(१) ऐकी से मारना (ब०-१
ब०-१, भाग०-१) । २—ऐकी से रोवना (ब०-१,
भाग०-१) । [ऐक + द्या + आवल (बि० ब०)
८ ऐक ८ ऐक]
ऐसी—(ब०) वर्तमान साक, बागू बर्ष (ब०-१,
भाग०-१) । [८ ऐकमस]
एक बास—(ब०) जमीन की पहली बार
हुई जुताई (ब०-४, भाग०-१, ब०-१, भागः
सर्वत्र) । [एक + बास (देशी)]
एकजाई करल—(ब०) एक से अधिक भूमिखंड
(होल्डिंग) को एकट्ठा करना या बतलाना
(सा०-१) । [एक जति* ७ एक जाई]
एकठवरी—(ब०) जनेक बीजों का एक साथ का
मिश्रण (ब०-१, भाग०-१) । [एक+ठवरी
८ ठेरी ८ स्थली (?)]
एकठा—(ब०)—(१) हूँ का चौरस लंबा काष्ठ-
फलक (शाहा०) । दे०—
पल्ला । (२) छोटी नाव
(ब०-१) । (३) वह हूँगा,
जिसमें दो डैल ओते जाते
हैं (ब०-१) । [एक +
काठ ८ काठ]



एकठा

एकठौरी—(ब०) दे०—एक ठवरी ।
एकड़—(ब०) भूमि की माप, जो एक बिगहा

बारह कट्टे के समान होती है । लेकिन इसकी
निश्चित माप ४८४० वर्गगज है । (सा०-१,
ब०-४) । [एकर (ब०)]
एक तोस—(ब०) पूरे (धाठ) दाँत हो जाने के
बाद एक वर्ष का पूर्ण वयस्क बैल (भागः
सर्वत्र) । दे०—तौल । [एक + तोस]
एक फसिला—(ब०) वह जमीन, जिसमें साल
में एक ही बार फसल पैदा होती है (ब०-४,
भाग०-१) । पर्या०—एकफसिली, एक-
सलिया (ब०-१) । [एक + फसिला (का०)]
एकफसिली—(ब०) दे०—एकफसिला । [एक+
फसिली (का०)]
एकबग्गा—(ब०) वह मूँहमोर व्यक्ति या मवेशी,
जो किसी बात पर ध्यान न दे और जबर मुँह
उभर ही रहे (ब०-१, ब०-१, ब०-४,
भाग०-१) । [एक + बग्गा ८ बर्ग, ८ मर्ग]
एकबल—(ब०) बाक (अकबल) नामक बीजा-
विशेष (शाहा०-१) । [अकब]
एकबाँह—(ब०) जेत की पहली बार की जुताई ।
दे०—एकबास । [एक + बाँह ८ बाँह, बाहु (?)]
एक रउनी—(ब०) किसी खेत की एक बार की
निकोनी (ब०-१) । पर्या०—निकोनी
(ब०-४) । [एक + रउनी (देशी)]
एकरी—(ब०) बिना साक किया हुआ बाग (ब०-४)
दे०—अकरी । [एकरी ८ अकरी ८ अकृतक]
एकजाई—(ब०) (१) गाड़ी की वह सीक, जो
एक तरफ अधिक गहरी हो और दूसरी ओर
अधिक ऊँची हो (ब०-१, भाग०-१) ।
(२) पानी पटाने के लिए बार (बैङ्क) के पास
बनी नाली (सा०-१) । [मिला०—एकजालि]
एकसलिया—(ब०) (ब०-१) । दे०—एक-
फसिला । [एक + सलिया ८ साल (का०)]
एक साल के तौल—(ब०) पूरे (धाठ) दाँत हो
जाने के बाद एक वर्ष का पूर्ण वयस्क बैल ।
दे०—तौल । [एक + साल + कै + तौल (ब०)]
एकसिधा—(बि०) एक सीधेवाला बैल, जंसा
बादि (भाग०-१) पर्या०—सिधुट्टा (ब०-४,
भाग०-१), एकसिधा । [एक + सिधा
८ एक + श्रुंफरी]
एकसिहा—(बि०) दे०—एकसिधा ।

एकलहा—(ब०) वह भक्ष, जिसमें दूसरा भक्ष
नहीं मिला हो (शाहा०-१) । [एक + लहा ८
एक + अल वा ८ एकलक्ष्य]
एकहरा—(ब०) वह हूँगा, जिसमें दो ही बैल
ओते जाते हैं (ब० भाग०, भाग०-१) । दे०—
हूँगी । पर्या०—दुबराबिवा (ब०-१) । [एक+
हरा (ब०) ८ शस (संस्क० ब०)]
एकहुला के माल—(ब०) किसी बंतिहर का
एकमात्र पशु (ब०-१) । [एक + अहुला + के
+ माल—(ब०)]
एकैस—(ब०) इक्कीस की संख्या । [एक+
ऐस ८ एक विंशति]
एकैसिया—(ब०)—(१) फसल के २१ बीजों
की एक राशि (शाहा०) । (२) फसल को
काटने, बाँधने और बलिदान तक पहुँचाने के
लिए मजदूर को २१ बीजों पर एक बीजा
मजदूरी देने की प्रचलित प्रणाली (शाहा०, गवा,
ब०, भाग०-१) । दे०—एकैसी । [एकैस +
इया ८ एकविंशतिक]
एकैसी—(ब०)—(१) बीज से बड़ी फसल की
एक राशि, (२) बीज = एक एकैसी—(ब०-१,
गवा, ब० ब०) । (२) फसल को काटने, बाँधने
और बलिदान तक पहुँचाने के लिए मजदूर को
२१ बीजों पर एक बीजा मजदूरी देने की प्रच-
लित प्रणाली (ब०, गवा, ब० ब०, भाग०-१) ।
पर्या०—एकैसिया (शाहा०) । [एकैस + ई ८
८ एक विंशतिक]
एलरा जात—(ब०) जमींदारी के विषय में होने-
वाला गाँव का खर्च (ब०-१) । दे०—वाई करण ।
एगवाई—(ब०) दोनी में घुसनेवाला सबसे ठेक
बैल (ब० भाग०, ब०-४) । दे०—वाट ।
[८ युप्रमिन् ८ एकप्रमिन्]
एगवि—(ब०)—(१) वह ऊँचाई, जहाँ तक करीब,
काठा बादि से पानी उठाया जाता है । दे०—
बोवर । (२) जब करीब, काठा बादि से
पानी चलाने में कई उठान (ऊँचाई) पड़ते
हैं और प्रत्येक को पार करके ऊपर खेत तक
पानी पहुँचाया जाता हो ती उठ उठा में
पहला उठान या अन्तर्गत (ब० ब०) । दे०—
बेवका । पर्या०—एगवा (ब०-१), एगव (ब०

भाग०), एगवाई (भाग०-१), दोघाँव = दूसरा
उठान; दोघाँव (ब०-१), दोघाँव (भाग०-१) ।
वेघाँव = तीसरा उठान; वेघाँव (ब०-१) ।
वेघाँव (भाग०-१) चौघाँव = चौथा उठान;
चौघाँव (ब०-१) । [ए + घाँव ८ एक +
स्थाम (?)]
एघाई—(ब०) (भाग०-१) । दे०—एघाँव ।
एघाव—(ब०)—(ब० भाग०) । दे०—बेवका ।
[एक + स्थाम (?)]
एघावा—(ब०)—(ब०-१) । दे०—बेवका ।
[एक + स्थाम]
एघा—(ब०)—(१) गढ़ासी की बेंट के जंत का
पाँचवार नाम (ब० ब०) ।
पर्या०—दूर (ब०-१, ब०-१,
ब०-१), ठेकवा (ब०-१,
ब०, शाहा०), आदक एका
(ब०-१, शाहा०), मूँट, मुठिया (ब०-१,
भाग०-१) । (२) दे०—दूरा ।
(३) गाड़ी की पीछे की ओर गिरने से बचाने के
लिए ही बानेवाली पूनी । पर्या०—बकलुवा,
सिधवाइ, ललुवा (ब०-१) । [८ एघाई (?)]
एवली—(ब०) एक प्रकार का बान, जो छोट कर
(बाग) बोया जाता है (गवा) । [(देशी),
मिला०—एवक, एवल = काले वर्ण का हरण,
संम—एवक सदृश होने से नाम पड़ा हो ।]
एमारत सेस—(ब०) किसान से मकान बनाने
के लिए किया जाने वाला एक प्रकार का कर
(सा०-१) । [इमारत + सेस]

ऐ

ऐजा—(ब०) एक प्रकार का छान (ब०-१) ।
[देशी]
ऐन—(ब०)—(१) रुपये के बदले मजदूरी के रूप
में चुकाया जानेवाला भूमि-कर । दे०—वाल ।
(२) कीक के मुताबिक जमीन की फसल का
हिस्सा (ब०-१) । (३) भावली या ठीके की
जमीन का मासिक भाड़ा हिस्सा (ब०-१,
भाग०-१) । [अन, अमन]
ऐमाक—(ब०) एक प्रकार की घास (ब०-१,
भाग०-१) । [मिला०—अमक]

ओ

ओटल - (सं०) दे०—ओटल । [< *आवर्त्त (संस्क०), आवट्ट (भा०)]
 ओइलल - (सं०) — (१) किसी वस्तु की डेरी से उसके पत्ते आदि को जलग करना (बं०—१, पट०—४, भाग०—१) । (२) किसी ओते-ओड़े जेत से घाल-कुच निकालना (बं०—१, भाग०—१) । [मिला०—अव + √लुल, अव + √लुल = उल्लङ्घन, अलग करना] ।
 ओखर - (सं०) — (१) (उ०—५, बं०, पट०—४, भाग०) । दे०—ओखरी । (२) — (उ०—५, बं०, उ०—५०) । ओखरी । [उल्लुल]
 ओखरा - (सं०) — (१) (उ०—५, बं०, पट०—४, भाग०) । दे०—ओखरी । [उल्लुल]
 ओखरी - (सं०) — (१) लकड़ी या पत्थर का बना गहरा बर्तन, जिसमें घृत से घाल, तंबाकू आदि कूटे जाते हैं । (भाग०—१) । पर्या०—ओखर (उ०—५, बं०, भाग०), ओखरा (उ०—५, भाग०), ओखली (गया), कुरदन (पट०), धनकुटी (सा०) । [ओख + ई (प्र०) < *उल्लुल] (२) लकड़ी का वह गहरा बर्तन, जिसमें घृत या हों की से घाल कूटे हैं (सं०—३) । पर्या०—ओखर (उ०—५, बं०, उ०—५०) ओखरी, खुंड़ी (उ०—५, भाग०—१), खसरी (उ०—५, बं०), कौड़ी (उ०—५, भाग०), खुंड़िया (भा०), खुंड़े ओखरी (गया), खुंड़की (पट०), खुंड़ी (पट०—१) । [*उल्लुल]
 ओखी कानी - (सं०) ऊह दाँतोवाला बँस (सं०—१, भाग०—१) । [ओखी + कानी < *तुच्छ + स्कन्ध (?)]
 ओखी-कान्ही - (सं०) वह बँस, जिसके दूध के छह दाँत दूट गये हों और बाठवाँ धमरी तक बन्ना न हो (सा०—१) । दे०—ओखी कानी । [ओखी + कानी < *तुच्छ + स्कन्ध (?)]
 ओट - (सं०) — (१) किसी चीज के नीचे किसी वस्तु को लगा देना ताकि वह गिरे या छुड़के नहीं (बं०—१, भाग०—१, पट०—४, भाग०) । (२) किसी वस्तु की आड़ । [ओटल + उट

(संस्क०—तुल्य (हि० सं० सा०), मिला०—अवट = गत]
 ओट करल - (बं०) आड़ करना, छिपाना, किसी वस्तु से बचना ।
 ओटनी - (सं०) वह वस्तु, जिससे चीज कई से जलग किया जाता है । पर्या०—ओटाई (सा०), कौटाई (उ०—५, भाग०, बं०—१) । [< *आवर्त्तनी] ।
 ओटल - (सं०) — (१) कपान को चरबी में दबाकर कई और बिनोले को जलग करना (बं०—१) । (२) चरबी हो बात कहते जाना (बं०—१) । [< *आवर्त्त]
 ओटाई - (सं०) — (सा०) । दे०—ओटनी । [< *आवर्त्त, *आवर्त्त]
 ओइलल (सं०) गाल रंग का एक प्रसिद्ध फूल, जो देवी देवता पर चढ़ाया जाता है (भा०—१, बं०) । [ओइ + लल < ओइ + पुल्ल, मिला०—ओइ-पुल्ल]
 ओइ - (सं०) बँस की कयमी या करबी का बना बड़ा गुला टोकड़ा । इसमें विधेयतः ताल का पत्ता देकर बुना जाता है (पट०—४, भाग०) । [ओइ + कुंठ (?) (संस्क०) — हि० सं० सा०), मिला०—ओत = बुना हुआ < आ + उट, अवट]
 ओइया - (सं०) — (१) कोलू में ऊँच के टुकड़ों को डालने के लिए प्रयुक्त टोकरी (उ०—५, भाग०, पट०—४) । दे०—ओटी । (२) बाँस आदि का बना धोरा । बलिया (सं०—१, भाग०—१) । [मिला०—ओतल आ + उट = बुना हुआ, अवट = गत]
 ओड़ी - (सं०) — (१) कोलू में ऊँच के टुकड़ों को डालने के लिए प्रयुक्त टोकरी (भा०—५, बं०) । दे०—ओटी । (२) हल से ओतने पर बाँधी गई सड़ी रेखा, जिसमें रोपने के समय ऊँच का बीज डाला जाता है (भाग०—१) । (३) ऊँच का उबाला रस (गुड़) रखने का बर्तन । दे०—ओटकी । [< *ओतल आ + उट] (४) एक भाव-विशेष, जो फलाहार में निभा जाता है (पट०—१) । [मिला०—ओइय = ओइ (उड़ीया) संबंधी]
 ओइसा - (सं०) — (१) बाँस की कयमी या करबी की काफ़ी बारीक बुनी हुई टोकरी, जिसमें

पानी आ सके । (२) बारा खिलाने के लिए प्रयुक्त टोकरी (कहीं-कहीं) । दे०—पविषा । [मिला०—ओतेवीकल आ + उट + इवीक] ।
 ओइ - (सं०) — (१) बीजा (बं०—१) । (सं०) — (२) एकसाथ पड़लाकर उगनेवाले बाँस के पौधों का समूह (बं०—१) । [ओइ, ओइय, ओइय]
 ओइरल - (सं०) — (१) किसी सटी हुई चीज का कटकर जलग हो जाना (बं०—१, भाग०—१) । (२) जेत की गहरी का फटना । [< *अवदार < अव + √दृ = फटना]
 ओइर - (सं०) किसी फल का बोझा बाँधने के लिए पट्टी की एंटी हुई रस्ती (सं०—१) । दे०—कधरा । [देरी]
 ओइरल - (सं०) ओइरल कि० का प्र० । किसी सटी हुई ऊपरी चीज को काड़ना या जलग करना (बं०—१, भाग०—१, पट०—४) । [*अव-दार < अव + √दृ = फटना]
 ओइली - (सं०) पीके जेत को ओतकर जेत में चीज ओने पर फल में लगनेवाला एक रोग-विशेष (भा०—१) । [ओइ + ओली < ओइ + ओली, उद + ओली, ओली < उच्छ (?)]
 ओथ - (सं०) बाँस के पौधों का समूह (बं०—१), दे०—बाँस के कोटी । [ओथ]
 ओरहा - (सं०) — (१) पकने के पहले ही काटी हुई गेहूँ की फल (उ०—५, बं०, भाग०—१) । दे०—होरहा । (२) भूनने के लिए काटा हुआ अनाज (उ०—५, बं०, भाग०—१) । दे०—होरहा । [अव + √उल = जलाना, भूनना]
 ओरीटीनी - (सं०) एक पशु-बाध बाध (पट०, गया) । [देरी]
 ओल - (सं०) अर्थात् नें पँदा होनेवाला एक प्रकार का कंद । इसमें भरवा, तरकारी आदि बनाये जाते हैं । पर्या०—मूरन (उ०—१, पट०—४, भाग०—१, पट०—१) । [ओल (संस्क०), ओल (हि०), ओल (सं०), ओल (बं०), ओल (बो०), सूरण (गु०)]
 ओलल - (सं०) — (१) जल को चलाकर उसमें मिले विजातीय वज्र वा दूसरी वस्तु को जलग

करना । (२) ओते हुए खत या बारी की मिट्टी को बल-कुच निकाल देने के बाद बराबर करना । (उ०—१, बं०—१, भाग०—१) । [अव + √लल = चलाना]
 ओलहीनी - (सं०) रोपनी के समय गढ़ा जानेवाला एक प्रकार का गील, जो अपराज के पराई में गाया जाता है और जिसका स्वर धीरे-धीरे नीचे की ओर झुकता है । इसका प्रतिकूलार्थक शब्द 'चट्पती' है (बं०—१) । [उलहा (आ०) = चुफना, अव + हरण = < *अवहलन < अव + √हल (= मोचे जाना, गिरना, मुकना)]
 ओलहल - (सं०) — (१) किसी चीज का किसी एक तरफ मुका जाना (बं०—१, पट०—४) । (२) हल या हँटर द्वारा एक तरफ ग्याहा मिट्टी फेंकना (बं०—१) । [< *अवहल < अव + √हल (= गिरना, चलना) — (संस्क०), उलहा (भा०) = चुफना, अव + हरण = एक तरफ रखना, मुकाना]
 ओल्ले आब - (सं०) हल, गाड़ी आदि में जते बँसों को बुझाने के समय होकनेवाले का संकेत-शब्द । (सा०—१) । [ओल्ले + आव]
 ओसर - (सं०) पूर्ण बयस्का बाघी, जो गाय बनने के लिए तैयार हो । पर्या०—कसोर (प०), गौर उ०—५, बं०, फेटाइन (पट०), अँकरिया (उ०—५, भाग०) । [उपसर्ग, < *उल्ल (भा०)]
 ओसाएल - (सं०) बीमारा, बाध के बहाव में अनाज को सूख आदि से ऊपर से नीचे तक पतली रेखा में गिराकर भूसा आदि से जलग करना । पर्या०—ओसावल (बं०—१, पट०—४) । [< *अव + √से (बो) 'अन्तर्कर्मणि' = समाप्त करना, पूर्ण करना, *अव + √सु = छिड़ाना, फैलाना, *अव + √सु = प्रेरणा देना, नीचे फैलाना, अवसवन]
 ओसादा - (सं०) घट के भागे का बरामदा ।
 ओसावनि - (सं०) । दे०—ओसानी ।
 ओसावल - (सं०) — (बं०—१, पट०—४) दे०—ओसाएल । (बि०) ओसाया हुआ [< √अव + √सु, *अव + √से]

घोसोनी (सं०)-(१) बीनी के रस को ठंडा करने के लिए प्रयुक्त लकड़ी का कड़ाह। दे०-कठौत।
[< *अभिषवन = सोमरस रखने का पात्र] (२)
घन अथवा अन्न आगाने की प्रक्रिया बिहा०, भाज०।
पयो० — घोसावनि (हर०-१, पूणि०-१)।
[अव + √सु० अवसवन]। बोसोनी



औ

औकर-(सं०)-एक प्रकार की घास, जो पशुओं के चारे के काम में आती है (शाहा०, यवा)। [देरी-मिला०-अवकर (संस्कृ०)=कृ०-अवकट]
औजली-(सं०) घनरोपनी के ढंठ में किया जाने वाला सहयोग (द० भाग०)। पर्या०-जन-उसरा या बनुसरा (यवा), गावा-पझार (प० चंपा०), उझाड़ी या जनउझाव (प०) [देरी]

औटाई-(सं०)-(१) यह वस्तु, जिससे रई बाँटी जाती है। दे०-खोटनी, (२) रई ओटने की मजदूरी (द० भाग०)। [औटा + ई (अ०) √ आवर्त (संस्कृ०), आवट्ट (अ०)]
औगारल-(सं०) उपादा गड़दा करके हल जोतना (चंपा०-१)। [< *अवगर्त, < *अव-गाढ (संस्कृ०), औगाढ (अ०)=गंभीर, गहरा]
औझार-(सं०) वर्षा का एक लौका (चंपा०-१)। पर्या०-अझार (प०-४, भाग०-१)। [< *अवशार < अव + √शु + घञ्]

औशर-(सं०)-(प०, यवा)। दे०-बवार। [मिला०-उदर = पुरीषा]
औरंग-(सं०) उबार, मकई और ऊब के पौधों का एक रोग, जो पत्तों पर श्वेत बिह्ल-जैसा होता है और पौधे के ऊपर का भाग मर कर देता है (चंपा०)। पर्या०-गपन् (प०, उ०), जभनी (उ०-५० नं०, चंपा०), गभलू, ठोठियारी (शाहा०), गपसू (सा०)। [अवरंग]
औरा-(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध फल जो इला, मुरम्बा, अँबार आदि के काम में आता है। इसका फल कामजी नीबू की तरह या उससे छोटा और

कईला होता है। यह सफेदी लिए तथा पत्तियाँ हमली के पत्तों की तरह, छोटी-छोटी होती हैं। यह फल भारत के प्रायः सभी भागों में पाया जाता है। पर्या०-अँबरा (शाहा०, चंपा०)। [आमलक (संस्कृ०), आमला, अँवला, औरा, आम्रा (हि०), आमला, आमो, आमलकी (ब०), अँवले, अँवली, अँवलीकाठी (नरा०), आमला, अँवुल, अँवुली (ब०), अँवला (भार०), अँवला, आमला, आमली (ब०), नेल्ल, नेल्लिकायि (क०), नेल्ल, नेल्लिकर (सा०), उसरिकाय, उसरकाय (ते०), अँडा (बो०), आमलज, आमलज, आमलज, आमलद, आमलाह (बा०), अमलज (अ०), अमला, आमलकी (अस०)]

औरहा-(सं०) मूठ या पूले से बड़ी फलक की राशि (उ०-नं०, भाग०-१)। दे०-अँवला। [देरी]

क

कँइत-(सं०) कपिरव फल। इसका फल गोल-गोल बेल-सा होता है। पर्या०-कँइलो (सा०-१)। [कपिरव (संस्कृ०); कप्य (अ०), कैय, कैर, कँइत (हि०), कप्य, कपेल (ब०), कवँ, कवट, कवट, कविठ (नरा०), कोठ, काठ, कोठ (ग०), केला, केलाडा, कसुव, ज्यलदमर (क०), एलांगकाया केला केडु, एकांग कया (ते०), कैय (भार०)]

कँइती-(सं०) एक फल-विशेष। यह भीफल की तरह होता है तथा इसके भीतर का भाग चट्टा होता है (शाहा०-१)। दे०-कँइत। [कपिरव]
कंकड़-(सं०)-(१) घुना मिला हुआ घँटवार पत्थर का छोटा, गोल और भटमँला टुकड़ा, जिसे पकाकर घुना बनाया जाता है। (२) पत्थर का टुकड़ा, जो लकड़ बनाने के काम में आता है। (३) अनाज में मिलनेवाला जईका। (नं०-२)। दे०-अँकड़ा। पर्या०-अँकड़, इकड़ी, ईकड़ी (उ०-पू० नं०, प०), गंगट-(प०, यवा), गींगट (उ०-पू०)। (४) विशेष प्रकार से बनाया हुआ एक लम्बाकू, जो मूर-मुरा होता है और कौने की बिल पर रखकर पीया जाता है। [कर्कर, = कठिन]

टुकड़ा, फूला का पत्थर (नं० बि० डि०); 'कर्करी मुकुंरे टुडे'-(चंपा०); 'कर्करी भापडभेटना-दपयो कठिने त्रिषु' (नं०)।

कंकड़ी-(सं०)-(१) हँट-पत्थर का छोटा टुकड़ा (यवा, प०, भाग०)। दे०-अँकड़ी। पर्या०-अँकरी। [कर्कर]

कँकड़ी-(सं०) दे०-डकड़ी।

कंकड़ाही-(सं०) कंकरीली मिट्टी (बा०, प०, नं०-२)। पर्या०-अँकड़ाई (सा०, शाहा०)। अँकड़ाई (ब०)। [कँकर + आही < अस्थि (?)]

कँकड़ोटिया-(सं०) एक प्रकार की कड़ी मिट्टी, जो जमीन जोड़ने पर जमीन की ऊपरी छतह के नीचे मिलती है (उ० भाग०, प०-४)। दे०-मँगटियाहा। पर्या०-मँगारट (प०-४), कँक-रोटी [कँकर + ओटिया < *ओट्टी, अस्थि (?)]

कंकड़ी-(सं०)-(शाहा०, सा०, चंपा०)। दे०-कंकड़ी।

कँकरोटी-(सं०) दे०-कँकरोटिया।

कँगनिया-(सं०) गरी का लड़ा अँबा किनारा (उ०-पू० नं०)। दे०-करारा। [कँकट = सीमा, अवधि, कच्छ = किलसा]

कंनचूर-(सं०)-(१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उकट पान (उ० नं०, चंपा०)। (२) वासमती बाबल का एक भेद (प०-४)। [कन्ननचूरी]

कंचा-(वि०) दे०-कच्चा।

कंजु-(सं०) एक प्रकार का घान, जिसकी बत्ती मरई की तरह बौड़ी होती है (वर०-१, नं०-२)। [मिला०-ऊँज]

कँचोरस-(सं०) ऊब की पेरकर या घूसकर निकाला गया रस (उ० भाग०)। दे०-रस। पर्या०-कचरस (प०-४, चंपा०)। [कँचो + रस]

कंजर-(सं०)-(१) रस्सी बाँटनेवाली एक विशेष जाति (उ०-५० बिहा०, यवा)। पर्या०-कंजड़ा, कंजड़ (चंपा०), बाँई (प० नं०), रसबंटा (शाहा०, यवा)। (२) एक प्रकार का हरा पौधा (नं०-२)। [कंजर (हि०), कालंजर = मुँदेलखंड का एक भाग, उस प्रदेश के रहने-वाले लोग। इनका पेशा रस्सी बाँटना और भील मोंगना है]

कँटहवा तार-(सं०) दो-तीन पतले तारों को मिलाकर बनाया गया कोहे का तार, जिसमें दो-एक इंच की दूरी पर कोहे के ही कटि नुन होते हैं। यह फलक की सुरक्षा के लिए खेत के चारों ओर चरने के काम आता है (बिहा०), [कँट-हवा + तार (हि०), कँटहवा < कौंटा < कंटका]

कंटा-(सं०)-(१) वर्षा या सिंचाई के बाद तेज धूप के कारण कड़ी हो गई खेत की मिट्टी को मूलायम करने के लिए व्यवहृत कुछ काँटों-बँती कोहे की कीलों से बना एक तरह का हल (नं०)। पर्या०-खखोरनी (नं०)। [< *कण्ट, कण्टक < *कण्ट > कण्टटि = फलता है, घूमता है। (२) काँटा। (३) सरकड़ा, (चंपा०-२)। पर्या०-कौंड़ा (चंपा०, प०-४, शाहा०)। [कण्ट]

कंटिया-(सं०)-(१) गाय-सँस के इन्हने या की-तेल आदि रक्तने के काम में प्रयुक्त लंबी गर्दन वाला मिट्टी का छोटा बर्तन। पर्या०-कटिया (चंपा०), कँचा (चंपा०), टेहरी (प०-४), मेटिया (चंपा०, उ० भाग०), अलही (चंपा०, नं०-२)। [मिला०-कठिन, लंबी गर्दनवाला। कंठला = पात्र, करक = कर्महस्त = कर्महस्तारच करक] (शाह०)। (२)-(उ० पू०, उ० प० नं०) दे०-कोहा। [मिला०-कंठला = पात्र]

कंठ-(सं०) दे०-कंठी। [< *कण्ट]

कंठफोड़-(सं०) यह सुगंध, जिसके गले में इन्ध-धनुष-सा रंग निकल आया हो (शाहा०-१)।

[कंठ + फोड़ < कंठ + फोड़ < स्फुट]

कठा-(सं०)-(१) मवेशियों के गले में पहनाई जानेवाली घुंघीवार मोटी रस्सी (बिहा०, भाज०)। (२) किन्हीं के गले का एक बामुपण। [< *कंठका]

कंठी-(सं०) कुवाल की चार और पासे की जोड़ (प०, यवा)। पर्या०-नट्टी (शाहा०), सन, कंठ (उ० भाग०), तुन (उ० नं०)। (२) दे०-कंटा। (३) तुलसी या बेल की टहनी की बनी पतली-सी माला। [< *कण्ट]

कँडुका-(सं०) जंगल या चरागाह में सूखा हुआ गोबर, जो खाद व्यवसाय करने के काम में आता है (नं० उ०, नं०-२)। पर्या०-कडुका (नं० उ०), डसारा (प०-४, भाग०-५), कंडा

(सं० ब०)। डमार (सं० सं०), विनुआ गोइठा (प०), बनगोइठा (सा०; सं०-२)। [मिला०—करण्ड = मधु का छत्रा, 'करण्डं मधुकोशसि फलपुष्पे दलादिके' (वं०), 'करण्डं मधुकोशस्यै' (वं०)]
कंदरा—(सं०) (१) सूखा हुआ गोबर (प०, सा०)। दे०—डमारा। (२) गोइठे की ऐसी राल, जो बिजरी नहीं रहे, बल्कि बेंसी और कड़ी रहे। (बं०-१, पट०-४, मग०-५, सं०-२)। [करण्ड]
कंदरानी—(सं०) मूँज पैदा होने का स्थान (उ०-१०, बं०-१)। दे०—पुखरानी। पर्या०—कंदरानी (सा०)। [कंद + वली < *काण्ड + वन]
कंडा—(सं०) (ब० भा०)। दे०—कंदा, जई। [< *काण्ड, < *कन्द]
कंडा—(सं०) (१) (सं० ब०)। दे०—कंडा। (२) सूखा हुआ गोबर (सा०, पट०)। दे०—डमारा। पर्या०—कररा (सं०-२)। [< *कांड, < *कंद]। (३) मूँज या सरपट नामक घास (सा०-१, मग०-१)। पर्या०—कांडा (बं०-१, पट०-४, सं०-२)। [कंड < *कांड]
कंता-कनेल—(सं०) एक प्रकार का फूल। (बर०-१, दृ०-१)। [कंता + कनेल < कान्त + कश्मिकार]
कंदरी—(सं०)—नदी के किनारे बोया हुआ गुआ, जिसमें नदी का पानी छनकर जाने से सूख रहता है (पट०, मग०)। पर्या०—कानर (मग०-५)। [मिला०—कन्दर, कन्दल]
कंदा—(सं०) जई की आति का जमीन में बैठने वाला एक फल, जिस की तरकारी होती है (पट०-१, मिला०—अरई, कंडा)। टि०—कंदा दो प्रकार का होता है, एक लंबा और मोटा, जिसे गहरी कंदा कहते हैं; दूसरा अपेक्षाकृत छोटा और मोटा होता है (पट०-४, सं०-२)। [< *कंदक]
कंधोला—(सं०) एक शाहीदार पौधा। इसका फल लंबा और आकार कंठों की तरह होता है (पट०-१)।
कंधा—(सं०) (१) मोल के बाट (मोहन) के ऊपर का कटा हुआ भाग। दे०—कंध। (२) ऊँट के मोल के पेट में रहनेवाले बाट

(मोहन) के मूँज के ऊपर का कटा हुआ भाग। दे०—कंध। [स्कन्ध, कन्ध]
कंदरी—(सं०) बाय-बैल आदि के द्वारा नियंत्रित हुए चारे का बोझा-बोझा बस फिर मूँज में लाकर चराने का व्यापार (सा०-१)। पर्या०—कंदरी (सा०), कसुरी (ब०-५० बं०-१), पाग (सं०-२) पागुर (मग०-५, बं०-१) [< *कंदल]
कंतासुरी—(सं०) वह बैल, जिसका एक सींग मोचे की ओर और दूसरा ऊपर की ओर जाता है (ब०-५० सा०)। दे०—सरग-पताली। पर्या०—सुरंग-पताली (पट०-४, मग०-५), डेवा (पट०-४)। सरगपताली (सं०-२, बं०-१)। [कंतासुर (१)]
कंसिवा—(सं०) वह बैल, जिसका कंध-रंग लाल की तरह हो (पट०-१)। [कंस + इया (ब०) < कंस < *कांस्य]
कडन—(सं०) बांस की गिरह पर का बुकिया रोएँदार छिलका (बं०-१, पट०-४, मग०-५, भा०)। (२) बांस का पतला छिलका या टहनी (सा०-१, सं०-२)। [कडि, कणिका, कडिका]
कडल—(बि०) (१) सफेद रंग का मधुखी (बं०-१, सा०)। पर्या०—कडर। (२) कडिल वर्ण का पशु (पट०-४, मग०-५)। [< *कडिल]
कडलापल—(बि०) (१) फल की बाल का दूध और पोस्ता होना (पट०-४, मग०-५)। दे०—कलाएल, हबसाएल। (२) किसी मज के दाने का कुछ-कुछ पकने लगना (बं०-१ सा०, पट०-४, मग०-५)। [कडल + आपल (बि० प्र०) < *कडिल]
कडल—(सं०)—(बं०)। दे०—कडल।
कडला—(सं०) ककड़ी-बेंसी एक प्रकार की तरकारी। वह एक हाथ से लेकर तीन हाथ तक लंबी होती है। इसका आकार लप्याकार होता है (पट०-१, सं०-२)। पर्या०—कडल, बिचड़ा (बं०)। कडल, कडल (सं०)। रवेसजि (सं०)।
कडनी—(सं०) दे०—कोटी।



कंतासुरी

कडर—(सं०) वह स्थान जहाँ गहुआ बोदकर रोइठा लकड़ी, पुआल आदि ढालकर और उसमें आग लगाकर बाँस के लोम जाड़े में बांध लापते हैं और छोट-निवारण किया करते हैं (सा०)। दे०—पूर।
कडरल—(बि०) कट हुए अनाज के पीसों को दोनी के समय उलट-पुलट करना (बं०-१, सा०)। पर्या०—उकटल (पट०-४, मग०-५, सं०-२)। [कडर + ल (प्र०) < *कडर = संयुक्त, सम्मिलित (मो०-बि०-दि०), < *कणाव-क्रिय < कण + अवक्रिय < अव + √कृ (विभं० = संकना)]
कडरी—(सं०) दे०—कंदरी।
कडली बूँट—(सं०) उबले और बड़े धानोंवाला एक प्रकार का घना (पट०-१)। पर्या०—कडली बूँट (मग०-५, सं०-२); कडली बूँट (बं०)। [कडल + ई + बूँट < कानुली + बूँट]
कडिया—(सं०) मान का एक भेद, जो लकड़ी के समान होता है (बर०-१, सं०-२)। [मिला०—कडि, कडरी]
कडु—(सं०) (१) कोरे की जाति का एक लंबा पतला फल, जो कच्चा साया जाता है। पर्या०—कंदरी, (सा०, सा०, पट०-४, मग०-५ सन्ध्र भो), कौकरी (= बड़े आकार की ककड़ी) — ककड़ी (सा०), कौकड़ी (पट०-१, सा०)। यह फल बहुत जर्जरिय है। इसके विषय में कहा- मत है—'निकोरिया गेलाह हाट, कौकरी देखि दिया फाट' (कोई मनुष्य बिना पैसे के बाजार गया, वहाँ ककड़ी देखकर उसका हृदय फटने लगा)। 'एक हाथक कौकरी, नौ हाथक बीया' (एक हाथ की ककड़ी और उसमें नौ हाथ का बीज)। (२) सरसूजे की तरह का एक फल जो पकने पर फूट जाता है और फूटने पर फूट या फूट कहा जाता है। [कडरी (सं०), कडडी (सा०), ककड़ी (हि०), कौकड़, वड़ कौकड़ (बं०), कौकड़ी (मो०), ककड़ी (बं०), कौकड़ी (मरा०)]



ककड़ी

ककड़ी (गु०), ककड़ी (हि०), क्यारजाव (फा०), किस्स कदस (मो०), ककडर (बं०)
ककना—(सं०) फल को हानि पहुँचानेवाली एक घास (पट०-४, मग०, ब०-५०)। पर्या०—वनसारी (सा०, पु० सं०) [मिला०—ककड़ा (?) (सं०), कंजुनी। मिला०—कौको (बं०)]
ककरी—(सं०) प्रचलित श्रेणी का एक अच्छा पान, जिसके पत्ते लंबे और मोल होते हैं (उ०-५० सं०)। दे०—कनवा। पर्या०—ककरी (ब० पु० सं०)। [मिला०—ककड़ी = ककड़ी की तरह लम्बा होने के कारण संभावित नाम]
ककुड़ी—(सं०) तम्बाक के पत्त का एक रोग, जिसमें हरा पत्ता सिक्का जामा करता है (बर०-१, बं०, मग०-५)। टि०—कडू और निरबे के पत्तों में भी यह रोग कभी-कभी हो जाता है। [< *ककट = एक प्रकार का रोग। ककड़ (हि०), ककरी (सं०) = सूखी या सेंकी हुई सुरती का मुरमुरा चू, जिसमें पीनेवाला तम्बाकू मिला रहता है (हि० भा० सा०)]
ककरी (सं०)—एक प्रकार का अच्छा पान, जिसके पत्ते लंबे और मोल होते हैं (उ०-५० सं०, सं०-२)। दे०—ककरी।
ककिया—(सं०) वह बैल, जिसका रंग कान की तरह काला हो (पट०-१, मग०-५)। पर्या०—करिया (सं०-२)। [कड + इया (मो०) < कड < *कडल]
ककड़—(सं०) ईल का अधपका रस (सं०-१, बं०)। दे०—कनरस।
ककड़ा—(सं०) वह मिट्टी, जो कुछ मुलाबब तथा कुछ कड़ी हो (सा०-१)। [ककट + आही (बैशो)]
कचनार—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष, जो मसले आकार का होता है, कड़ी-कड़ी लता के बंधा भी होता है। इसकी पालिया मोल और घिरे पर कटी होती है। छाल मूरा और फूल लाल, पीले और सफेद होते हैं। फूलों और कलियों की तरकारी बनती है। फली बिपटी होती है (बर०-१, पट०-१-४, मग०-५ बं०, सा०)। [कचनार (सं०), कचनार (मो०), कचनार (हि०), कचन, कचनार (बं०), कौकल,

कौचनी (मरा०), जिय (संता०), कोचली, चम्पाकाटी (गु०), टकी (ने०), कोचले, कौच-नाल (म०), देवकोचन, देवकोचनमु (दे०), सैमपुंथरी (त०)]

कचमहुआ—(सं०) एक बीजू वाय, जो कच्चा खाने में भी मीठा लगता है। [कच + महुआ < कच्छ + महुक वा कच्चा + महु (= मीठा)]

कचरस—(सं०)—(१) ऊँस को पेरकर वा चुसकर निकाला गया रस (साहा०, बंवा०, पट०-४, मग०-५)। दे०—रस। [कच + रस + कच्चा रस]। (२) पानी निभा हुआ ऊँस का रस (उ० म०)। पर्या०—पनुर्छा (उ०-म० साहा०)। (३) ईँस का मक्का रस (मू०-१, बंवा०)। पर्या०—कचकुट्टा। [कच + रस < कच्छ + रस (?)]

कचरा—(सं०)—(१) बूट की मक्का की छीनी। पर्या०—डसराइल कचरी (साहा०); कचरी (अथवा)। (२) कचर के बीजों को बाँधने के लिए पट्टे की ऐंठी हुई रस्सी (म० उ०, मू०)। [कच + रा (म०) < कच < कच्चा]

कचरी—(सं०)—(१) कच्चे-हरे बने के पीछे (साहा०, बंवा०-१, पट०-४, मग०-५)। (२) कच्चे हरे बने के छुड़ाये हुए बाने (साहा०, बंवा०-१)। (३) आल नामक रंग के पीछे की मोटी बड़ (साहा०, उ० मू०)। दे०—बाल। (४) दे०—कचरा। [कच + री (म०) < कच, < कच्चा]। (५) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (सावा० मू०)। (६) एक प्रकार का गुरमूँही तामक फल, जो बरसात में मई के अंत में होता है और जिसके पीछे जलर की तरह फीले हुए होते हैं। (७) बने वा जेसारी की बाल को पानी में फुलाकर, फिर सिल पर पीसकर और तेल या घी में तलकर बनाई हुई बड़ी। कभी-कभी यह केवल प्याज या अन्य चीजों को बेसन में मिलाकर तथा तल कर बनाई जाती है। (पट०-४, मग०-५, बंवा०, राँची)। [कच + री (म०) < कच, < कच्चा]

कचल—(फि०) कुशली से थोड़ी-थोड़ी दूरी पर खेव देकर जमीन को कोझा (बर०-१) [कच + ल (म०) < कच, < कर्त < कृती (छंढने)]

कचाठी—(सं०) घान का वह पीचा जिसकी बाल पुष्ट न हो पाती और जिसे हरा रहते ही काटकर पशुओं को खिला दिया जाता है (मू०-१)

पर्या०—मुबार (बंवा०, पट०-४), मरहीना (म०)। [कच + आठी < कस्थि (?)]

कचिया—(सं०)—कसल काटने की दाँवदार हँसिया (उ०-मू० बिहा० मू०-१, बर०-१)। दे०—हँसुला।

[मिला०—कच्छ, कच्छ]। *कोष्ठेयक (संस्क०) > कच्छलेय (प्रा०) > कचिया, कर्त्तरी (संस्क०) > कट्टरी, कचारी (प्रा०)]



कचिया

कचुआ—(सं०) पान की लता के ऊपर की बनी लकी (उ० मू०)। दे०—बर्द। [कच्छुक = मझरी, आवाक, वृक्ष-विशेष (मो० वि०-६)]

कचेलिया—(सं०) वह बंस, जिसकी पूँछ लंबी तथा लिन के सविरचल से गुदा-स्थान तक मांस लटका हो तथा वह नीच वर्ण का हो (पट०-१)। [कचेल = इया (म०)—(संभवतः ' < कच]

कचोहा—(सं०) तम्बाकू का एक रोय (उ० मग०)। [मिला०—कच्छ]

कच्चा—(सं०)—(१) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (म० उ०)। दे०—गवरा। (२) इंट-परवर के बिना ही बनाया हुआ कुआ। पर्या०—कुआँ, कुहयों। (बि०)—कोई वस्तु, जो पकी नहीं हो। [< *कृत्य (संस्क०) क्रि० (प्रा०)—(= जिसके निर्माण का कार्य हो), कुत्सित (< कृत्सा)] हि०—कच्चा शब्द की व्युत्पत्ति अभी तक स्पष्ट नहीं हो सकी है, संस्कृत-वाङ्मय में इसके लिए 'क्षाम', 'अपच्यमान', 'अपक्व' आदि शब्द व्यवहृत हैं। हि०-सं०-सा० में 'कचन' (संस्क०) से 'कच्चा' की उत्पत्ति मिली है और 'मराठी व्युत्पत्ति कोप' में 'कच' (पब्लि-शब्द) से। कुछ शब्द नीचे लिखे जाते हैं, जिनसे व्युत्पत्ति की संभावना हो सकती है। [कुत्स, कत्, (> कचन), कुपच, कोपच, कुत्सित (प्रकृता), कच्छ, = जनप्राय प्रवेश को वस्तु, कृत्य (संस्क०), क्रि० (प्रा०), कुत्स

(= कटा हुआ), कच्य (विकसित होनेवाला) < *कच् (विकसने)]

कचाविगहा—(सं०) जमीन की एक नाप, जो किसी स्थान-विशेष में तो प्रचलित हो, पर दूसरे स्थानों में उससे भिन्न हो। भिन्न-भिन्न स्थानों में 'विगहे' की नाप में अन्तर पाया जाता है। 'विगहा' की असंतुलित नाप। पक्का विगहा १०३५ वर्गमैत्र या १० कठे का होता है। [कच्चा + विगहा < विग्रह (?)]

कचावीचा—(सं०) दे०—कच्चा विगहा।

कच्यू—(सं०) बर्द की जाति का लंबा-मोटा कन्द, जिसकी तरकारी बनती है (मग०-५, पट०-४)।

दे०—बर्द। पर्या०—अरुआ (बंवा०), कनचू (बर०-१)। [मिला०—कचू, कच्ये = एक प्रकार का स्तब्ध कन्द (मो० वि०-१३)]

कच्छड़—(सं०)—(बंवा०)—दे०—कछाड़-२।

कछाड़—(सं०)—(१) नदी या पोखर का किनारा, कछार। दे०—करारा। (२) इस प्रकार पतली हुई मोठी वा मुंजी, जिसके नीचे छटके हुए छोर को ऊपर बाँसकर कवर में लपकर बांध लिया गया हो। (बंवा०, मग०-५, पट०-४)। पर्या०—कच्छड़ (बंवा०)। [कच्छ* > कच्चा + ड, कात]

कछाड़ा—(सं०)—(पट०-४)। दे०—करारा। [कच्छ* > कच्चा + डा]

कछार—(सं०) दे०—कछाड़।

कछुआ-डाबर—(सं०) वह अत्यंत उपजाऊ संत, जो कछुए की उलटी हुई कोपड़ी की तरह गहरी होता है और जिसमें आसपास के चारों ओर से पानी और सड़ी-पकी खाद आदि आकर गिरती है। (बर०, मू०) [कछुआ + डाबर]

कछुआ डाब—(सं०) नदी का वह बहाव, जिसमें जल-प्रवाह के कारण रेतिली जमीन की ऊँचाई और नीचाई में केवल बदल होते रहने से कहीं बोझा और कहीं अधिक जल रहता है (मग०-५, मू०-१, पट०-४)। [कछुआ + डाब, कछुआ < कच्छ्रपक, डाब < च्छल (पत्नी), (म० व्य०), अवधार]

कछुआ-सीम—(सं०) एक प्रकार की सेम, जो तरकारी के काम में जाती है (बर०-१)।

पर्या०—कचुआ सेम (बंवा०), गैचिया सेम (पट०-४)। [कच्छु + शिम्बि (?)]

कछुआ—(सं०) कुआँ कोपने में मिलनेवाली डीली मिट्टी (पट०, पट०-४, मग०)। [*कच्छ] कजई—(सं०) खाने से रोकने के लिए बेल के मुँह पर बाँधी जानेवाली रस्सी की बनी हुई बाली। (उ०-मू० ने०)। पर्या०—कजुई, मुँहबन्द (मग०-५), जाबा (पट०-४), जाब (बंवा०)। [देशी]

कजरगोट—(सं०) एक प्रकार का काला घान (बर०-१)। पर्या०—कजरगौट, कजरवौर, कजरघौद (उ० मग०)। [कजरी (हि०), < *कजलगुत्स (?)]

कजरगौट—(सं०)—(बर०-१)। दे०—कजरगोट। **कजरघरो**—(सं०) छोटकर (बाधन करने) बोया जानेवाला एक प्रकार का घान, जिसकी बाल वाले रंग की होती है। (उ० मग०)। [कजलगुत्स (?)]

कजरवौर—(सं०) गहरी तथा सुगंधित घान का एक भेद, जिसकी बाल वाले रंग की होती है (मू०-१)। पर्या०—कारीबाँक (पट०-४)। [कजरी (हि०), कजलगुत्स (?)]

कजरा—(सं०)—(१) बधा और बलिष्ठ वह बंस, जिसकी बाँसों के चारों ओर का स्थान नीचा हो। (पट०-१, पट०-४)। कहा०—'बंस लीजें कजरा, घाम दीजें अगरा'—(बाध) = कजरा बंस लेने के लिए अधिक मूल्य देना चाहिए। [कजर + आ (म०) < कजल < कजल (२) घान, गेहूँ और जौ के बीजों में लगनेवाला एक प्रकार का कोझा, जो पीछों को करीब छह इंच के होने पर बाट जाता है (उ० म०, पट०, मग०)। दे०—कजरी। [कजल, मिला०—कजल = एक प्रकार का पक्की, कजल = मसूर (मो० वि०-६)]

कजरी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का घान (उ० मू०, बर०-१)। [कजल (२) एक पशु-वाध घाम (साहा०)। दे०—कजला। [कजल, मिला०—कचक = एक प्रकार की छत्राक (कुरमुत्ता)-जाति की घास (मो० वि०-६)] (३) घान, गेहूँ और जौ के पीछों में

लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा, जो पौधों को करीब छह इंच के होने पर खाट जाता है। पर्या०—कजरा (५० पै०, ५८०, गवा, ५८०-४), कजरा (३०-५०-६०), मजरी (५०-६०) [कजल, मिला०—कजल = एक प्रकार का पत्ती, कजल = मजल (मो० वि० वि०)] (४) छोट कर (बाधन करके) बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (६०-६०) । [कजल] (५) बरसात में गाया जानेवाला एक प्रकार का भीतरी गीत, कजली । कजला—(सं०)—(१) (३०-५०-६०) । दे०—कजरी । (२) एक पक्ष-बाध धातु (बंधा०, ६०-५०-६०) । पर्या०—कजरी (साहा०) । [\angle *कजल]

कटुई बालू—(सं०) वह बालू, जो काटकर रोपा जाता है (५८०-१, ५८०-४) । [कटुई + बालू, < काटल = (काटना)]

कटइला—(सं०) एक काटेदार पीपल, जिसके बीज से तेल निकलता है (५८०-१, ५८०-४) । [कटल < *कटिल < कटल]

कटकसार—(सं०) मोटे धान का एक किस्म (६०-१) । [कटकसारि]

कटनियाँ—(सं०)—(५०) । दे०—कटनिहार ।

कटनिया—(सं०) ऊँच की लड़ी फल को काटनेवाला मजदूर (६० भाग०, ५५०-५) । दे०—मंगड़ोहा । [कटन + इया (वि०-प्र०) < कटन < कर्तन < कुत्ती (छेबने)]

कटनिहार—(सं०) फल काटनेवाला (१०-३०, ५८०, गवा तथा धन्यध भी) । पर्या०—दिनिहार (५८०, गवा, ६०-६०), लेवनिहार, कटनियाँ (५०), जन, बनिहार (सामा०) । [कटलि + हार (वि०-प्र०), < कर्तन < कुत्ती (छेबने)]

कटनी—(सं०)—(१) धान आदि फल की कटाई (५८०-४, बंधा-१, ६०-१) । (२) फल की कटाई का समय । पर्या०—कटिया (३०-५०), सोनी (६०-५० साहा०) । [कटनी < कर्तन < कुत्ती (छेबने)]

कटनीकरल (मुहा०)—(१) धान आदि की कटनी करना । (२) उम्बाकू का पत्ता काटना ।

दे०—ऊपर पत्ता तुरल । [कटनी + करल < कर्तन < कुत्ती (छेबने)]

कटहर—(सं०)—(१) एक अतिष्ठ फल, कटहल । (२) कटहल का पेड़ । पर्या०—कटहल । टि०—कटहल का पेड़ बना होता है । वह बिहार में सर्वत्र पाया जाता है तथा भारतवर्ष के दूसरे भागों में भी मिलता है । इसकी पत्तियाँ तीन-चार अंगुल लंबी, कड़ी, मोटी और स्वामलता लिये हुए हरे रंग की, अंडाकार होती हैं । इसका फल एक-दो हाथ लंबा और प्रायः इतना ही मोटा होता है । ऊपर का छिलका काफ़ी मोटा होता है



कटहर तथा ऊपर बहुत-से नुकीले कँचरे होते हैं । फल के भीतर मोटे-मोटे रेखाओं की कचरियों के बीच में गुदेदार कोए होते हैं । कोए कच्चे पर भीठे होते हैं । कोओं के भीतर पतली तिलियों से लिपटे हुए बीज होते हैं । इसका फल माष-कामून में लगता है तथा खेत-भावाड़ में पकता है । कच्चे फल की तरकारी और अचार होते हैं । कटहल नीचे से ऊपर तक फलता है । बहुत हीर तने में भी फल लगते हैं । इसकी छाल से लसीला रस निकलता है । पेड़ की लकड़ी गाढ़ तथा चौखट बनाने के काम में जाती है । इसकी छाल के उबालने से पीला रंग निकलता है, जिससे बरमा के साधु अपना धन रंगते हैं । [< *कर्त फल, फलस (संस्क०) फलस (प्रा०), कटहर, कटहल, (हि०, सं०), कटहर (ने०), कौटल, कौटल, (सं०), फलस (मरा०), फलस (गु०)]

कटहरी—(सं०)—(१) एक प्रकार का केला (६०-१) । (२) छोटा कटहल (साहा०-१, ५८०-४) । [कटहर + ई (= कटहल के समान)]—[कटहर + ई (प्रा०) < कट + हल < *कर्त + फल]

कटहल—(सं०) दे०—कटहर ।

कटहवा—(सं०)—(मग०) । दे०—ऊँच नम्बर ४५३ । [देशी]

कटही हर—(सं०)—(बंधा०)—दे०—कटही हल ।

कटहीहल—(सं०) एक प्रकार का हल, जिसमें लंबी कीलें लगी रहती हैं और जिससे निकली की वाली है (६०-१) । पर्या०—कटही हर—(बंधा०) विटह (६०-१)



[कटही + हल, कटही < कटल (वि०), काटना (हि०) < कुत्ती (छेबने)] वा कटही < कटल (= कोल)]

कटारी—(सं०) एक बैला, जिसमें बैल पर लगानेवाला व्यापारी कच्चा सामान रखता है (६० भाग०) । पर्या०—हँडवाय (६०-६०), बाव (सा०, बंधा०) । [संम०—कर्तरी (?)]

कटिया—(सं०)—(१) (३०-५०) । दे०—काटल, कटनी । (२)—(बंधा०) । दे०—कटिया । [कृत्ति < *कुत्ती (छेबने)]

कटुआ—(सं०)—(१) कनाक के ऊपर का छिलका (५८०, गवा, ५८०-५, ५८०-४) । दे०—मूसा । (२) गेंहूँ के सानों को निकाल लेने पर बची हुई ऊपर की भूसी (३०-५०-६०) । दे०—होटी । (३) चारे के लिए व्यवहृत होनेवाला खरहर या किसी अन्य वनहन का छिलका कच्चा मूसा (५८०) । दे०—मूसा । [< *कटुक, कुट (कूटना, छिलका-रहित करना), -छिलका-रहित किया हुआ कुटुक, कटंक, कटंगर]

कटुई—(सं०)—(१) बंडल के बिना ही केवल बाल की कटाई (६०-५० साहा०) । दे०—बसकट ।

(२) गेंहूँ के बाटे में गुड़ मिलाकर तथा ची में तलकर बनाया हुआ एक प्रकार का पकवान (मग०-५) । (३) एक प्रकार का बालू, जो काट कर खेतों में रोपा जाता है (मग०-५, धन्यध भी) । (४) बड़ पही, जिसके ऊपर का मलाईवाला बंध काट (निकाल) लिया गया हो (बंधा०) । [< *कृत्ति < कुत्ती (छेबने), कृत्ति: कृन्तनेयशी वाउत्तं, इयमीत्ता कृन्तितमोदव, सूत्रमयी, उपमायवा - निरु०]

कटुई—(सं०)—(१) कल में रहनेवाला एक प्रकार का सोंगुर, जो धान के पौधों को काटता है । (२) गेंहूँ, जो आदि के पौधों को काटनेवाला भीड़ा (साहा०-१) । [कटु + ई < कटु < काटल

(विहा०), काटना (हि०) < कुत्त, कीट] कटुआ—(सं०) चारे के लिए व्यवहृत होनेवाला खरहर या किसी अन्य वनहन का मूसा (६०-५०) । दे०—मूसा । [मिला०—कटुक, कुटुक, कटंक, कटंक]

कटैया—(सं०)—(१) एक प्रकार का कीड़ा (कोषा), जो धान में लगने पर उसकी बाल को पीसा बनाकर नष्ट कर देता है (६०-५० साहा०) । पर्या०—कटोई, कटोइया (म० ६०), हरदा (५८०-४) । [\angle कटयटिन्] (२) एक प्रकार का कटीका पीपल (६०-१) । [\angle *कटयकारिन्]

कटोइया—(सं०)—(म० ६०) । दे०—कटैया । [\angle *कीट, \angle *कटकिन्]

कटोई—(सं०)—(म० ६०) । दे०—कटैया । [\angle *कीट, \angle *कटकिन्]

कटौनी—(सं०) फल काटने की मजदूरी (६०-१, ५८०-४) । [कटौल + ई, < कटायल (विहा०) < कुत्ती (छेबने), कर्तन] ।

कट्टा—(सं०) पक्षियों के जाने के लिए गेंहूँसे या मशीन से काटे हुए धास, पुवाल, कतर आदि के छोटे-छोटे बारीक टुकड़े (५८०) । पर्या०—कुटटी (६० भाग०), बिचाली (मग०-५, ५८०) लेत्री । (बंधा०) । दे०—कुट्टी । [< *कर्तित < कुत्ती (छेबने), (प्र०) कटिअ (प्रा०), < *कृत्त (संस्क०), कट्ट (मा०)]

कट्टा—(सं०) बीस धुर जमीन की एक नाप, बिस्वा (साहा० ५८०-४) । [\angle *काष्ठा]

कठजा—(सं०) कई तरह के मिश्रित हुए अनाज । (२) कच्चा वन (६०-१) । [असपट, संम० < कतिप्पमज्जाति, मिला०—सतंजा (बंधा०, ५८०-४) < सनाज्जात] ।

कठकरंज—(सं०) एक काटेदार झाड़ी, जिसके फल का मूसा बना के काम में जाता है (६०-१) । पर्या०—कठकरेजी (मग०-५, ५८०-४) । [< *कटकरंज, < *कटकरंज]

कठकरेजा—(सं०) दे०—कठकरंज ।

कठकरेजी—(सं०) दे०—कठकरंज ।

कठकूआ—(सं०) लकड़ी के बने बोल धांचे (कोडी) से सुरक्षित हुआ । [कट + कूआ < कटुकूप]

कठसुरपी—(सं०)—(१) काठ की बनी हुई चम्मच-जैसी चीज जिससे कड़ाह से रस निकाला जाता है। (२) दे०—कठही। (३) कड़ाह की पेदी में चीनी बैठने से बचाने के लिए उसे सुरचनेवाला ओजार (उ०-पू० नं०)। दे०—सुरपी। [कठ + सुरपी < काष्ठ सुरप (?)]

कठजामुन—(सं०) एक प्रकार का जामुन। यह छोटा होता है तथा इसका बीज बड़ा-बड़ा होता है (शाहा०-१, चंपा०, पट०-४)। [कठ + जामुन < काष्ठ + जम्बू (?)]

कठडुमर—(सं०) एक प्रकार का जंगली वृक्ष। इसके फल की तरकारी होती है (पट०-१)। [कठ + डुमर < काष्ठ (वा कट) + उदुमर]

कठनही—(सं०)—(१) कुएँ से पानी निकालने का काठ का बना हुआ एक प्रकार का पात्र (गया)। (२) काठ का बना हुआ तख्तरी की तरह का बरतन, जिसमें चटनी आदि जैसी चीजें रखी जाती हैं (गया०-५)। [कठ + नही (सं०) < काष्ठ + नही, यथा पन्ही < फलही]

कठपिरी—(सं०) एक प्रकार का फूल (बर०-१)। [मिला०—कठभी, "कठभी स्वादुपुष्पश्च मधुरेषुः कटभम्"—(भा० प्र०)]

कठफलेल—(सं०) छोटा-छोटा जामुन। यह बरसात में फलता है और इसका बीज बड़ा-बड़ा होता है (पट०-१)। [कठ + फलेल < काष्ठ (वा कट) + फलेला (वैसी)]

कठबंधन—(सं०) लकड़ी का संभ्रा, जिसमें हाथी बांधा जाता है। [कठ + बंधन < *काष्ठ बंधन]

कठबौस—(सं०) पतला और ठोस जौस (शाहा०-१)। [कठ + बौस < काष्ठ + वंश]

कठबौसी—(सं०) एक प्रकार का बौस, जिसकी गाँठें बनी होती हैं और बौस छोटा एवं पतला होता है (चंपा०-१)। [कठ + बौसी < काष्ठ + वंश (?)]

कठरंजनी—(सं०)—(गुंजा नं०-१)। [कठरंज]

कठरा—(सं०)—(१) लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का नाव। यह मवेशियों को दाना खिलाने के काम में आता है। (२) लकड़ी का बना



कठरा

गोल बरतन, जिसमें बाढ़ा गुंजा जाता है, अथवा घर का दूसरा काम होता है। (३) स्लेट, चित्र आदि में लगा चौखट तथा डोलक, डंक कठौती आदि का बिना मड़ा हुआ लकड़ी का बना ढाँचा (पट०-४)। (४) जनाक रखने के लिए काठ का बरतन (पट०, गया०)। पर्या०—कठौती (नं० व०)। [कठ + रा (प्र०) अथवा < काष्ठामत्र, < काष्ठपात्र]

कठरेंगनी—(सं०) काली चमीन पर फैलनेवाली गोजुर की जाति की एक काँटेदार घास, जिसके पत्तों और डोंटों में काँटे होते हैं। इसके फूल बैंगनी तथा फल पीले रंग के होते हैं (पू०, नं०-१, गंग०-५)। दे०—रेंगनी। [कठरंजिन]

कठला—(सं०) दे०—कठरा। [कठ + ला (प्र०); मिला०—काष्ठामत्र, काष्ठपात्र]

कठली—(सं०) कुएँ से पानी निकालने के लिए काठ का बना हुआ एक प्रकार का पात्र (नं०-१)। दे०—कठनही। [कठ + ली (प्र०); मिला०—काष्ठामत्र, काष्ठपात्र]

कठवत—(सं०)—(१) कुर्वाँ सोदने के समय मिट्टी को भीतर से बाहर निकालने का पात्र (कठौती) (पू०-पू० नं०, शाहा०, गंग०-५)। दे०—वतना। (२) चीनी के रस को टंडा करनेवाला लकड़ी का कड़ाह (ता०)। दे०—कठौत। (३) काठ का बना हुआ गोलाकार बड़ा पात्र। [कठ + वत < काष्ठामत्र, काष्ठपात्र]

कठही—(सं०) कड़ाह से रस निकालनेवाली चम्मच-जैसी वस्तु। दे०—कठसुरपी। पर्या०—सैक या सैका (पू०, शाहा०), सफई या सफैया (गं०-ब०), डोहरा (ब०-प० शाहा०), डपटी या डट्यू (ब० भाग०)। [कठ + ही (वि० प्र०), मिला०—कठच्छेक = एक प्रकार की कलछी (नो० वि० वि०)]

कठा—(सं०)—(१) कृषि के ओजारों की गरममत आदि करने के बदले में बड़ई-ओहार आदि को मिलनेवाली सबदूरी (ता०)। पर्या०—जौरा (चंपा०), पाल (सं०), कमाई (शाहा०, पू० नं०), ओवर (ब०-पू० नं०), क्रमैनी (ब०



नं०)। (२) कठठा। जमीन नापने की पाँच हाथ की लम्बी। [सं०—< *काष्ठ वा *कृष्टि] कठाबर—(सं०) खेतों को नापनेवाला प्रामाण्य। [कठा + भर < *काष्ठभार]

कठार—(सं०) एक प्रकार का कंवर, जिसकी तरकारी बनवाई है (ब०-ग०)। दे०—कठार। [मिला०—काष्ठालुक]

कठुआ—(सं०) कुर्वाँ सोदने के समय भीतर से मिट्टी को बाहर निकालने का पात्र (छोटी कठौती)। दे०—कठना। [कठ + टल + ई (प्र०) < *काष्ठ]

कठेस—(वि०) वह कठ, जो ठीक से पका न हो और कड़ा हो (चंपा०-१)। [मिला०—कठर, कठिन]

कठौथा—(सं०) लकड़ी का काबड़-जैसे फलक बाका बीजार, जो खेत में पानी पटाने के काम में आता है (ब० नं०)। दे०—हथा। [कठ + औथा, मिला०—काष्ठामत्र, काष्ठ कुहाल]

कठौत—(सं०)—(पू०)। दे०—कठवत, कठौता। [काष्ठामत्र, काष्ठपात्र]

कठौता—(सं०) लकड़ी का कड़ाह, जो रस टंडा करने के काम में आता है। पर्या०—कठौती, कठौत (पू०), कठवत (ता०), नाद या कांसौती (ता०, चंपा०)। [काष्ठामत्र]

कठौती—(सं०)—(१) चीनी के रस को टंडा करने का काम में आनेवाला काठ का कड़ाह (पू०)। दे०—कठौता। (२) अन्न रखने का काठ का बरतन (ग० व०)। दे०—कठरा। [कठ + औत + ई < काष्ठामत्र]

कड़ड़ा—(सं०)—(ग० उ०)। दे०—कड़ड़ा।

कड़म—(सं०) भंग का वक्का (सं० व०)। पर्या०—पड़म (चंपा०)।

कड़वार—(सं०)—(१) लड़, बड़ो-बड़ो घाम, जो घर छाने के काम में आता है। कान की जाति की एक घाम। (२) घान के बाँझों की राशि (चंपा०-१)। [< कट, कट (= लू, पुगल याद) + वार (= वयह), मिला०—कटव्य = घास का कटव। कटव, कठवा। (मरा०), कटव (गु०)]

कड़वाँ—(सं०)—(चंपा०)। दे०—कड़वा। कड़ा—(सं०) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी (ता०, गंग०-५)। दे०—मेंडड़ा। [*कटक (संस्क०) > *कड़क (गंग०) > कड़ा]

कड़ाम—(सं०) चीनी में बेलों को सिलसिलेवार बांधने की लंबी खेरी (नं०-१)। पर्या०—कड़ाम (चंपा०)। [मिला०—कड़मिक = गर्दन के पीछे का घाम, कण्ठमाल]

कड़ाह—(सं०) (१) ऊँच के रस को उबालने के लिए लोहे का बड़ा गोल बरतन। (२) लोहे का बनी बड़ी गोल और गहरी कड़ाही (बिहा०, भाग०)। दे०—कराह। [< *कटाह] कड़ाह (२)



कड़ाह (१)



कड़ाह (२)

कड़ाही—(सं०)—(१) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी। दे०—मेंडड़ा। (२) लोहे का छोटा गोल बरतन, जिसमें तरकारी आदि पकाई जाती है। [कड़ाह + ई < *कटाह]

कड़ी—(सं०) (१) हवा का लंबा चौरस काष्ठ-फलक (गया)। दे०—कल्ला। [< *कटक] (२) मोट में लगी हुई टेढ़ी लकड़ियों (बोराबी) के दोनों छोरों को बांधने के लिए लगी हुई लोठ की कड़ी। पर्या०—बाखा। [कड़ा + ई < कटक (संस्क०) > कड़क (गंग०) > कड़ा]

कड़ौर—(सं०) वन के बीच पर दिया जानेवाला मूद। दे०—जापी। [कड़ + और < *कर्म (संस्क०) > कड़ु (गंग०)]

कतकी—(सं०) वह घाम, जो कात्तिक महीने में होता है (पट०-१)। पर्या०—कतिका (चंपा)। [कतक + ई < कात्तिक < *कात्तिकीय] कतकी उख—(सं०) वह ऊँच जो कात्तिक घाम में रोया जाता है (रो०)। [कतकी + उख, कतकी < *कात्तिकीय, उख < *इलु]

कतरपार—(सं०) ऊँच की खरों-कसल को काटने वाला (पट०, गया)। दे०—अंगंडोहा। (कतर + पार < कतरा + पार < *कान्तर + पार।

पर=अन्त । परमति (=समाप्त करता है),
पाट (=उत-पाट)]
कतरपारा (सं०)-(२० सं०)। दे०—भेंगेझोहा,
कतरपार ।
कतरबाह—(सं०) दे०—कतरबाह ।
कतरबाह—(सं०) ऊँठ के कोलू के बँक को हाँकने-
वाला । पर्या०—कतरिबाह, कतरबाहा,
कतरबाहा (२० भाष०), हँकबा (२०-२०
साहा० सं०), हँकबाहा (२०-४), हँकबाह
(सं०-२) । [कतर+वाह । कतर=कोलू में
लगा एक पट्टा जिसपर बैठकर बैल को हाँका
जाता है । < कतरी < कर्तरी (=च्छ-हि०
सं० सा०)+वाह अथवा कर्त (=गर्त)+री]
कतरबाह—(सं०) दे०—कतरबाह ।
कतरा—(सं०)-(२) एक पशु-साधन वास(सा०,
सं०, २०-१, सं०-२) । पर्या०—झारझूर
(२०-४) । [मिला०—कतृण्य (=एक सुनभित
वास, रोहिस। कर्तरीय=एक प्रकार का विषैला
पौधा (सं० वि० हि०)] (२) पके हुए
धान के बँधे हुए पुत्ते से बाल बाट देने के
बाद का बचा हुआ डंठल (सं०-१, सं०-२) ।
[< कतरी=काटने योग्य, < कृत, < कर्तित
< कृती 'छेदने']
कतरिबाह—(सं०) दे०—कतरबाह । [कतरि+वाह <
कान्तरक+वाह, कतरी=कोलू में लगा एक
पट्टा, जिस पर बैठकर बैल को हाँका जाता है;
कतरि+वाह < कर्तरी (=च्छ-हि० सं० सा०)
+वाह अथवा कर्त (=गर्त)+री > कर्तरी]
कतरी—(सं०)-(२) ऊँठ के कोलू का वह तस्ला,
जिससे बैल जुड़ा रहता है । पर्या०—कातरी
या कातर (साहा०, सं०, पु०, सं०, २० भाष०)।
(२) कोलू से बना हुआ वह चौड़ा तस्ला, जो
बैल के पीछे रहता है और जिसपर तेजी बैठ-
कर बैलों को हाँकता है । (३) दे०—
कातरी । [< कर्तरी (=च्छ-हि० सं०
सा०) < कृति < कृती 'छेदने' अथवा
कर्त=गर्त+री (वि० सं०) । (४) धान के
पीसे का एक रोग (२०-४० साहा०, सं०-२) ।
मिला०—कर्तरीय=एक प्रकार की विषैली वाध
(सं० वि० हि०)] । (५) कर्तों के कटे हुए

छोटे-छोटे टुकड़े (सं०-१, सं०-२, सा०-२)
[*कृत]
कतिक—(सं०)-(१) वह उद्द, जो कार्तिक में
फलती है (सं०-२, सं०-२, २०-४) दे०—तेपसी ।
(२) कार्तिक में होनेवाला महीन धान का
एक सफेद भान । इसका बादल सफेद होता
है (सा०-१, सं०-१, सं०-२, २०-४) ।
[कतिक + आ < कार्तिक < कृत्तिक
< कृत्तिका < कृत्तीकृती ('छेदने') + अण्य]
(३) एक प्रकार का भान, जो छोटकर (बाधन)
बोया जाता है और कार्तिक में काटा जाता
है (सं०, सं०-२, सं०-२, २०-४) ।
कतिकी—(सं०)-(२) कार्तिक में बोई जानेवाली
नील (२० भाष०) । (२) कार्तिक में होनेवाली
फसल । मिला०—कालुमी—कालुन में बोई
जानेवाली मीक । [कतिक + ई < कार्तिक
< कृत्तिक < कृत्तिका (नक्षत्र < कृत्ती-
'छेदने') + अण्य]
कसा—(सं०) डोम-वाति द्वारा नाँस काटने तथा
नाँस की बीमें बनाने के काम में
जानेवाला छोटे का बना एक हथि-
वार - विशेष (शब्द: सर्वत्र) ।
[< कर्त्त < कृत + अण्य, कर्तरी]
कस—(सं०) और के पेड़ से निकाल
कर बनाया गया मसाला, जो धान कसा
में जाता जाता है । पर्या०—कर (सं० २,
२०-४, सं०-२ तथा अन्यत्र) । [< कसाय
(हि० सं० सा०), < कसरीय < कसरीय
< कदर, खदिर (=खैर)+उत्थ (=उत्पन्न)
< उत + अण्य]
कसई—(सं०) काले रंग का ।
कसई—(सं०)-(२) दे०—कावी । पर्या०—कसवा
(सं०-२) । (२) बाढ़ हटने के बाद नदी द्वारा
छोड़ी हुई मीकी मिट्टी । पर्या०—कसई, पाँक,
पंक, पाँक(सं०-२) । (३) मिट्टी का कच्चापारा
मिलावा, जिससे शीतल तैयार करने में ईंटें
बोड़ी जाती हैं (अण०-५) । [< कसई]
कसवा कर—(सं०) धान की रोपणी के लिए
खेत को तैयार करना (२०-१, सं०-२) ।

दे०—काशे करल । कदवा + करल < कर्दम
(ई) + अण्य]
कदम—(सं०)-(१) एक प्रसिद्ध फल, जो गोल
भार केसरवर्ण होता है (२०, पुष्पि०-१,
सं०-२, २०-४) [कदम] (२) जोड़े की एक
चाल । (३) चलने में दोनों पंजों के बीच का
मन्तर । [कदम, अण्य]
कदराह—(वि०)-(२०-४, मण० ५) । दे०—कासल ।
कदवा—(सं०) धानी भर जाने के बाद पाद-पात
के नाश के लिए धान के खेत की जुताई
(सं०-२, सं०, सं०-२, सं०-२) । दे०—लेव ।
[< कर्दम]
कर्दमी—(सं०)-(२०-२, सं०-२, सं०-२) । दे०—
कोहड़ा । [(देवी),
मिला०—कदई, कदू
(का०)]
कर्दमी—(सं०) वह काष्ठकार, जिसे अधिकृत
भूमि प्राप्त है । (शाखीन प्रयोग) । दे०—
मीकमी । [कर्दमी=पुराना (का०)]
कदुआ—(सं०) लता में होनेवाला एक प्रकार का
लंबा या गोल फल,
जिसकी तरकारी होती
है । पर्या०—कद, कदई
(२०-भाष०), लोका
(मवा, सं०-सं०, सं०-२,
२०, २०-४), लोका
(२०-१), सवियन
(२० सं०), कदुआ, लोकी (२०-१) । [कदुआ
(देवी), कदु तुम्हो, आलायुक्त (संस्कृ०)
लाट लाट (सं०), दुध्या, मोफल (भरा०),
दुधिया, दुधला, आलाडी (गु०), कदु
उक्लकाई, कडंड वलकायि (का०), तोय,
तुलसी कसम (सं०), कदई, कदू (का०)]
कदोड—(सं०)-(१, दे०—कदई काटा । (२)
बीचड दे०—कादी । [< कर्दम] (३) वह
मन्त्र, जिसका बोलब कभी नहीं मूल्यता और
जिसका ज्ञान तुम में विषम मन्त्रों की जानी है ।
दे०—बहल । [< कर्दमिन्]
कदुदू—(सं०) -- दे० सा० । दे०—कदुआ ।



कदुआ



कदुआ

कधोर—(वि०) कीचड़ मिला हुआ धानी (सं०-१)
पर्या०—किधोर (सं०, २० भाष०), किनोर
(सं०), किदोड़, किदोड़ा (२०-४),
कदवइल (सं०) [कध+ओर < कर्द
(=कर्म)+पू वा < कर्द+उदक]
कन—(सं०)-(१) बंटवारे के लिए खेत की
फसल का मोटा-मोटी मूल्य-निर्धारण । पर्या०—
कूय, कनकूत, कनकुरी । [सं०— *कन्य]
टि०—जब किसान के खेत में फसल तैयार हो
जाती है तब काटने के समय धमीदार अपने
अमीन और सालिस को खेत पर भेजता है ।
वहाँ किसान, पटवारी-न्याया के कठार से
धमीय मपवाता है और सालिस खेत के चारों
तरफ घूमकर फसल की देखरेख करके तथा
अमीन और पटवारी से परामर्श करके खेत की
फसल का आनुमानिक परिमाण निर्धारित
करता है । यदि वह आनुमानिक परिमाण
किसान को स्वीकृत होता है तो खेसरा-बही पर
बढ़ा दिया जाता है । बात वहीं समाप्त हो
जाती है । किंतु यदि वह अनुमान किसान की
संपूर्ण नहीं होता है तब दूसरे किसान मध्यस्थता
के लिए बुलाये जाते हैं और वे परिमाण निर्धारित
करते हैं । यदि उनका निर्णय किसी एक
दल को भी अमान्य होता है तो पुनः वह मामला
बाँच-पड़वाक के लिए भेजा जाता है ।
इसमें खेत की अच्छी फसल के एक हिस्से को
धमीदार की ओर से और उसके बराबर ही
घटिया फसल को किसान की ओर से काटकर
दोनी करके अनाज अलग-अलग तोला जाता है ।
फिर दोनों को मिलाकर उसका मूल्य-निर्धारण
किया जाता है और खेसरा-बही पर बढ़ाया
जाता है । उसके बाद खेप भाग को किसान
काटकर तैयार करके अनाज घर पर ले जाने के
लिए स्वतंत्र रहता है । किसान को धमीदार की
ओर से फसल की कम उपज होने तथा काटने,
दोनी करने और तैयार करने के बदले प्रतिमन दो
सेर की छूट या छुट्टी दी जाती है । इसके बाद
अनाज का परिमाण करके दोनों में अलग-अलग
अंशों में बाँट दिया जाता है, किंतु अनाज
किसान के घर रह जाता है और हिसाब लिख
लिया जाता है । यदि किसान उग्र अनाज को

बाल वर्ष में जमींदार के पास जमा कर देता है तो हिसाब वेवाक होता है, नहीं तो उसके नाम से जयले साल के हिसाब में बाकी पड़ जाता है। (२) भावों में पाग के पोचों की बड़ से निकलने वाला नया अंकुर। [< *कण, < *कण्डल (= गवा अंकुर)] (३) भावली सेत की पंदावार का कृतना (चंवा०-१, नै०-२)। (४) गाय या बैल को पोचने के लिए देने पर उसके मुख-पी का बँटवारा करने के लिए किया जानेवाला मूल्यांकन (चंवा०-१)। (५) बाबल छोटने पर उससे निकली हुई धूल की तरह सहोत भूषी (चंवा०-१, नै०-२, पट०-४)। [< *कण]
कनइल—(चं०)—(साहा०-१, चंवा०, वर०-१)। दे०—कनल। [कन + इल < *कण्यकील]
कनई—(चं०)—(१) तबाकू या किसी पीच के ऊपर के भाग को काट लेने के बाद उसमें से निकला हुआ अंकुर या नई पत्ती (पु०) दे०—दोनी। पर्या०—कौली (२) दे०—काधो। (३) दे०—कनवाई (नै०-२, चंवा०)। [< *कण्डल, < *कण्डली]
कनकचूर—(चं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्कृष्ट धान (इ० भाग०, अन्वय भी)। [< *कनकचूर्ण]
कनकजीर—(चं०) एक प्रकार का रोपा जाने-वाला उत्कृष्ट सहोत धान (पु० नै०, नै०, वर०, पूर्ण०-१, चंवा०, सा०-१) [कनक + जीर < *कनकजीरक]
कनकजरी—(चं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्कृष्ट धान (साहा०, चंवा०-१)। [कनक + जीरा < *कनकजीरक]
कनकिल्ली—(चं०) पालो के दोनों छोरों पर बँटों के कंधे के बाद पालो में छेद करके लगाई हुई लकड़ी या बाँस की कौल (इ० भाग०, पट०-४)। दे०—सैला। [कन + किल्ली < *कण्यकील]
कनकुत्ती—(चं०) बँटवारे के लिए फल का मोटा-मोटी मूल्य-निर्धारण (नै०-२, चंवा०)। दे०—कन। [कन + कुत्ती < *कण्य (संस्क०) + कुत्ती < कृतना (हि० कि०)]
कनकुत्ती बटाई—(चं०) मूल्य-निर्धारण के द्वारा फल का बँटवारा। पर्या०—दानाबन्दी, औकट

(साहा०, इ०-पु०), दमाक, दमकट्टे (साहा०, पट०, गवा)। [कन + कुत्ती + बटाई < *कण्य (संस्क०) + कुत्ती < कृतना (हि० कि०) + बटाई < वण्टन < वयण्ट]
कनकुत्त—(चं०) दे०—कन। [कन + कुत्त < कण्य (संस्क०) + कुत्त < कृतना (हि० कि०)]
कनली—(चं०) ऊल की बड़ से निकलनेवाली धाका, जिससे पोचों को हानि पहुँचती है (इ०-पु० साहा०)। दे०—बोंब। [< *कण्य, कण्यिक, < *कण्य + अञ्च]
कनगोजर—(चं०)—(१) ऊल की भाँक (घोर) से निकलनेवाला अंकुर (इ०-पु० नै०)। दे०—कनोजर। पर्या०—बँलुआ (नै०-२)। [कन + गोजर, कन + गोजर (< *गोजर)] (२) एक पतले बाकार का गोबर जो कई पंरोंवाला छोटा बिपंछा कीड़ा होता है। पर्या०—कनकजूर। [कन + गोजर, मिला०—कण्य खजूर]
कनवडा—(चं०) एक प्रकार का धान, जो छोट कर (बाबल) बोया जाता है (गवा, नै०-२) [देशी]
कनभो—(चं०) बाँस की रज़ा के लिए फालतू पानी को बहाने के किनारे पर का भाका। [देशी, मिला०—कोणभंग, मिला०—कण्य < कं (बल) + क + (बाबल करमंवाला) = मेघ, कण्यरः < कं + परः = मेघः]।
कनरची—(चं०) रुममें के ऊपरी भाग की दो भुजाएँ, जिनके सहारे डंकुर रहती है। [देशी]
कनरा—(चं०)—(पट०-४)। दे०—कानर-१।
कनवाई—(चं०) एक नाम या छटाक का सोछहवाँ भाग। दे०—छाया [< *कण्य (बली)]
कनवह—(चं०) पन से निकलनेवाली छोटी संकीर्ण नावो (पट०, गवा, पट०-४)। दे०—कनवा। पर्या०—कनवोहा (चंवा०)। [< *कण्य + वह, < *कण्यवह, मिला०—कण्य, कण्यर (= मेघ)]
कनवाई—(चं०)—(१) एक आने का सोछहवाँ भाग (पट०-४)। दे०—छाया। (२) पाँच लोके या एक सेर के सोलहवें भाग के बराबर की शौक, छटाक। (चि०) पाँच लोके नाव की वस्तु (किल्ल० री० हरि०)। [< *कण्य + वत् (= वाम)] (३) धान की फस की बृद्धि का रोहनवाली

एक बास (गवा)। पर्या०—काना (नै०, पट०, पु०, चंवा०, नै०-२), कना (उ० पु० नै०), केना (इ० नै०), कनना (पट०-४)। [कण्य]
कनवा—(चं०)—(उ० पु० नै०) दे०—कनवह। [< *कण्यवह, + < *कोण्यवह]
कनवाहा—(चं०)—(चरा०) दे०—कनवह।
कनसन—(चं०) फल को पूर्णतः हानि पहुँचाने वाली एक धातु (सा०)। पर्या०—काँतो (इ० नै०, पट०—गवा, इ० पु०), कल (साहा०, उ० वि०) [देशी]
कनसी—(चं०)—(१) ऊल का अंकुर (इ० नै०)। दे०—बाँस। (२) भूमि पर उगा हुआ पहला अंकुर (इ० नै०)। दे०—हिंभी। (३) पेड़ की टहनी से निकला हुआ नया पत्तल (पट०-४, गवा-५)। दे०—फलक, कभी। [< *कण्यश, < *कण्यश्व]।
कनसुप—(चं०)—चं०-२)। दे०—कोलसुप।
कना—(चं०)—ऊल का एक रोप-विशेष, जिससे ऊल के अन्दर के रेशे लाल हो जाते हैं और उतनी दूर का रस और मिठास कम हो जाती है (गवा-५, पट०-४, नै०, उ० वि०)। [कना > कान < *कण्य]
कनाइल—(चि०)—(१) कीड़ा लगा हुआ (चंवा०-१)। [कन + आइल (हि० प्र०) < *कण्य] (२) कीड़ा लगा हुआ ऊल का पोचा (इ० उ०)। दे०—सीना। पर्या०—रताइल (पट०-४)। [कन + आइल (चि० प्र०) < *कण्य]
कनई—(चं०) दे०—कना। [कना + ई (प्र०) < कान < *कण्य]। कोको—'ऊल कनाई काहे से, स्वाती पानी पाये से'—बाब (= स्वाती का पानी पाने से ऊल काना हो जाता है)।
कनाठ—(चं०) बाँस का बड़ टुकड़ा, जिसके दोनों किनारों पर बाँधी के जोड़े बाँधकर एक जगह से दूसरी जगह टोपे जाते हैं (पु०)। दे०—विहन-डोआ। [देशी, मिला०—स्कन्ध = तन्मन्त्र, शाखा]
कनाठा—(चं०) एक प्रकार का कीड़ा, जो बल-हन, कणम और तन्माकू के पोचों में लबना है (इ० भाग०)। पर्या०—कन्ही (इ० नै०),

खोरी (इ०-पु०), खेड़ी (उ०-पु०, नै०), खीरा (चंवा०)। [देशी, मिला०—स्कन्ध + रथ]
कनाह—(चं०) कीड़े लगा ऊल का पोचा (नै०, चंवा०, इ०-पु०-साहा०, नै०-२)। दे०—सीना। [कना + ह < *कण्य]
कनाहा—(चं०)—(इ० पु०)। दे०—कनाह [< *कण्य]।
कनिक—(चं०) गँह या ओ का मोटा भाटा (चंवा०, नै०-२, भोब०)। दे०—जटा। [< *कण्यिक, < *कण्य]
कनियाएल—(चि०) भोए हुए बीज के अंकुर से पहले-पहल पत्ता निकलना (पट०, गवा)। (चि०) पहले-पहल निकले हुए पत्तोंवाला अंकुर। दे०—गतिवाएल। [कनिया + आएल (चि० प्र०) < *कण्य, < *कण्यश]
कनियाल—(चं०) एक प्रकार का धान। [मिला०—कण्यिकार]
कनिल—(चं०) परती जमीन बोलने के दो बर्ष बाद का सेत (इ० भाग०)। दे०—बील। [मिला०—कण्य = टुकड़ा करने या काटने की प्रक्रिया (नै० वि० हि०)]
कनेटी—(चं०) कूड़ की बिरली से बाँधनेवाली रस्सी (इ०-पु०)। पर्या०—कुँड़ियाठी (पं० उ०), चोरकिल्ली (चंवा०, उ०-पु० नै०)। [कन + एटी, कन < *कण्य; एटी < ऐल (चि०) < *आवेष्टन]
कनेल—(चं०)—(१) बेलगाँवों के गुए में कौली काठ, लोहे या पीतल की बना किन्नी, जो बेल के कंधों की बहकने से रोक्ती है (नै०-१)। [कन + एल < *कण्यकील, मिला०—कयोरी] (२) एक प्रकार का फूल, जो लाग, पीला, सफेद और अन्य रंगों का हो होता है (वर०-१, पूर्ण-१)। [< *कण्यिकार, < *कयोरी] (३)—(वर०-१, पूर्ण-१) दे०—कनल।
कनैल—(चं०) (१) तंबाकू या किसी पीच के ऊपर का भाग काट लेने के बाद उसमें से निकला अंकुर या नई पत्ती (इ० नै०)। दे०—दोनी। (२) गुप व दागो पंदा को जोड़न क लिए बँट के कंध क



बाहर छिद्र में लगाई गई कील (३०-५०, पु०, बर०-१, पुष्पि०-१)। दे०-सईल, कनेल। (३) हल-पासो के दोनों छोरों पर बंधों के कंधे के बाव पासो में छेद कर लगाया जानेवाला लकड़ी या बाँस का टुकड़ा। दे०-सैला। पर्या०-कनेल, कनईल (बर०-१, पुष्पि०-१, बंधा०, ला०)। [८ *कर्णकील, ८ *कौणकील] (४) दे०-सैमल।
कनोजर—(सं०) तंबाकू या किसी धीरे के ऊपर का भाग काट लेने पर उसमें से निकला हुआ अंकुर या नई पत्ती (उ०-५० मं०, मं०-२)। दे०-सोंजी। [कन + ओजर ८ *कण, कांड]
कनगोजर—(सं०)-(१) उस की बाँस (घोर) से निकला हुआ अंकुर (३०-५० मं०)। [कन + गोजर, देशी वा कण, कांड < कंड (ग्रा०) कंडोरा (मध०)] (२) एक प्रकार का बिंबला सरीसृप कीड़ा जिसके बहुत-से पैर होते हैं।
कन्ना—(सं०)-(१) अनाज के खेतों में होनेवाली एक पशु-आल पास (३०-भाग०, मध०)। दे०-कनवा। (२) बाग की फसल की वृद्धि रोकने-वाली एक पास (३०-पु० मं०)। दे०-कनवा। [देशी] (३) खम्भे की एक शाखा (भोक्), जिसमें घिरनी चलती है (मं०-२, पट०-४)। दे०-कानी। [८ *कण ८ *कौण] (४) एक किस्म की पास (पु०-१)। (५) (वि०) बराबर दोते रहनेवाला (पु०-१)। [देशी, मिला०-कण, कणिक]
कनी—(सं०)-(१) गेहूँ या किसी अनाज का पहले-पहल निकला अंकुर (पट०)। दे०-मुहवा। उदा०-‘कनियाएल आये है’=अंकुर फूट रहा है (पट०)। [८ *कण, ८ *कणी, ८ *कणिया] (२) उंकुल के खम्भे के ऊपर की शाखा, जिसपर उंकुल का बस्ता लटकता है। दे०-कान। [८ *कणी, ८ *कौण, ८ *कौणिक] (३) पेड़ की टहनियों से निकला हुआ नया पत्तल (पट०-४, मध०-५)। दे०-कलस।
कन्हैया—(सं०) उस के कोलू के पेट में रहने-वाले जाठ (मोहन) के भूँड़ के ऊपर का कटा हुआ भाग (उ०-५० मं०)। दे०-कान्ह। [८ *कन्य, ८ *कन्य]
कन्है—(सं०) दलहन, कपास और तंबाकू के

पौधों पर लगनेवाला एक कीड़ा (३०-मं०)। दे०-कनाठा। [देशी, मिला०-कण्डि, गन्धिन्]
कन्हैरी—(सं०) वह खेत, जिसमें पानी से जाने में विवक हो। [मिला०-कन्य (३) कीरा]
कन्हैली—(सं०)-(१) उस के कोलू की कतरी और पुए को मिलानेवाला चबड़े का तस्मा (मध०-५)। दे०-नाथा। (२) मवेशियों की पीठ पर की गद्दी के नीचे रखी जानेवाली वस्तु (बर०-१, पुष्पि०-१)। (३) बंधों की पीठ पर की गद्दी। (मं०-३०, मध०-५, ३० मं०)। पर्या०-छल्ला, बखरा (मं० ३०-५०), छल्ला (मं० ३०-५०)। [मिला०-स्कन्य, कन्य, कन्यरा]
कन्हैया—(वि०) सिबाई करनेवाला पुद्ग (३०-५० माहा०)। दे०-पनलगा। [८ *क + धर (=वेष, चलपर)]
कन्हैली—(सं०) बेल के कंधे पर रखी जानेवाली गद्दी (माहा०-१)। [कन्हा + एली (मं०) ८ *स्कन्य]
कपटा—(सं०) एक कीड़ा, जो घान के पौधों में लगता है (बंधा०, मं०-२)। [देशी, मिला०-कर्पर]
कपाई—(सं०)-(१) मवेशियों का पास जाने का मोला (पट०)। (२) पास डोने का एक प्रकार का चाल-बंसा बुना हुआ बड़ा बोरा (३० भाग०)। दे०-बासा। [मिला०-कपर्द, कपर्दिन्=गूँथा हुआ केश]
कपाई—(सं०)-(पट०) दे०-कपाइ।
कपारी फोरल—(मुहा०) कपास या किसी दूसरे बीज के अंकुर में दो पत्तों का निकलना (मं०)। दे०-धींधिया। [कपारी + फोरल ८ *कपाल, ८ *कपाट + फोरल (वि०) ८ *स्फुट (विकसने)]
कपास—(सं०)-(१) रुई का पेड़ (५०)। डि०-वस्तुतः कपास रुई है। कपास प्रायः बंसास में पकती है। इसके कई भेद हैं। (२) फली में पड़ी हुई बिना साफ की हुई रुई (मध०-५)। पर्या०-सॉग (मं०-२), बॉगा (पु० मं०, बंधा०), सॉगी (३० भाग०), कॉच रुआ (३० मं०)। [८ *कर्पास]

कपास फूटल—(मुहा०) कपास का फूटना, फली का छिलना (५०)। पर्या०-बॉगा फूटल (मं०), बॉगी फूटल (३० भाग०), फोटा (३० मं०)। [कपास + फूटल < *कर्पास + *स्फुट < *स्फुट]
कपुरिया—(सं०) एक प्रकार का नींबू, जिससे कपूर-बंसी गंध जाती है (बंधा०, मं०-२)। [कपुर + इया (साबु मं०) < *कपूर]
कपुसार—(सं०) एक प्रकार का अगहनी घान, जो धीरापन लिए उजला होता है और जिसकी बड़ और फुलकी काठी, धूँड़दार तथा बाबल उबला एक महीन होता है (मं०-२)। [८ *कर्पि + शालि]
कपूरनि—(सं०) एक कली-विशेष (बंधा०-१)। [देशी, मिला०-कपूर]
कपूरनी—(सं०) एक प्रकार की लता (बर०-१, पुष्पि०-१)। [देशी, मिला०-कपूर]
कपूरसाह—(सं०) कपूर की तरह गंधवाला बाव (पट०-१)। [कर्प + साह < *कर्पूर]
कपूरी—(सं०) घान का एक उत्तम भेद, जिसका पत्ता बड़ा कोमल होता है। यह कम कड़वा और जाने में स्वाद-युक्त होता है (मं०-२, मध०-५)। [८ *कर्पूर]
कप्पा—(सं०) कई अफीम से बड़ा हुआ रस, जो चिबड़े आदि पर इकट्ठा कर चाड़ा किया जाता है (सा०, ३०-मं०)। दे०-कफा। [कप्पा (=चिबड़ा) < *कर्पट]
कफा—(सं०) दे०-कप्पा। पर्या०-काफा (माहा०), कप्फा (सा०, ३० मं०)। [कप्पा (=चिबड़ा) < *कर्पट]
कज्ज—(सं०) किराया या मालगुजारी देने के प्रमाण में लिखा हुआ पत्र। दे०-रसीव। पर्या०-कामिज (मध०-५)। [८ *कज्ज: (मं०)=अधिकार]
कज्जाना—(सं०) मालगुजारी की रसीव देने के लिए प्रति खपा एक पंसा पटवारी के द्वारा निर्धारित वेध (पु० मं०)। दे०-रसिदाना। [कज्ज (उद्ग.), < *कज्ज: (मं०)]
कवरा—(वि०) दो रथों का बँल आदि मवेशी, जिसकी बायीं देह उजकी और बायीं काठी हो।

(पट०-१, बंधा०, पट०-४, मध०-५)। पर्या०-चिचकवरा (पट०-४, बंधा०, मध०-५)। [कवरा < *कतुर]
कवारया—(सं०) घान के बिहार से बोया उसाड़ने-वाला मनुष्य। (मध०-५) पर्या०-कवरिहा (सा०), मोरकवरा (३०-मं०, मध०-५)। [८ *कवारल (=उसाड़ना-कि०) (बंसी) मिला० *कव गतौ]
कवरिहा—(सं०) बिहार से बोया उसाड़नेवाला मनुष्य (सा०)। दे०-कवरिया। [८ *कवरी] दे०-कवारल (कि०)
कबली—(सं०) उपले वर्ण का बड़े बागोंवाला मटर (मं० ३०, मध०-५) दे०-कबिली। [काकली < कालुली]
कबाइल—(वि०) उसाड़ना, अलगाना, नोंचना (मं०-१, मं०-२, मध०-५) [देशी]
कबारल—(वि०) फसल, पास आदि का उसाड़ना। दे०-कबाइल।
कबारी—(सं०)-(१) कबाड़नेवाला (२) साग-सबजी बेचनेवाली सड़कों की तरह एक जाति (पु०-१, मं०-२, मध०-५)। [देशी]
कबाळा—(सं०) वह दस्तावेज, जिसके द्वारा किसी की जमीन आदि संपत्ति दूसरे के अधिकार में जाती है। दे०-केवाला। कबाळा लिखल। (मुहा०)=कबाळा लिखना। कबाळा लिखावल (मुहा०)=कबाळा लिखाना। [कवाळा (मं०)]
कबली—(सं०)-(१) (मं० ३०) दे०-कबली। पर्या०-कबली (मं० ३०), धेवली (३० पु० मं०)। (२) कने का एक भेद जो बड़ा और उजला होता है (काबली, माहा०-१)। [कालुली]
कचुरी—(सं०) दे०-कंबरी।
कचूखियत—(सं०) वह दस्तावेज, जिसे पट्टा देने-वाला पट्टे की स्वीकृति में छीका देनेवाले या पट्टा लिखनेवाले को लिख देता है। पर्या०-करारनामा (पट०-४, मध०-५, सा०-१)। [कचूखियत (श्री० उद्ग.) < *कचूखियत (मं०) कचूखियत, कचूखियत (मरा०)]

कर्मकोड़ी—(वि०) कामचोर, चोरही। [कर्म + कोड़ी < काम + कोड़ी, काम < कर्म कोड़ी < कुट्टी]
कर्मची—(सं०) बाँस की चोरकर बनाई गई उसकी पतली फट्टी (चपा०-१, मं०-२)।
पर्या०—कमाची—(पट०-४, मय०-५)। [कश्मिका (= बाँस की पतली डाली)। (मो० वि० हि०)]।
कर्मरकला—(सं०) (१) अध्यायी, जिसमें पत्तों का सजुत होता है; चंत में इसमें फूल हो जाता है (मं०-१)। दे०—कर्मरकला। (२) सोसारी की एक अच्छी उपजाति (मय०-५)



कर्मरकला

[कर्म + रकला < कर्म + रकल]

कर्मरख—(सं०) एक प्रकार का फल। इसका दूध मधुमाकार होता है, पत्ती एक-डेढ़ अंगुल चौड़ी और दस अंगुल लम्बी होती है, जेट-आयाद में फलता-फलता है, पका फल लट्टा भीड़ा होता है, फल की अचार-पटनी बनती है। यह दवा के काम में भी जाता है। कच्चे का रंग भी बनता है (हर०-१, पूणि०-१, पट०-१, मं०-२, पट०-४, मय०-५)। [< *कर्मरख (संस्कृत) < मर्मरख (शा०) कर्मरक]

कर्मरखोलाई—(सं०) पुलिस अधिकारियों, मैजिस्ट्रेटों के अर्शियों या पुलिस कास्टेबुलों द्वारा प्राप्त में प्रवेश करने या सिविल डालने पर माँगा गया गुरुकार। दे०—सलाही। [कर्म + खोलाई]

कर्मरसावर—(सं०) (१) लोहार के काम करने का निविष्ट स्थान। पर्या०—लोहारारी (सा०, चपा०, पट०-४, मय०-५) कर्मसारी, मरद (ब० भाग०) कर्मरसाल (सा०-१)। (२) बड़े के काम करने की जगह। पर्या०—कर्मरसार (मं०-१, भाग०-१)। [कर्म + सार < कर्म + शाल, कर्म + शाल]

कर्मरसार—(सं०) कमाई या बड़ियों का छद्म या घर (मं०-१)। [कर्म + सार < *कर्मरसाल < कर्मरशाल]

कर्मरसारी—(सं०) दे०—कर्मरसार। [कर्म + सार + ई < कर्म + शाल, कर्मशाल]

कर्मरसाल—(सं०) लोहारों के काम करने का स्थान, कर्मशाला (सा०-१)। [कर्म + साल < *कर्मशाल, < *मर्मरशाल]

कर्मरिया—(सं०) मजदूर। पर्या०—जन (मं०, ब०-पू० मं०, चपा०, मं०-२, बनिहार, कमियाँ (पट०, मया, ब० मं०, चपा०), चाकर (= वैतनिक भोकर) (मं०), बड़िया, चरवाह (प्रवैतनिक भोकर), रोजहा = रोम की मजदूरी पर काम करनेवाला। हाकिमकुमिन—बहु मजदूर, जिससे बिना मजदूरी दिये बलात् काम कराया जाता है। बेगार (मया)। [< *कर्मर, < *कर्मरि]

कर्मरी—(सं०) (१) कटहल के फल का छिलका (साहा०-१, मं०-२, पट०-४, मय०-५, लवंत)। [कर्मर + ई (साबु० मं०), < *कर्मर] (२) वह बैल, जिसकी कर्मर झुकी हो (पट०-१, चपा०, पट०-४, मय०-५), कर्मर + ई < कर्मर (का०); मिला०—कर्म (संस्कृत) = मर्म]

कर्मल—(सं०) एक प्रसिद्ध फूल। यह पानी में होता है तथा करीब-करीब संसार के सभी भागों में पाया जाता है। यह अधिकतर लाल, सफेद और नीले रंग का होता है। कहीं-कहीं पीले रंग का भी होता है। इसका पत्ता गोल-गोल बड़ी घाली के आकार का होता है, जिसे 'पुश्प' कहते हैं (हर०-१, पूणि०, मं०-२, चपा०, पट०-४, मय०-५, मय्यथ भी)। [संस्कृत]



कर्मल

कर्मलगटा—(सं०) कर्मल के फूल का बीज (पट०-४, मय०-५, चपा०, सार०, मय्यथ भी)। [कर्मल + गटा, गटा < गट्टा, < ग्रन्थ (संस्कृत) गट्टा, गा०-१, पुच्छा, गट्टमा (शा०) गट्टा (हि०)]

कर्मलगटा—(सं०) कर्मल के फूल का बीज (पट०-१)। [कर्मल + गटा, गटा (हि०)]

कर्मला परसाद—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का वान (मया)। [कर्मला + परसाद < *कर्मला + प्रसाद (?)]

कर्मसरे—(सं०) जैसी धोनी के काष्ठकारों के लिए भूमि-कर से मुक्ति (मं०-१)। दे०—माफी।

पर्या०—जावीर (पट०-४, चपा०, मय०-५)। [देखो]

कमाइल—(वि०) (१) काम करना, (२) जोतना-कोटना आदि कृषि-कार्य करना, (३) कच्चे बमड़े को सिट्ट करना, (४) किसी खेत की जोत-कोड़ कर तैयार करना (चपा०-१, मं०-२)। (वि०) कमाई हुई मिट्टी, खेत, जमड़ा, आदि। पर्या०—कमायल (भोब०, भाज०)। [कमाइल कर्मन्] कमाई—(सं०) (१) किसी तरह के काम करने के बदले बड़ई, चमार आदि की दी जानेवाली मजदूरी। (२) नये कोसू बनाने के बदले बड़ई की दी जानेवाली मजदूरी (ब०-पू० मं०)। दे०—जान, यौवर। (वि०) कमाया हुआ, अर्जित। (३) कृषि-साधनों की मरम्मत करने आदि के बदले मिलनेवाली मजदूरी (साहा०, पू० मं०, पट०-४)। दे०—कटा। (४) जगाऊ मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (मं०, पट०-४)। दे०—जपवाड़। [< *कर्मन्]

कमाउन—(सं०) दे०—कर्मनी।

कमाची—(सं०) दे०—कर्मची।

कमायल—(वि०) दे०—कमाइल।

कमार—(सं०) (१) लोहार-लकड़ी का काम करनेवाली एक जाति। दे०—लुहार। (२) लकड़ी का काम करनेवाली एक जाति। दे०—बड़ई। [< *कर्मर]

कमाबट—(सं०) खुरी से आर-पात निकालने की प्रक्रिया (हर०-१, पूणि०-१)। पर्या०—सोहनी (चपा०), निकौनी (पट०-४, मं०-२, मय०-५)। [काम < *कर्मन्]

कमावल—(वि०) दे०—कमाइल।

कमासुत—(वि०) (१) काम करनेवाला, (२) अधिक परिश्रम से काम करनेवाला (चपा०-१, पट०-४, मय०-५, मं०-२)। [कमा + सुत < कमाना (हि०) क्मा + सुत]

कमिआई—(सं०) हलवाहे को नियुक्त करते समय रुपये, अन्न या जमीन के रूप में दी जानेवाली अधिम मजदूरी (पट०, पट०-४, मय०-५)। [कमाइल (वि०) < *कर्मन्]

कमिआई—(सं०) अधिम मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (पट०, मया, ब० मं०, पट०-४,

मय०-५)। दे०—अगबड़। पर्या०—कमियाँ [कमाइल (वि०) < *कर्मन्]

कमियाँ—(सं०) (१) अधिम मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (पट०, मया, ब०-मं०)। दे०—अगबड़। (२) वह परंपरागत नौकर या दास, जो अपने जर्मींदार स्वामी की इच्छा के बिना न तो उस परिवार को छोड़ सकता है, या विवाह कर सकता है और नहीं कोई दूसरा काम कर सकता है (मया०, पट०, ब० मं०, पट०-४, मय०-५) दे०—नकर। [< *कर्मन्] कमिचौटी—(सं०) (१) मजदूर की दी जानेवाली अधिम मजदूरी (मया)। (२) हलवाहे को नियुक्त करते समय रुपये, अन्न या जमीन के रूप में दी जानेवाली अधिम मजदूरी। (मया, पट०-४, मय०-५)। दे०—हरबर। [< *कर्मन्]

कमी—(सं०) जैसी धोनी के काष्ठकारों को मिलनेवाली भूमि कर की छूट (पट०) दे०—माफी। [फा०]

कमीना—(सं०) (१) अधिक मेहनत से काम करनेवाला। (२) छोटी जाति के काष्ठकार (साहा०)। दे०—राज जाति। (वि०) (३) बदमाश, बुरे आचरण का व्यक्ति। [< *कमीन (फा०)]

कमीनी—(सं०) मजदूरी। [< *कमाइल (वि०) < *कर्मन्]

कमुआ—(सं०) एक प्रकार का बिकना कीड़ा, जो पीधों में लगता है (पट०)। दे०—कम्मा। [देखो]

कमेड़ा—(वि०) काफी काम करनेवाला मनुष्य (चपा०-१)। [< *कर्मठ < *कर्मन्]

कर्मनी—(सं०) (१) छिछली कीड़ाई; खुरी, कुदाल आदि से हलके-हलके कीड़ना (चपा०, मं०, मं०-२, मय०-५)। दे०—खुरियाणा। (२) छिछली कीड़ाई करके अनाज के खेत की यास आदि की सफाई (मं० उ०)। दे०—लोहनी। पर्या०—कमाउन (हर०-१, पूणि०-१), कमीन (हर०-१)। [कमाइल (वि०) < *कर्मन्] (२) कृषि, साधनों की मरम्मत आदि करने के बदले बड़ई को मिलनेवाली मजदूरी (ब० मं०, चपा०)। दे०—कन। [कमाना (हि०) क्मा], कमाविल (बिहा०) < *कर्मन्]।

कर्मोच—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का काला घान (उ० प०) । [संम०—कर्मोच < *कुमुद]

कर्मोदी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्तम सुगन्धित घान । [संम०—कर्मोच < *कुमुद]

कर्मोदा—(सं०) कोहू की कतरी और मोहन के खंभे के ऊपर की ओर घुमनेवाले टेंडे भाग से लगा हुआ बाँस या लकड़ी का टुकड़ा । दे०—कर्मोदाई । [देखी]

कर्मौनी—(सं०)—(१) गुरपी या कुशल आदि से की जानेवाली हल्की-हल्की कोड़ाई । छिछली कोड़ाई (इ० भाग०) । दे०—गुरपियाणा । (२) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेत से की जानेवाली घास आदि की लकड़ी (इ० भाग०, इ० भू०) । दे०—तोहनी । [कमाना (हि०), कमावल (बिहा०) < *कर्मन्]

कम्पा—(सं०) एक प्रकार का चिकना कीड़ा, जो पौधों में लगता है । पर्या०—कमुआ (पट०) । [देखी]

कपरवा—(सं०) केले की तरह का लंबा-लंबा आम (पट०-१, पट०-४, मग०-५) पर्या०—सुगवा, केलावा (पट०-४), केरवा (मग०-५), केरवा (मै०-२, बंवा०), केरवा (बंवा०) । [कपर+वा(प्र०) < कपरा < कपल < *कदल < *कदली]

कपरा—(सं०) केला । केले का बीजा, (पट०-१) पर्या०—केरा (पट०-४, मग०-५, मै०-२, बंवा०, मग०) । [कपरा < कपल < *कदल]

कपरा के कंद—(सं०) केले की जड़ (पट०-१) । [कपरा+के+कंद]

करंगा—(सं०) काले दानोंवाला एक प्रकार का घान (इ० प० शाहा०, सा०) । पर्या०—करंगी, करका (बंवा०, मै०-२) । [मिला०—करकु = एक प्रकार की ईख (मो० वि० हि०), कडंगर—भूसा, डंडल]

करंगी—(सं०) (इ०-प० शाहा०, सा०) । दे०—करंगा ।

कर—(सं०)—(१) मूज का वह भाग, जिससे रस्सियाँ बाँटी जाती हैं (बंवा०-१) ।

(२) मासमारी, जैसे—जलकर, फलकर आदि (बंवा०-१) । (३) पावने करवट (बंवा०-१) । [< *कर]

करइला—(सं०) एक प्रकार की सता और उसमें उत्पन्न होनेवाली तरकारी । (पट०-१, पट०-४, मग०-५, बंवा०, मग०) । [< *करवेल्ल]



करइली—(सं०) छोटा करेला (पट०-१, पट०-४, मग०-५) । [करइल+ई (म०) < *करवेल्ल]

करकंधा—(सं०) वह भाग या बँल, जिसके कंधे पर एक काला चन्ना होता है । पर्या०—करिकंधा (शाहा०) । करकंधा (मग०) । [कर+कंधा, कर < कल; कंधा < स्कंध, कालस्कंध, चन्ना—कालकंड]

करकजाँची—(सं०) बँलों का एक रोग । इसमें चलते-चलते बँल के पैर एँठ जाते हैं (सा०-१, बंवा०, मै०-२) । पर्या०—करजौंफिल (पट०-४, मग०-५) [करक+जौंफी, < कलकल (बिहा०), कलकना (हि०) + जौंफी]

करकट—(सं०) इन्हें समय पर चलावेवाली गाय या भैंस । पर्या०—जबराहु (मै०) । [मिला०—करकटि=एक प्रकार का नाग, हाथ की एक विशेष मुद्रा]

करका—(सं०) काली मिट्टी । (बि०) काला [कर+का (प्र०) < *काल+कमिला काल (मग०)]

करकी मौँटि—(सं०) काली मिट्टी (बर०-१) । [करकी+मौँटि < *कालक+मृत्तिका]

करकुट—(सं०) कई की गंधरी । [मिला०—करके]

करला—(सं०) दे०—करिया । [< *कालक]

करली—(सं०)—(शाहा०) । दे०—करिया । [< *कालक]

करका—(सं०)—(बंवा०, मै०-२), दे०—करंगा ।

करज—(सं०)—(१) निश्चित अवधि के लिए वारा करके किसी से द्रव्य लेने की प्रक्रिया । दे०—करजा । (२) उधार । [करज (म०)]

करजखस—(बि०)—(शाहा०), दे०—करब-खस । [करज+खस]

करजखोर—(बि०) कर्ब लेकर निर्वाह करने-वाला (पट०, पट०-४, मग०-५, मै०-२, बंवा०, मग०-१) । दे०—रिनिहा, करजकोश । [करज+खोर < कर्ज (म०) + खर (का०)]

करजखौक—(बि०) कर्ब लेकर जीवन-निर्वाह करनेवाला (पट०, मै०-२, पट०-४, बंवा०, मग०-५) । दे०—रिनिहा । [करज+खौक, खौल < खाना (हि०), खायल (बिहा०)]

करजवाम—(सं०) दे०—करवा । [करज+वाम = कर्ज; दोनों एक ही जगह के वाचक हैं]

करजौंफिल—(सं०)—(पट०-४, मग०-५) । दे०—करकाजी ।

करजा—(सं०)—(१) पशु करीदने या कुर्मी आदि बनाने के लिए ही जानेवाली अधिम इन्धराधि, खूब । पर्या०—सगाबी । (२) निश्चित अवधि के लिए द्रव्य पर उधार लिया जानेवाला द्रव्य । पर्या०—करज (म०-इ०), करजवाम, पैसा । [< *कर्ज—(म०)]

करती मूरी—(सं०) इन्हें के समय बहुमान के निमित्त मृतपत्नी या या भैंस के सामने रखी गई घास या मूँसे से बरी बछड़े या पाड़े की बाल (बया) दे०—सगावन । [करतो+मूरी; मूरी < मूँड < *मूँड; करतो < *कृत वा *कृत् (?)]

करदुस्म—(सं०) वह बँल, जिसकी देह उजली और पूँछ काली हो (पट०-१, पट०-४, मग०-५) । [करदु+दुस्म < कर (बिहा०)+दुस्म (का०)]

करवीर—(सं०) एक प्रकार का पीला फूल, जिसकी पत्तियाँ लंबी होती हैं और पोवा मूँछ से ही खायावाली साड़ी की तरह होता है (बर०-१, पुर्वि०-१) [< *करवीर]

करमकुल्ला—(सं०) पत्तियों से बरी हुई गोभी या पत्ती-साध की जाति की एक तरकारी (पट०-४, मग०-५, मै०-२) । पर्या०—कंधाकंधो । [करम+कुल्ला < करम (म०) + कुल्ला (हि०)]

करमी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लंबा काला घान । यह नीची जमीन में रोपा जाता है । (बंवा०, मै०-२) । [मिला०—कलम, कलंज]

करमिया—(सं०) एक प्रकार का उजला शकर-कंद । दे०—देसी । [मिला०—कलम्बी]

करमी—(सं०) जल या दलदल में होनेवाली एक लता, जिसके फूल छोटे एवं उजले-बैंगनी रंग के होते हैं, इसका साग होता है तथा यह पशु-खाद्य भी है (इ० भाग०, पट०-४, मग०-५, मै०-२) । पर्या०—करमीलत, करेम, (इ०-प० शाहा०), कर्मी (बर०-१) । [< *कलम्ब, < *कलम्बी]

करमीलत—(सं०) दे०—करमी । [करमी+लत < कलम्बीलता]

करमोआ—(सं०) वह वस्तु, जो पूरी भीगी न हो (जासकर बल) —(बंवा०-१, पट०-४, मग०-५) । [कर+मोआ, मोआ < मोखल (बिहा०) = (मिगोनासंभ० < *मिह (बौध्वा) वा < *म्व (= बंधन) (?)]

करहया—(सं०) छोटे पत्तों वाला मीठा घान (प०, मै०-२) । [कटु (३)]

करल—(बि०) करना, काम करना । मुहा०—

खेती करल = खेती करना ।

करधानी—(सं०) दे०—कड़वानी ।

करसी—(सं०)—(१) गोबर के स्वतः सूखे हुए टुकड़े, जिसका प्रयोग होता है (मै०-२, बंवा० पट०-४ मग०-५, मग०) । पर्या०—घमारी (म० भू०, मग०, गवा; मग०-५, पट०-४) । (२) (पू०) । दे०—काधर । (३) गदह की कोष्ठ (सा०-१) । [< *करीष]

करहली—(सं०)—(१) छोट कर बोदे जानेवाले लसगोविया घान का एक प्रधान भेद, जिसकी बाल काली होती हैं (पट०, पट०-४, मग०-५) । दे०—कलगोविया । (२) छोट कर बोया (बाववा) जानेवाला काली बालों-वाला लसगुट घान (इ० भू०, गवा) । (३) छोटे काले दानोंवाले घान का एक प्रकार (इ०-प० शाहा०, सा०) । [कर+हली < *काल+धान्य]

करहली घान—(सं०) एक प्रकार का घान, जो पतला, काला और महीन होता है (पट०-१) ।

[कर+हली+धान < कर*काल+धान्य]

करहा—(१)—(सं०) बड़े बलशाली या पंग से

जैसे तक जानेवाले जल-प्रवाह का मार्ग या नाली (पट०, शा०, बाहा०)। दे०—पैन। (२) पैन से निकलनेवाली नाली। [$< *कृषू = स्तर, गड्ढा (गड्ढा), ताल, आग। 'कृषू' : पुमान् कृषीयानां स्त्रिया कुरुषेष्टिस्तयोः। (मेदि०)] (३) सींचन के निमित्त बनी हुई नाली का गहरा आंतरिक भाग (प०, पट०, गया)। दे०—आरा। (४) नाली के किनारे को घेरनेवाली उड़ी हुई मेड़ (शाहा०, पट०, गया)। दे०—मेड़ [$< *कृषू = नदी, नहर, ताल]$ (५) कोहू के सामने बना हुआ लोहे का परनाला जिसमें होकर ऊँच का रम नीचे के बरतन में गिरता है। (ब० भाग०, पट०-४, मग०-५)। दे०—नाली।$

कराई, कराई—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो छोटी रंग का छोटा और बीच में उबलने वाली पतली रेखा लिये होता है। इसकी पकी दाल चिकनी होती है (पु० मं०)। दे०—उरिद। [$< *कलाय (संस्क०) = मटर, कलाय = (बं०) = उड़द]$ टि०—पूर्वी में पकी अवस्था २० भाग० और २० मं० में उड़द को 'कराई' वा 'कराई' कहते हैं तथा बंगला में भी 'कलाय' ही कहते हैं, किंतु संस्कृत में 'कलाय' का बर्ण मटर होता है।

कराम—(सं०) वह बड़ी मोटी और गंध प्रकाश की बनी रस्सी, जिसमें दोनों करने के लिए बेल बांधे जाते हैं (पु० मं०)। दे०—मसा। पर्या०—कड़म (बर०-१, पूजि०-१, मं०-२) कड़वि (बं०)। [देशी]

करार—(सं०)-(१) एक पशु-लाघ घास (शाहा०, ब० मं०)। [मिला०—कराला = अनंत मूल, सारिवा] (२) काफी मजबूत जमीन, जिसमें ८५ प्रतिशत मिट्टी रहती है (पट०-४, मग०-५, मं०-२)। दे०—केवाल [मिला०—आसर (संस्क०) = केवाल मिट्टी, आल = कड़ा]

करारा—(सं०) मदी का लड़ा ऊँचा किनारा। पर्या०—अररा, अरार, अरारि, कड़ाड़, कड़ाड़ा, दाह (उ०) कंगनिया (उ०-पु० मं०)। [$< *कराल = ऊँचा। कट (काटवा हि०) + आर = (संस्क०) किनारा]$ —(हि० मं० ला०)]

करावल—(हि०) करल किया का प्रे०। कराना, काम कराना।

कराह—(सं०) ऊँच के रस को उबालने का बरतन (सं०)। पर्या०—कड़ाह, कराहा। (२) नमक बनाने अवस्था नील आदि के रस उबालने के लिए प्रयुक्त लोहे का बड़ा बर्तन। पर्या०—कड़ाह, कराहा, कराही। [$< *कराह$]

कराह के घर—(सं०) चीनी बनाने का घर। दे०—चूल्हा के घर।

कराह घर—(सं०) नील उबालने का घर। [कराह + घर $< *कराहमूह$]

कराहा—(सं०)। दे०—कराह। [$< *कराह$]

कराही—(सं०)-(१) (पट०-४, मग०-५, मं०-२, बं०, भाग०) [कराह + हि०] (२) दे०—कराह (बं० भाग०) $< *कराह$ ।

करिगवाह—(सं०) करीन चलानेवाला (पु०, पट०-४, मग०-५)। दे०—करीन, रोनावह। [करिग + वाह; मिला०—कलिज (बेगो) = छोटी सड़की, कलिज = बाल का एक पात्र-विशेष कलिवो बंस कम्पो, (बा० सं० मं०); कलिज्जो = एक पात्र-विशेष—(नो० वि० हि०)]

करिअंवा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक मंद, बर०, पूजि०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२)। [करि + अंवा $< करि < करि < *काल; अंवा < *आम$]

करिआकामोद—(सं०) एक जगहनी लड़ा काला घान, जिसके घाने महीन और पावल लफंद तथा सुगंध-युक्त होते हैं (सा०-१)। [करिया + कामोद; करिया $< *कालक$]

करिकंधा—(बि०)—(शाहा०)। दे०—करकंधा। [करि + कंधा $< *काल + मन्त्र, कालक ध्वज$]

करिखा—(सं०) कालिका। करिखाइ हाँकी करिखाइ हँदिया = दुष्ट भाँकों से फल को बचने के लिए संत में रखी जानेवाली हंडी। पर्या०—करखा, करखी (शाहा०), कारिख (पवा), करखी (ब० भाग०)। [करिखा (बेगो), कालिख (हि०) कालिका (संस्क०)]

करिखाह—(सं०) दे०—करिगवाह।

करिनवाह—(सं०)-(पु०, पट०-४, बं०, मग०-५)।

करियवा—(बि०)-(१) काले वर्ण का गवु। दे०—कारी। (२) काले रस का आम। [करिय + वा (बि० प्र०) वा $< वान् < मान् < मत्स्य$, वा $< वयस्$; करिय $< कारी < काली$]

करिया—(बि०) दे०—कारी। [करिया $< कारी < काली$]

करिया, कारी—(सं०) काली उड़द (शाहा०, ब० पु० मं०)। दे०—उगा। [करिया $< कारी < काली$]

करिलव—(सं०) एक प्रकार की लता (बर०-१)। [देशी]

करिंग, करीन—(सं०) लकड़ी टिन या लोह की बनी हुई एक मलिका जो बीच में गहरी ऊपर खुली हुई तथा लंबी होती है और जिससे सिवाई का काम होता है। इसकी लंबाई सात से लेकर नौ हाथ तक तथा चौड़ाई करीब एक फुट होती है (पु०, बं०, उ०, विहा०, मग०-५, पट०-४, मं०-२, ब० मं०-१)। दे०—वीन।

करीनवाह—करीन चलानेवाला। [मिला०—कलिज (बेगो) = छोटी लकड़ी, कलिज = बाल का पात्र विशेष "कलिवो वंशकपर्सि" (बा० सं० मं०), कलिज्जो (संस्कृत) = एक पात्र विशेष (नो० वि० हि०)]

करीक—(सं०) दे०—करीन।

करीन, करिंग—(सं०) - (पु०, बर०-१)। दे०—करीन।

करीगवाह—करीन चलानेवाला।

करुआहीनी—(सं०)-(१)—एक प्रकार का कीड़ा (बं०-१)। [बेगो, मिला०—कटुकोट, एक प्रकार का मच्छर (नो० वि० हि०)] (२) एक प्रकार का प्रविद्ध जल जिसकी दातून अच्छी घानी जाती है, कभी लोही होती है और मगर बाढ़ से बचाने के लिए बंधों के गले में तानीज की तरह पहनाई जाती है। [$< *करंज (संस्क०), करंज, करंजवा, कलंगी डिठैरी (हि०), टहर करंज (बं०), करंजवा (मरा०), करुआही (पु०), करंज (बे०), पंग (सं०) पंगस (मल०)]$

करुआ—(बि०)-(ब० भाग०)। दे०—कारी। [कर + उआ (बि० प्र०) $< काल, कालक$]

करुआ तेलिया—(सं०) वह बेल, जिसकी पूँछ काली और अन्य अंग दूसरे किसी रंग के हों (पट०-१, मग०-५, पट०-४) [करुआ + तेलिया]

करुआर—(सं०) फाल की गिरते से बचाने के लिए हल में टोका गया टंडा पतला लोहा। (बं०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२)।

पर्या० करुआरा (प०) करुआरी (पट०, बं०, प० (मं०), लूरा (ब०-५, शाहा०), करुआर जोक (पट०), जोकी, बोमी (ब०-पु० मं०), गौसी (उ०-पु० मं०), करुआर (भाग०)। [बेगो], मिला०—कटुकोट (= तराजू के उड़े के दोनों ओर की मुड़ी किनारी, मुड़े हुए हाथ की मुद्रा, करुआर (हि०, बेगो)]

करुआरा—(सं०)—(प०)। दे०—करुआर। करुआरी—(सं०)—(पट०, बं०, प०-मं०)। दे०—करुआर।

करुना—(सं०) एक प्रकार का बड़ा कल, जिससे बटनी, अचार आदि बनाये जाते हैं (बर०-१)। दे०—करीना। [$< *करमर्द$]

करुवा—(सं०) वह बेल, जिसके पुरटे, गईन और पूँछ चमकदार हों (पट०-१)। [करु + वा (प्र०) $< काल < *काल$]

करेयवा सीम—(सं०) तरकारी के काम में जाने-वाली मटर की छोटी की तरह फलनेवाली सेम (पट०-१)। [करेयवा + सीम, करेय + वा (प्र०), करिय + वा $< कारिय + वा < कालिक$; सीम $< शिम्य$]

करैल—(सं०)-(बर०-१, पूजि०-१)। दे०—करैला। करैल—(सं०)-(१) (उ० पु० मं०)। दे०—करैला [$< *करावेल्$] (२) कुछ नीलो-काली मिट्टी (प०)। [मिला०—कासास = केवाल मिट्टी; कराल (=) कड़ा, ऊँचा]

करैला—(सं०) लता में होनेवाली एक प्रकार की कड़वी तरकारी। इस लता की पत्तियाँ पाँच



कारीग



करुआर

नूकीली काँकों में कटी होती है, इसमें लंबे-लंबे आकार के फल लगते हैं। छिलके पर लंबे-लंबे छोटे-बड़े दाने उभरे रहते हैं। यह दो प्रकार का होता है। एक बैसासी, जो फाल्गुन में ग्यासी में रोपा जाता है और जून में फलकर फलता है। इसका फल कुछ पीसा होता है। दूसरा बरसाती, जो बरसात में रोपा जाता है और माघ पर चढ़ता है। सालों-बर फलता-फूलता है। कहीं-कहीं जंगली करेला भी मिलता है, जो छोटा तथा ज्यादा कड़वा होता है। पर्या०—करैलो (साहा०, ४० भाग०), करैल (उ०-५० नं०, ४००-१, पू०-१०१)। करैल (४००-१, पू०-१०१)। [< *कर-वेल्ल, (संस्क०), कारवल्ल (प्रा०), करैला (हि० वं०) करैलो (सं०), करला (सं०), कलरा (प्रा०), करेली (गु०, बरा०) करेली (सं०), करिल्ल (सिंहा०), करैल (कन्न०)]

करैली—(सं०)—(साहा०, ४० भाग०, ४००-४, ४००-५)। दे०—करैला। [< *करैल्ल]

करौंदा—(सं०) दे०—करौदा।

करौना—(सं०) करौवा, एक प्रकार का फल, जो छोटा, चिकना और स्वाद में कड़ा होता है। यह एक कंटोली भागी में होता है (बं०-१, ४००-१)। पर्या०—करौंदा, करौंदा—(सं०-४)। कवता—(बर०-१)। [करमद (संस्क०), करमद (प्रा०), करवँदा, करौंदा, करौंदा, करौना (हि०) करमदा, करमिया (सं०), करवँद (बरा०), करमदा, करमद (गु०), करिजो (सं०), करवँदे, वाफा (सं०), करवँदा (बरा०)]

कलंक लेंबू (सं०) एक प्रकार का बीज जो कुछ लंबा होता है (बर०-१) [कलंक+लेंबू < कलंज (= शाक माल) + लेंबू]

कल—(सं०)—(१) वह द्रव्य जिसमें ऊल पेरा जाता है। मिल। दे०—कोल्ह। (२) मशीन, (३) शक्ति, आराम। [कला (संस्क०) = अंग, दुरा, बिजा, कला (प्रा०-प्रा०), कल (हि०), कल (नं०, काश्मी०, सं०), कल (प्रा०, सं०, सं०) कलम् = स्वस्थ, कुशल]

कलउ—(सं०) बागहर का भोजन (बं०-१)।

पर्या०—कलउआ (बं०-५, भाग०-१) [कल + उ < कलेउ < कलेवा < *कल्यवर्त्त]

कलउआ—(सं०)—(बं०-५, भाग०-१)। दे०—कलउ।

कलटरी—(सं०) दूध पर निर्धारित राजकीय कर (बर०, गवा, बर०-४, भाग०-५) दे०—मालगुशरी। [कलटर + ई (बं०) < *कौलेवट (सं०)]

कलम—(सं०)—(१) रोपने के लिए प्रयुक्त पान के नये-नये बीज के पीपे (बर०, गवा, साहा०)। पर्या०—बेल (बं०-५)। (२) आम जववा किसी दूसरे पीपे का दूसरे के साथ मिलाकर पैदा किया गया उत्कृष्ट पीप। पर्या०—कलसी। (३) लेखनी। [< *कलम]

कलम, कलमी—(सं०) गोल आदि की दूसरी या तीसरी फसल, जो दूसरे बप में उत्पन्न होती है। [< *कलम]

कलमकाठी—(सं०) मोटे और लंबे अवहनी धान का एक किस्म। इसका बावल सफेद होता है। (बं०-१, बर०-४, भाग०-५)। पर्या०—सिर-हटी। (बर०-४)। [कलम + काठी]

कलमदान—(सं०) उबले रंग का एक उत्कृष्ट धान (बर०-१)। [कलम + दान < *कलम + दान्य]

कलमबाग—(सं०) कलमी धानों का बगीचा।

कलमी, कलम—(सं०)। दे०—कलम।

कलमी आम—(सं०) गुण और आकार के अनुसार आमों की एक मुख्य जाति, जिसमें मालदह, बंबदया, फजली आदि अंग होते हैं। यह आम के दो पीपों के योग से होता है। (बर०-१, पू०-१, बं०-१, भाग०-१, बर०-४, भाग०-५, भाग०-५)। [कलमी + आम; कलमी < कलम; आम < आम्र]

कलमी साग—(सं०) एक प्रकार का पत्तियों वाला माद, जिसके ऊपर का भाग तोड़कर भाजी बनाई जाती है और वह पोवा बड़न जाता है। [कलमी + साग]

कलस—(सं०)—(१) पेड़ की टहनी से निकला हुआ नया पल्लव (बं०-१) पर्या०—फुडगी, कमी, कलसी (बर०-४, भाग०-५)। [मिला०—कन्दल = नया अंकुर]। (२) पाने रखने

अथवा निचालने के लिए पीतल, लोहा, मिट्टी आदि का बना बरतन। पर्या०—कलसा, कलसी। (३) गन्ना, पूजा आदि पर प्रयुक्त कलश, जिसकी गर्भों से प्रतिष्ठा करके उरी पर देवताओं की पूजा होती है। [कलस (संस्क०), कलस (प्रा०, प्रा०) कलस, कलसा (हि०, बं०), कलस (बरा०), कलहोटा (सं०), कलसियो (गु०) कलसा (बरा०)]

कलसी—(सं०) दे०—कलस—२।

कलसी—(सं०) दे०—कलस—२।

कलसी—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो रलेटी रंग का छोटा और बीच में उबली सी पतली रेखा दिखे होता है, इसकी पकी हुई दाल चिकनी होती है (पू०-१०१)। दे०—उरिब। पर्या०—कलाय (बर०-१)। [< *कलाय (संस्क०) = मटर, कलाय (सं०) = उड़द]

कलापल—(सं०) फल की बाल का बूझ होना (बं०-५०)। दे०—हलसाए। पर्या०—कलसा-पल (बर०-४, बं०-५, भाग०-५)। [कलप (सं०), कला (हि०)]

कलेउ—(सं०) दे०—कलवा। [< *कल्यवर्त्त]

कलेदा—(सं०) मध्याह्न का भोजन। पर्या०—दलैऊ, कलौ (सं०), खाय (बर०), खैया (गवा), खाईक (बं० सं०), कलौआ (बं० भाग०)। टि०—'कलउ', 'कलउआ', 'कलेऊ', 'कलौ', 'कलेवा' और 'कलौआ' शब्द 'कल्य' से संबद्ध हैं, जिसका अर्थ है—प्रातः कालीन भोजन, अन्ध-प्रकाश अथवा प्रातः काल। [< *कल्यवर्त्त = प्रातः कालीन भोजन]

कलोरे—(सं०)—(१) अत्यंत बड़ा बाछा (प्रा०, प्रा०)। (२) बहुत-बहुल आलसप्रसन्न गार (साहा०-१, १० बं०-१)। दे०—बोसर। [< *कलोर]

कलौजी—(सं०) एक सफेद अवहनी धान, जिसका रंग और बावल का रंग सादा होता है (बं०-५, भाग०-५)। [कलौजी (सं०) = बं० भाग०, बं०-१)। दे०—कलेवा। [< *कल्यवर्त्त]

कलुआ सेम—(सं०)—(उ० बिहा०)। दे०—कलुआ।

कवाछ—(सं०)—(१) सेम की जाति की एक कड़ी। पर्या०—कैवाछ, भूपडेम (गवा), कट्टुआ सेम (उ० बिहा०), कवाँछ (बं०-५)। (२) एक प्रकार का बंगली पीप। इसमें फल लगता है। इस फल के रस के शरीर में स्पर्श करने से जोरों की खजलाहट शुरू होती है तथा उस स्थान पर खजलाकर उस जगह से शरीर के द्वारा अंग को स्पर्श करने पर वहाँ की खजलाहट मालूम होने लगती है। [कपिकच्छ (संस्क०); कवाछ, कवाच, कौच, कौच, कौच, कैवाच, कवाच, कवाच (हि०), आलकुशी, आलानुशी, शूशिवी (सं०), कुहिली, राज कुहिली, कुहिलिये बीज, कपास कुहिली, काच कुहिली, कवाच (बरा०), नमु कुशा, नमुकुशी (सं०); चुलगाड़ी पल्ली अड्डा, डलगाड़ी (सं०); कवाच, कौच, कौच, कनुच (गु०); पुनाइक वाती, पुनाइक (ता०); कौच, कौच (सं०), जुनी (सं०)]

कवाछु—(सं०)—(साहा०-१)। दे०—कवाच। [< *कपिकच्छ]

कवाछल—(सं०) रंग होता (बं०-५)।

कसइलिया—(सं०) कलमी की तरह छोटा-छोटा फलवाला आम (बर०-१, बर०-४, भाग०-५)। [कसइली + आ (प्रा०) < कसेली < कामयिल]

कसमिरा—(सं०) एक प्रकार का पीप, जिससे रसी आदि बनाने के लिए रसे-जैसी बीज निकाली जाती है (बं०-५० नं०, भाग०-५)। दे०—सन। [देशी, मिला०—काश्मीरक]

कसर—(सं०) तोलन के बाध प्रकर रूप में अति-मित्र (कमी की प्रति में) अंगलि या हाथ से बिना हुआ अनाज (सं०, सं०-२)। दे०—पहुआ। [कसर (सं०) = दे०, घाटा, हल्लि]

कसाई—(सं०) पशुओं का बध करनेवाला मनुष्य—किसान लोग काम में दिवाई करनेवाले पशुओं को यों ही गाड़ी देते हैं—'बाह कर्मवा कूटा'—(तुल कसाई के कूटे

पर भाषी, अर्थात् जाकर काटे जायें) ।

[कसाई, कस्साव (ब०); मिला०-कस (हिंसाव)]

कसैया—(स०) दे०—कसाई ।

कसौजी—(स०)—(१) खोरी पर लपटाई लिये ईषद् स्वेत-रक्त, एक मोटा बगदनी बाध, जिसका बाधल उजला और सुगंधित होता है । (२) चकवड़-जैसा पीषा, जिसकी पसिया ईषद् हरित-रक्त होती है । [मिला०—कसौजी < कासमई (संस्क०) = चकवड़-जैसा एक प्रकार का पीषा, जिसकी पसिया ईषद् हरित-रक्त होती है । संभवतः यह नाम भी ईषद् स्वेत-रक्त होने के कारण 'कसौसा' कहलाता है ।]

कसौन्ह—(स०) एक प्रकार का लाल बगदनी धान (बर०, पुनि०-१) । दे०—कसौजी । पर्या०—जबुहल (पट०-४) ।

कस्तुरा—(स०) एक प्रकार का पीषा । यह तीन-चार हाथ लंबा होता है तथा इसके फल काटेदार होते हैं । जानवरों के 'कोरहा' रोग में इसका डठल गले में बांधा जाता है (पट०-१, मय०-५) । पर्या०—फरहड़ (पट०-४, मय०-५) । [देखी]

कदरनी—(स०) एक प्रकार का साग (बर०, पुनि०-१, पट०-४) । [देखी]

कहार—(स०) गाँवों में बसनेवाली एक जाति, जो लेंती-बारी या नौकरी-बाकरी करती है ।

[कहार < काहार (बेली), कहार (बरा०, हिं०, प०), काहार (बं), काहल (बो०), कहल (सि०)]

कहेरिया—(स०) वह बेल, जिसका रूप-रंग पीले की तरह हो (पट०-१) । पर्या०—बनलसा (सं०) [कहेरि + या < कहेरी < *केसी]

कौकड़ि—(स०) एक प्रसिद्ध लंबा फल, ककड़ी (बर०, पुनि०-१) । [*ककटी]

कौकरि—(स०) दे०—ककड़ी । [*ककटी]

कौली—(स०) (१) तंबाकू या किसी पीपे के ऊपरी भाग को काट लेने के बाद उसमें से निकला हुआ धुँआँ या नई पत्ती (ब० बं०, मय०-५, मय०-५, मय०-५, पट०-४, भाग०-१) ।

दे०—बोली । (२) मकई से निकलनेवाले बाल का बकुर (सा०-१, पट०-४, मय०-५, मं०-२, बं०-१, भाग०-१) । [< *कण्डू < *कण्डूर]

कौल—(सि०)—(१) वर०-१, पुनि०-१) । दे०—कनवा ।

कौलहाल—(सं०) वह चिरा खान या बाड़ा, वहाँ हूँसे की फल बाध चरनेवाले मवेशी बंधे जाते हैं, मवेशियों का बंध । दे०—बदगहा । [कलन (= काव) + हाउस (अ०)]

कौट—(सं०)—(१) एक प्रकार का कंटीला पीषा (बं०-१, मं०-२) । (२) किसी पीपे या फल बाध का मोटीला कड़ा भाग, जो गड़ता है । पर्या०—कंटा, कौटा (पट०-४, मय०-५, मं०-२) । [< *कंटक]

कौटा—(सं०)—(१) लीक करने का बड़ा तराजू । जिसमें ऊँच लीकने का यंत्र (बिह०, री०, हरि०, पट०-४, मय०-५, मं०-२) । पर्या०—रातल (री०), रातल (भोव०, मय०) । (२) एक कंटीला पीषा (पट०-४, मय०-५, मं०-२, भाग०-१) । दे०—कंटा, कौट । [< *कंटक]

कौटापर—(सं०) पीपी की मिल में वह घर, जिसमें ऊँच लीकने का कौटा रहता है (बिह०, री०) । पर्या०—रातलपर (सं०) । [कौटा + पर]

कौड़—(सं०)—(१) चारे के लिए काटे गये जनेर के डंठल की एक राति (ब०-पु० मं०) । दे०—राय । (२) लसिहान में रासिद्ध फल के मोलों का डेर (बं०-५, पु०) । दे०—नाय । (३) वह रस्सी, जिसमें डोरी के लिए धंस बंधे जाते हैं (बं०-५, मय०) । दे०—मसा । (४) मवेशी को दवा बिलाने का बंध का धोना (मुं०-१) । [कौड, कौडकौड] । (५) चूहे का बंध (बं०-१, मय०-५, मं०-२) । [कण्ड = बेल, बंडल, पुंज, कौडिन् = बिल (सं० सि० वि०)]

कौडल—(सि०)—(१) धान के कटे पीपों का पुंज बनाना (मुं०-१) । (२) कौड से दवा पिकाना (मुं०-१) । [*कण्ड = पुंज]

कौडल—(सि०) लाल से रीतना (बं०-१) । [< *कौडल < *कडि]

कौड़ा—(सं०) मोठ की गर्दन के चारों ओर लगी हुई कोड़े की कड़ी (ब०-पु० मं०) । दे०—मंडा । [< *कटक]

काँड़ा, काँड़—(सं०)—(१)—(बं०-५, मय०) । दे०—मंडा, काड़ा । (२) मूँच का डंठल, जो पर छाने और टट्टी बंधने के काम में जाता है (बं०-१, पट०-४, मय०-५, मं०-२) । (३) धान के पके हुए पीपों का पुंज या टाक (मुं०-१) (४) गोड़ाई । वर का एक धानुष (बं०-१, पट०-४, मय०-५) । [< *कडि, < *कटक]

काँड़ी—(सं०)—(१) पशुओं को दवा बाध पिकाने के लिए बनी बेल की नली (बं०-५, भाग०-५, पट०-४, मय०-५, मं०-२, भाग०-१) । पर्या०—डरहा (बं०-५, भाग०-५) । [काँड़ + ई (प्रत्य० ली० प्र०)]



काँड़ी—(सं०)—(१) लकड़ी का वह गहरा बरतन, जिसमें डोरी के मूँच से धान कूटा जाता है (ब०-५, भाग०-५, भाग०-५) । दे०—लोखरी । (२) चूहे के बिल का मूँच द्वार के बतिरिक्त एक मुँच द्वार, जिससे होकर, कमी मोका पड़ने पर, निकल भागे (बं०-५) । (४) हाथी के पैर का एक रोव । इसमें हाथी के पैर में छेद हो जाता है (बं०-५) । [कण्ड, मिला०—काण्डल (= बेल का लीक की धाँसी)]

काँड़ी—(सं०) कोलू के बेल के कुच (कटुर) पर का टाक का गहा (पट०-४) । [कण्डा; कण्ड, स्कन्ध]

काँटी—(सं०) दे०—काड़ी ।

काँसी—(सं०) फल को पूर्वतः हानि पहुँचाने वाली एक प्रकार की वृक्ष (ब० बं०, पट०, मय०, ब०-पु०, पट०-४, मय०-५) । दे०—कन-सव । [काँस + ई (प्रत्य० प्र०) < *कास]

काउन—(सं०)—दे०—कउन ।

काउर—(सं०) धान की बीनी में पुंजाव निकाल लेने के बाद बचा हुआ खसका महीन धंध (बं०-१) । [देखी]

काउन—(सं०) बावड़ की बाध का, मूँच धावों-वाला एक बनाव (ब०-पु०) । दे०—टंझी ।

पर्या०—काउन (बर०, पुनि०-१), कौवनी (बर०, पुनि०-१) । [कण्ड]

काकुट—(सं०) चारा काटने का एक भीमान (पट०-२, पट०-४, मय०-५) । [देखी]

कागजी—(सं०) एक प्रकार का नींबू, जिसका छितका पतला होता है (बर०, पुनि०-१, बं०-१, पट०-४, मय०-५, मं०-२) । पर्या०—कागजी-लेम्बो (पट०-१) । [कागज + ई (अ०)]

कागजी लेम्बो—(सं०) (पट०-१) । दे०—कागजी । [कागजी + लेम्बो]

काग-बदन—(सं०) वह बेल, जिसका मुँह काळा और कटीर उजला हो (पट०-१, पट०-४) । [काग + बदन < काक + बदन]

काज—(सं०) बलवल बमीन (सा०, मय०-५) । दे०—लोख । पर्या०—कछुई साटी (पट०-४, मय०-५) । [< *कच्छ]

काजल—(सि०)—(१) पोस्ते की फली में से अमीन का उठाना या संयुक्त करना (ब०-५, ब०-५, मं०-२) । दे०—उठायल । (२) किसी तरह पदार्थ को किसी पात्र से, हाथ से या किसी पत्थरी वस्तु से निकालना । [कथल]

काजक—(सि०) वह मवेशी, जो काम करते-करते रुक जाता है या बैठ जाता है ।

गुल होता है तथा काम से भी घुसता है (बं०-१) । पर्या०—कोदिया, कदरा (पट०-४, मय०-५) । [< *कल]

काटल—(सि०)—(१) तंबाकू या किसी पीपे के ऊपर का पत्ता काटना । दे०—पत्ता-क । (२) किसी वस्तु को किसी तेज हथियार से काटना । (३) फल काटना । पर्या०—लौली करल (ब०-५, भाग०-५); लोलल (सि०) = कल काटना (ब०-५); गेंडा करल (ब०, पट०, मय०, ब०-५); घूरकाटल (ब० भाग०); पचौर पारल—ऊँच काटने की प्रक्रिया (ब० भाग०); कटनी, कटिया, लौली—फल की कटाई । कटनी = फल के कटने का समय । [काटना (हि०) < कटती (उबने)]

काड़ा—(सं०) बेल का बर-बन्ध (पट०-४, मय०-५, भाग०-१) । पर्या०—काड़ी (बो०) (पट०-४, मय०-५, भाग०-१) । दे०—काड़ा । [< *कटल; *कटल; कर्मकर्परे १० जायमान-विचार्याग्रमहिषोपावेदपि च ।]—(मेवि०)]

काड़ी—(सं०) बेल का मादा बन्ध । दे०—काड़ा । [काड़ा + ई (अ०), काड़ा < *कटल]

काह—(सं०)—(१) हवि में पाये जाने के लिए हवि के नीचे की ओर का काटा हुआ अन्न। दे०—काह। (२) दे०—काह। [काह < *कृष्ण < *कृष्ण]
काह—(सं०) (१) कतरी के अन्न में एक पत्र पर से बंधी हुई रस्सी, जो बेल के कुण्ड (कुण्ड) से होकर फिर कतरी के एक छेद से बांधी जाती है। (२) दे०—काह। (३) बेल हुए पानी के विकास के लिए बोधी गई लगी। पर्या०—कनभो (सं०)। [< *कृष्ण < *कृष्ण < *कृष्ण]
कातर—(सं०) ऊँच के कोलू का वह समतल तलता, जिसपर बेल होने वाला बैठता है। पहले चौड़ा तलता होता था, किन्तु आजकल भीम-जैती गोल लकड़ी लगी रहती है। दे०—कातर। [का + तर < *काएड + तर, कर्त्तु = काटनेवाला (हि० सं० सा०)]
कातर—(सं०)—(साहा०, व०-पू० सं०, व० भाग०, अ०)। दे०—कातर। [का + तर < *काएड, कर्त्तु = काटनेवाला (हि० सं० सा०)]
कातरि—(सं०)—(१) ऊँच के कोलू का वह समतल तलता, जिसपर बेल होने वाला बैठता है। आजकल भीम-जैती गोल लकड़ी लगी रहती है। पर्या०—कातर, काथरी। (२) (साहा०, व०-पू० सं०, व० भाग०)। दे०—काथरी। [का + तरि < *काएड]
कातिक—(सं०) कातिक, भारतीय वर्ष का आठवाँ और सूर्य-यु का अंतिम महीना (संवत्सर के अंत में और नवम्बर के आदि के प्रायः ५ दिन)। इस मास की पूर्णिमा की प्रायः कृत्तिका मध्य हुआ करता है, अतः कातिक नाम पड़ा। [*कातिक < कृत्तिका < कृत्ति < *कृत्ति (छेबने) + कृत्ति (प्र०)]
कादो—(सं०)—(भोज०)। दे०—कादो।
कादो—(सं०)—(१) घान रोपने के लिए सन की पानी से भरकर इस प्रकार जोतने की प्रक्रिया, जिसे घास-घास न रहने पावे, कमीन खूब मीठी तथा सुलाभ्य हो जाए एवं पीछे मासिकी से रोपे जा सकें (व०-पू० सं०)। दे०—लेव। (२) वह कीचड़, जिसमें घान की

फलन होती है। पर्या०—करोई, कदई। (३) कीचड़ (बं०-१, व०-४, व०-५)। पर्या०—कादो, कानो (भोज०)। [< *कदई]
कादो करल—(बुहा०) घान की बोआई के लिए अंत की तैयारी करना। पर्या०—कदुवा करल, लेव करल (सा०), मसाह करल (बं०)। [कादो + करल < कर्दमी + < *कृ]।
कान—(सं०)—(साहा०)। दे०—कान्ह। [< *काएड, < *कृष्ण, < *कृष्ण]
कान, काना—(सं०) कुंठ के तंतु के ऊपर की शाखा, जिसपर कुंठ लटकता है। पर्या०—काना, कानी, कना, कनी, कुकानी, दोकानी (बं०-१, व०-पू०)। [< *काएड, < *कृष्ण, < *कृष्ण]
कानर—(सं०)—(१) वह पहला ऊँचा या लला-ख, जहाँ करीम आदि से पहले पहल पानी गिराया जाता है (व०-पू० सं०)। (२) वह कच्चा कुम्हा, जिसमें बेल की पट्टी या तल के पत्तों से बने घेरे से बांध दिया जाता है, जिसमें कि मिट्टी नीचे गिरने न पावे। वह घेरा 'छोल' कहलाता है (व०-पू० सं०)। (३) अंत में अदया नदी के किनारे नदी के पानी से सबद छोड़ा गया छोटा कुआँ (व०-पू० सं०)। [< *कानर (?) रकन्ध]
काना—(सं०)—(१)—(व०-पू० सं०, व०-५, व०-१)। दे०—कनवा। [दे०, व०, व०, व०, व०]। दे०—कनवा। (२) कीड़ा लवा हुआ ऊँच का पीया (व०)। दे०—छीगा। (३) दे०—कान। (४) कनहा—(वि०) बड़ फल की ओर से सड़ा हो (सं०)। [< *काएड, कृष्ण, रकन्ध]
कानी, कना—(सं०)—(१) कुंठ के ऊपर लगे लगे की एक शाखा (भोज०), जिसपर चिरनी चलती है। (२) कौमल, पेड़-पौधों की नई शाखा (सं०-१, व०-४, व०-५)। मुताबिक कानी निकलना या फूटना—नई शाखा निकलना, नई शाखा निकलना। [< *काएड, < *कृष्ण]
कानी, कनी—(सं०)—(व०-४, व०-५ सं०-२)। दे०—कान। [< *काएड, < *कृष्ण]
कानी हाउस—(सं०) दे०—कानी हाउस, अङ्गड़ा।

कान—(सं०)—(१) कोलू के लिए ऊँच के छेदों से टुकड़े काटनेवाला व्यक्ति (व० सं० सा०)। टि०—ऊँच की काटकर पेरने की प्रक्रिया पहले थी। कोलू के कोलू का प्रचलन होने पर बाइकल तो समूचा ऊँच कोलू में लगाया जाता है। पर्या०—काहाह (बं०), गेहिंकाटा (व०), अंगरवाह (व०), टोनकटा (वही-कहाँ), टोनि-कटा (व०-पू० सं०), मजुरा (व०-पू० सं०), अन (व०-पू० सं०)। (२) एक विशेष जाति, जो नूँचा भूने का व्यवसाय करती है। पर्या०—कनुइन, कनुनिवाँ, कानुन (वही)। [< *कान्दिक < *कन्दू]
कानो—(सं०) कीड़ा लवा हुआ ऊँच का पीया (व० भाग०)। दे०—छीगा।
कानो—(सं०)—(भोज०)। दे०—काथो। [काएड, कर्दम]
कानो-किचड़—(सं०) किसी पीछे के तल की पंक्ति जमीन (व०)। दे०—तरी। [कानो + किचड़, < कादो + कीचड़ (हि०) < *कदम + कृष्ण]
कान्ह—(सं०)—(१) ऊँच के कोलू के पेट में रहनेवाले मोहन (काठ) के बूँद के ऊपर का बड़ा हुआ भाग। पर्या०—कांथा (सं० व०, व०), कन्धिया (व०-पू० सं०), पंजा (व०-पू० सं०), कान या लोंगरा (साहा०), मोहनधम्भा (गवा), लेंका (व० सं०)। (२) कोलू के जाठ (मोहन) के ऊपर का कटा हुआ भाग। कवा। [< *काएड, < *कृष्ण] टि०—आजकल ऊँच पेरने के लिए कोलू के कोलू के प्रचलन के बाद तेल के कोलू की तरह उस कोलू में जाठ बाँध नहीं होते हैं, बल्कि सभी पुराने कोलू के होते हैं।
कान्ही—(सं०)—(१) ऊँच के रोपने में प्रयुक्त दो छोलों में से पिछले छोल में बाँधों और से बंधा हुआ घास का बड़ल, जो छोल से बंधे गये बड़ाव (सिराटर) को बिरसुत करता है (व०)। पर्या०—कानी, कान्ही के हर। (२) पोखर या नदी का लड़ा किनारा (बं०-१)। [< *कान्व, < *काण]
कान्ही के हर—(सं०)—(व०)। दे०—कान्ही। [कान्ही + के + हर]

काविज लगान—(वि०) वह जमीन, जिसकी मालगुजारी लगती है, लगान लगने के योग्य। (सा०-१)। [काविज + लगान]
काविस—(सं०) काल मिट्टी (व० व० साहा०, भाग०)। दे०—अलकी मिट्टी। पर्या०—गाविस (बं०, व०-२)। [< *काविस]
कामत—(सं०)—(१) घर से दूर की जमीन की देखभाल और व्यवस्था के लिए उसी स्थान पर बनाई गई छावनी, जहाँ किसान या उसका प्रतिनिधि, माल-पवेशी और कलियान आदि होते हैं। एक तरह की जिरात या धायीर की जमीन (सा०-१)। [सं०—< *कामत—(नेवां), < कामता (हि०) ?]
कामती—(सं०) संघ कलियान में मजदूर से काम करानेवाला दयादार (व० सं०)। [कामता (हि०) < *कर्मन्]
कामदार—(सं०) मिल में नियुक्त वह कर्मचारी, जो मिल की ओर से गाँवों में मूल-पूतकर इधकों को विशेष ऊँच का प्रचार-वितरण, उसके मूल, लती का प्रकार, कोढ़ी सिबाई और काह काटने आदि का ठंग सिखलाया करता है (सं०, व०-५)। [काम (हि०) + दार (का० सं०)]
कारपरदाज—(वि०)—(१) सरकारी मालगुजारी मूल कर राजकोष में जमा करनेवाला। दे०—सपरदार। (२) अदाभत में जाकर मरना या किसी दूसरे का मुकदमा देखनेवाला व्यक्ति (व०-५, अन्वय भी)। [कार + पदाज (का०); मिला०—कर < कार्य]
काराशोहा—(सं०) काँटकर (बावप) मोवा जानेवाला निरुद्ध प्रकार का काका वल (व०)। दे०—सलगाँविया। [कारा + शोहा, कारा < काल; शोहा (सं०) < वावरा]
कारी, करिया—(वि०)—(१) गाँधी लकड़ (साहा०, व०-पू० सं०)। दे०—रंगा। (वि०) काला, काले वर्ण का जाना, पशु आदि। [कारी < कासी < *काल]
कारीवाँक—(सं०)—(१) एक उत्कृष्ट फोटि का घान, जो काले रंग का होता है और जिससे विशेष प्रकार की सुगंध निकलती है (व०-१, व०-४, * व०)। (२) रोपा जानेवाला

एक प्रकार का घान (ब० ब०) । [कारी + वीक < कारी < काल; वीक < वंक < वक्र]
 कारु—(ब०) एक प्रकार की घास (बर०, पुष्पि०-१, भाज०) । [देशी]
 कारा—(ब०) काली उड़द (गया) । दे०—हंग । (वि०) काले वर्ण की वस्तु । [< *कालक]
 काराकंद—(ब०) एक प्रकार का घान (ब०-१) । पर्या०—कलाकंद (गग०-५) । [कारा + कंद < *कलाकंद (?)]
 कारागीर—(ब०) एक प्रकार का घान, जो फाल्गुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (उ० पू० ब०) । दे०—अवाल-बीर । [देशी ?], मिला०—कालगिरि]
 कारापाहाड़ आम—(ब०) एक प्रकार का आम । यह बड़ा और काला होता है (बट०-१, ब०-१) । [कारा + पाहाड़ + आम]
 कारतकार—(ब०) दे०—असामी । [कारत + कार (का०) ; मिला०—कार (संस्क०) < √ कृ]
 कारतकारी—(ब०) वह जमीन, जिसकी सवान जमींदार को देकर उसपर स्वयं प्राप्त किया गया हो (सा०-१, बट०-४, गग०-५, ब०-२, भाग०-१, ब०-१) । [कारत + कार + ई (प्र०) (का०)]
 कास—(ब०)—(१)—(साहा०, उ० बि०) । दे०—कनशन । (२) सरद्वृत्त में कुपने-वाली एक प्रकार की कुल की जाति की घास । [काश, कस]
 कासचराई—(ब०) बरगह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (ब०, बट०, पू०, गग०-५) । दे०—सरचरी । [कास + चराई]
 कासनी—(ब०) एक प्रकार का पोष, जिसका उपयोग जीवधर्म में होता है । [कासनी (का०)]
 काहचराई—(ब०)—(ब०, बट०, पू०) । दे०—सरचरी । [काह (का०) + चराई (हि०) < चरान; काह < कास (संस्क०)]
 काह—(ब०) एक प्रकार का पोष, जिसका बीज ओषधों में प्रयुक्त होता है (बट०, गया, गग०-५) । [पत०]

किआली—(ब०)—(१) गाड़ीवालों के द्वारा प्रति लदनी जमींदारों को दिया जानेवाला यातायात शुल्क (उ० पू० ब०, ब०-१) । (२) अन्न-विक्रेता की तौल पर निर्धारित कर । पर्या०—कैयाली, बरदाना (बट०) । टि०—कमी-कमी, गाड़ीवान गाड़ी लेकर जहाँ-जहाँ रात बिताते थे, वहाँ-वहाँ भी यह शुल्क लिया जाता था । [देवो]; मिला०—किराट = वनिया (ब० बि० बि०)]
 किराइल—(बि०)—(१) आकाश में यज्ञ-तप मेंच का नजर आना (ब०-१, बट०-४) । (२) आल से कोरड़ निकलना (ब०-१) । [किअ + आइल (प्र०) < कीच्छ (हि०)]
 किछार—(ब०) नदी या बोलदे का किनारा (ब०-१, बट०-४, गग०-५) । [किछार < कछार < *कच्छ]
 किता—(ब०)—(१) खेती की हुई भूमि का एक बड़ा भाग (बट०, बट०-४, गग०-५, ब०-२, भाग०-१) । दे०—बच । (२) भूस्वामी का गाँव में बिकरा हुआ खेतों का प्रत्येक टुकड़ा । दे०—खल्ला । [कत (प्र०)]
 किनल—(बि०) खरीदना । दे०—कीनल । [क्रयण < √ क्री (= क्रीयाति), किनाति (पा०), किमई (प्र०), किनना (हि०), किन्नु (ने०), किना (ब०), किनिवा (को०), कनुन (कन्न०), किनेल (रोमा०)]
 किनावल—(बि०) किनल क्रिया का प्रेरणार्थक । खरीदवाना ।
 किनार—(ब०) नदी आदि का किनारा ।
 कियारा—(ब०) कल के संत में बनी हुई चिथारी (पू० ब०) । दे०—हातावाला । [< केटर]
 कियारी—(ब०) (१) सीपने या बोनने आदि की सुविधा के लिए खेतों में बने हुए जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े । पर्या०—घड़ रो (ब०) गँडारी (बट० ब०-पू०) गँडारी (गया) । (२) खेत पटाने के लिए खेत में बनी हुई नाली (बिहा०, बाल०) । कियारी । पर्या०—कैयारी (ब० भाग०) । [< *केटर]



कियल—(ब०) अनाम की तौल-मोल करने-वाला (ब०-१) । [मिता—किराट (पा० त०) = बनिया । मिला०—काकिनी—“काकिनी पण्योदेऽपि मानयोदे वराटके” —(नेबि०)]
 कियली—(ब०)—(१) गाड़ीवालों द्वारा प्रति लदनी जमींदारों को दिया जानेवाला याता-यात-शुल्क (उ० पू० ब०) । (२) अनाम आदि तौलने का काम या उसकी बजहूरी (ब० ब०-१) । (३) अन्न-विक्रेता की तौल पर निर्धारित कर । पर्या०—कैयाली, बरदाना (बट०) । टि०—कमी-कमी गाड़ीवान गाड़ी लेकर जहाँ रात बिताते थे, वहाँ भी यह शुल्क लिया जाता था । [देवो०], मिला०—किराट (पा० त०) = बनिया, काकिनी—“काकिनी पण्योदेऽपि मानयोदे वराटके” —(नेबि०)]
 किराइल—(बि०) कीड़ा लगा हुआ (सा०-१) । पर्या०—खराब, पिलुआइल, घुनाइल । [किर + आइल (प्र०) < *कीट]
 किराइल—(बि०)—(१) कीड़ा लगना (ब०-१) । [किना + इल (प्र०) < कीट]
 किराना—(ब०) पसरहट की वस्तुएं, कूटकर विद्रव-वर्षा (ब०-१, बट०-४, गग०-५) । [< *कीर्ण]
 किरावा—(ब०)—(१) जमींदार की ओर से अन्नविक्रेता की माप पर निर्धारित कर (गया) । दे०—कीड़ी । (२) किसी वस्तु या मकान आदि का भाड़ा । [आ०]
 कीना—(ब०) एक उड़नेवाला दुर्गंधयुक्त कीड़ा, जो फूल होने के पहले ही खार आदि पर प्रहार करता है (ब० ब० साहा०) । दे०—गंभी या गंभी । [कित + औना (प्र०, देवो) < *कीट]
 कीरी—(ब०) एक प्रकार का अन्न (बर०, पुष्पि०-१) । [देशी]
 कीरी—(ब०) बकई, बटर आदि का अपफूटा चबंवा । पर्या०—बजड़ी (ब०-१, गग०-५, भाग०-१), डुरी, डोरी (बट०-४, गग०-५, ब०-२) । [देवो], मिला०—खिल (संस्क०)]

किल्ला—(ब०)—(१) (ब०-ग० ब०) । दे०—खलोता । (२) पानी पटाने के काम में आने-वाले लाठे के पिछले भाग के अंत में लगी कोल, जिसके सहारे मिट्टी आदि का भार बाँधा जाता है (बट०, ब०-पू. बट०-४, गग०-५) । (३) मवेशियों को बाँधने के लिए लकड़ी या बाँस का बना छोटा स्तंभ (खूँटा), जो जमीन में गड़ा रहता है । दे०—खूँटा । (४) ज़ाँत के दोनों पाटों के बीच के छेद में लगा खूँटा । (५) कुम्हारों के पाक की धुरी (ब०, बट०-४, ब०-१, गग०-५) । दे०—कीला । किल्ला [< *कील, < *कीलक (संस्क०), कील (पा०, प्रा०), कीला, किल्ली (हि०), किलो (ने०), कील ब०), कीला (प्र०), कीलिया (प्र० बि०) = कील टोकना; कील, कीरी (सि०), कील्ला, कील्ली (ब०), किल्ल, किल्ली (प्र०), कीली (पु०), किल्ली, कील (ब०), खयल (कन्न०), किलो (रोमा०)]
 किल्ली—(ब०)—(१) लकड़ी की कील या खूँटी, जिससे मोटा रस्सी में बांधा जाता है । पर्या०—गुल्ली । [कील, कीलक] (२) कूँड़ में बार-बार लगी हुई फट्टी जिसमें रस्सी बाँधी जाती है । पर्या०—गुल्ली, रनकिल्ली, गुल्ली (ब० भाग०) । (३) एक पंचबद्ध, जो अपनी जगह पर ‘कड़ड़ी’ को कसे रहता है । दे०—फरकिल्ला । [कील, कीलक, खील]
 किसन अरपन—(ब०) कृष्ण की पूजा के निमित्त जपित कर-पूजन भूमि । दे०—संक्षेप । [किसन + अरपन < *कृष्णार्पण]
 किसमिस—(ब०) एक प्रकार का सूखा और मोटा मेवा, जो अमूर को सुखाकर बनाया जाता है । यह कदमीर, बड़बिस्तान, पाकिस्तान के पश्चिमी सीमांत प्रदेश और अफगानिस्तान के इलाक़े में होता है । [किशमिश (का०)]
 किसमिसिया (ब०) यह वेल, जिसका रंग किसमिस की तरह हो (बट० १) । [किमिमि + इया (प्र०) < किशमिश]



किसान—(सं०) कृषि-कार्य करनेवाला, खेती-बारी करनेवाला । [कृषाण, कृषानु (उपपत्ति); किसान (हि०, सं०), किसान, मरा०), किसान (सं०), मिला०—कस (सिहा०) < कर्त्तृ०]

किसानी—(सं०) किसान का काम ।

किसुनपल—(सं०) चाँदभास के पड़ह दिनों का एककालिक परिमाण, जिसमें चंद्रमा की कला घटती रहती है, कृष्णपक्ष । दे०—पल ।

[किसुन+पल, पल < *कृष्ण-पल]

किसुनरुद्ध—(सं०) दे०—किसुनपल ।

किसुनभोग—(सं०) एक प्रकार का आम, जो बड़ा, कुछ गोलाकार और गुँदवार होता है (पट०-१, बंधा०-१, पट०-४, मग०-५, मै०-२, भाग०-१) । [किसुन+भोग < *कृष्ण भोग]

किसोरी—(सं०) एक जंगली फल, जिसकी उर-कारी होती है (पट०-१) । पर्या०—कैसोरी (मग०-५) । [देसी, मिला०—किसोर (१)]

किस्त—(सं०) निश्चित मुनाफे के साथ निश्चित समय पर दिये जानेवाले कर्ज का कुछ निश्चित भंड । पर्या०—किस्तबंदी । [किस्त-(म०)]

किस्तबंदी—(सं०) दे०—किस्त । [किस्त+बंदी < किस्त (म०)+बंदी (का०); मिला०—वंद < वंध (संस्कृत)]

कीच—(सं०) (१) किसी पोखरे के तल की गीली जमीन (साहा०) । दे०—तरी । (२) तल के नीचे की अपवाहक मूल जाने पर की गीली मिट्टी । (३) गीली मिट्टी, काबो, पंक । [कीच < कीच, < कीचड़ (हि०) < *कचड़]

कीनल—(सं०) जरीयना (सा०-१, बंधा०-१, दे०-१, पट०-४, मग०-५, मै०-२, भाग०-१) । दे०—किनल । (सि०) खरीश हुआ । [क्रयण < *क्रि]

कीरी—(सं०) कृमि का एक भेद (बंधा०-१, पट०-४, मग०-५) । पर्या०—गीरी (सं० भाग०) । [< *कीर < *किरी (संस्कृत), कीट, कोटक (सा०), कीड, कीडभ्र (म०), कीड़ा, कीड़ी (हि०, सं०, म०), कीड़े, कीड़ी (गु०), कीड़ा, मिरा (सं०), कीड़ (मरा०), किरों (सं०, कुमा०), कीरी (सि०), किरी (रोमा०)]

कीरो—(सं०) (सं० भाग०) । दे०—कीरी । [< *कीर, < *किरी]

कील—(सं०) घुरी के बल में पहिये के बाद लगे हुई कील, जो पहिया को गिरने से बचाती है (साहा०) । दे०—घुरहिल्ली । [< *कील, < *कीलक]

कीला—(सं०) बाक की घुरी पर्या०—हिल्ला (सं०, पट०-४, मग०-५), खूटी या खुट्ट (गु०), सिल्ला (सं० भाग०) । [< *कील, < *कीलक]

कुँआ—(सं०) बल की शक्ति के लिए बोया हुआ गोलाकार गहरा गड्ढा, जिसमें बट रहता है (बंधा०-१) । [कूप]

कुँजड़ा—(सं०) तरकारी बेचनेवाले मुसलमानों की एक जाति (पट०-४, मग०-५, मै०-२, बंधा०, भाग०-१) । पर्या०—कुजड़ा (पट०-१, गुज०-१) । [कुंज+डा (प्र०)]



[कुंज+डा (प्र०)] < *कुञ्ज = निकुञ्ज, < *कुञ्ज < *कुञ्जिका = गुंजा, गोया-जाति का शाक (मो० वि० वि०) । कासी (मरा०), काड़िया (गु०) ; < कचड़; मिला०—कुंज (का०)]

कुंड—(सं०) ऊस बेरने के कोष्ठ का वह सोखला भाग, जिसमें ऊस बेरा जाता है (गु०) । दे०—खान । [कुण्ड]

कुँइमुंदन—(सं०) बावग के अंतिम दिन का एक उत्सव, जिसमें किसान खेतों में से बोझ-सा बचाकर बीच लाकर एक कुँडे में डाल देता है, तत्पश्चात् अनेक प्रकार का सोहन तैयार करता है और सभी लोगों के साथ मिलकर खाता-पीता है । पर्या०—कुँइमूनन, इर-सोघन (बंधा०) । [कुँइ+मुंदन < कुंड+मुद्रण]

कुँइमूनन—(सं०) दे०—कुँइमुंदन । [कुँइ+मूनन < कुंड+मुद्रण]

कुँडा—(सं०) (१) वह बरतन, जिसमें ऊस का रस जूता है (साहा०, पट०-५, पट०-४) । दे०—डोर । (२) बावग की महीन मृत्ती । [कुण्ड]

कुँड़ा—(सं०) बावग की महीन मृत्ती । [कुण्ड]

कुँडिया बास (१) (सं०)—कुँडे पटाई जाने-वाली मृत्ति (सं० भाग०) पर्या०—मोटबाही (गु०) । [कुँडिया+बास; कुँडिया < *कुंड; बास (बेनी)]

कुँडियाडी—(सं०) (सं० ड०) । दे०—कनेडी । [कुँडिया+डी, आडी (म०); मरा—मुमलाडी = मूँचने की लोको का बंडल मरवा लुकाई । अथवा डी, आडी < *आवेष्ट ग्रंथि]

कुँडी—(सं०)—दे० कुँड ।

कुँडी—(सं०) (१)—हेंकुल (लाठा) में लवा हुआ, पानी निकालने के लिए मिट्टी या मोह का पात्र । दे०—कुँड । (२) हेंगा खींचने के लिए रस्ती की जगह पर काम में लाई जानेवाली बाँस की लकड़ी (सं० गुं०) । पर्या०—बंसखोरी (सं० भाग०), अरौआ । (३) किराड के लोगों पट्टों को बंद करने के लिए धिकड़ी लगाने के निमित्त पीकट में लड़ी कील । [(बेनी) मिला०—कुँडी (हि०), < *कुण्ड]

कुँड—(सं०) बंधा की जाति का एक फूल, कुमुद (पट०-१, मग०-५) । [< *कुंद]

कुँदरी—(सं०) तरकारी के काम में जानेवाली एक फली (सं०-१, पट०-१, पट०-४ मग०-५, मै०-२, बंधा०, भाग०-१) । [कुन्दरुं]

कुँआ—(सं०) गहरा बोया हुआ गोलाकार (कच्चा या पक्का) गड्ढा, जिससे पानी निकाला जाता है । (सिहा०, भाग०) । दे०—कुँआ । [कूप]

कुँआर—(सं०) आश्विन, भारतीय वर्ष का सातवाँ तथा शरद ऋतु का पहला महीना । (अधिकतर सितम्बर के अंत और सप्टेंबर के आदि के प्रायः १५ दिन) । दे०—आश्विन । [कुमार (?)]

कुँआरी—(सं०) आश्विन में काटा जानेवाला एक धान । पर्या०—असनी (पट०-४, मग०-५) । [कुँआर+ई (प्र०) < कुमार (?)]

कुँइया—(सं०) दे०—कच्चा । [कु+इयाँ (अस्वा० स्त्री०) < कुँआ+इयाँ < *कूप]

कुँइया—(सं०) (१) एक पशु-खाद्य बास । इनका दवा में भी प्रयोग होता है (पट०-४, मग०-५, मै०-२) । [कुँइर+ओँआ < *कुँइरुड]

कुँकाठ—(सं०) ककड़ी का वह कुंआ, जिसपर ऊस काटा जाता है (पट०) । दे०—मिमुहा । पर्या०—कुकाठी (पट०-४) । [कु+काठ < काष्ठ]

कुकाठी—(सं०)—(पट०-४) । दे०—कुकाठ । [कुँकाठ+ई (म०)—(बेनी) या < कुकाष्ठ (?)]

कुकुटी—(सं०) कपास में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा (सा०, मै०) । [(बेनी), मिला०—कुरूरु = एक प्रकार का कीड़ा (मो० वि० वि०)]

कुकुरीना—(सं०) एक प्रकार की बास (बंधा०-१) । दे०—कुकुरीना [कुकुरीना < कुकुरीया < *कुक्कुरुं]

कुकुसा—(सं०) एक पशु-खाद्य बास (सं०-५० साहा०) । [(बेनी), कु+कुसा < कुसा (?)]

कुकुडी—(सं०) हेंगलखतु के जगान को गन्ध करने-वाला एक कीड़ा (सं०-५०) । [< *कुक्कुडी]

कुआ—(सं०) कच्चे आम को कुंभ कर बनाया हुआ खेंकार या कटाई (पट०-१, पट०-४, मग०-५, बंधा०, सं० भाग०) । [कुआल (सिहा०), कुआला (हि०) < *कुट्ट (?)]

कुटकटना—(सं०) ककड़ी का कुंआ, जिसपर गेंदासी से चारा काटा जाता है (मग०-५) । दे०—टेहा । [कुट+कटना < कुट < कुटी; कटना < काटल (सिहा०) < काटना (हि०)]

कुटका—(सं०)—(१) शारीरिक फसल (मकई आदि) का डंडल (सं० घ०) । दे०—डोंड । (२) विभिन्न बड़ी-बूटियाँ, जिनसे प्रसूता के लिए चैष्टिक औषधि बनाई जाती है । (पट०) । [कुटक = डंडल, कटल—(मो० वि० वि०)]

कुटकी—(सं०) जल के पीने की डोंड का छोटा-छोटा टुकड़ा (बंधा०-१, मै०-२) । [कुटका+ई (स्त्रिया० स्त्री० प्र०) < कुटक]

कुटकुर—(सं०) सूखी हुई जमीन (साहा०-१) । [देसी]

कुटरी—(सं०) (सं० भाग०) । दे०—कुटरी । [कुट्ट वा < *कुट < *कुटी (छेबने)]

कुटिया—(सं०) (१) घास, फसल की डंडल आदि का कटा हुआ पशुओं का महीन खाद्य (सं० भाग०) । दे०—कुटरी । [कुट्टी < कुट्टिल < *कुट्ट, कुट्ट, वा < *कुट < *कुटी (छेबने)]

(२) खर-पात की डली सोपरी, साधुओं का गट । [कुट+इया (प्र०) < कुटी]

कुटियाबल—(सं०) घास-पात काटकर कुट्टी

बनाना (सं०-१, भाष०-१)। [कुटिया+आवल
< कुटी < √ कुट्, वा < *कृत् < √ कृती
(छेदने)]

कुटी—(सं०) घास या फसल की ढंठल बाँध का
काटा हुआ पशुओं का नहोन आध। पर्या०—
कुटिया, कुटरी (ब० भाग०), कट्टा (पट०),
लोरी (बं०)। [< √ कुट् वा < *कृत् <
√ कृती (छेदने)]

कुठौब—(सं०) बीनी करने के बाद ओसाने के
लिए रखे हुए मूसा और अनाज मिले हुए अन्न
की राशि (पट०, ब०-प० बिहा०)। दे०—
सिल्ली। [देशी, मिला०—कूट=अन्न की
राशि]

कुड्डिया—* (सं०) ऊँच या तेल के कोलू में
रखे जाठ के ऊपर घूमनेवाले ढंठे भाग और
कतरी से लगा हुआ बाँस का टुकड़ा। दे०—
बोरबाड़ी। [< *कुड्, < *कुडल (संस्क०),
कुंडी (हि०)]

कुड्—(सं०) एक प्रकार का धान (बं०-१)।
[(बे०)] मिला०—कुड (हि०) < कूट=
अन्न की राशि, कुट=अपशिष्ट]

कुड्दहिना—(सं०)—(१) हँसा में बाँधें और में
बढ़नेवाला बैल। दे०—पंचोद। [कुड् +
दहिना; कुड् (ग्रा०), कुट (संस्क०) =
हाथी वगैरह के बाँधने की रस्सी। कुटक, कूट
(संस्क०), हल, विना हरीस का हल।
दहिना < दक्षिण] (२) मँह के पास घूमने-
वाला समूह का सबसे छोटा और दुबल बैल
(गया)। दे०—पँडियाँ बैल। पर्या०—
मँही (बं०)। [कुड् + दहिना, मिला०—
कुडल=रस्सी का बना गोल घेरा; कुड
(ग्रा०), कुट (संस्क०) = हाथी वगैरह के
बाँधने की रस्सी (पा० सं० म०); दहिना
< दक्षिण]

कुडहरि—(सं०) कुल्हाड़ी (पट०, ग्रन्थि०-१)।
पर्या०—टेकारी (सं०-२, बं०, पट०-४), टेंगारी।
टंडुली (मग०-५, बं०)। [< *कुडार]

कुडि—(सं०) लकड़ी का बना पानी पटाने का
एक साधन (पट०-१)। [कुड]

कुडी—(सं०) दे०—कुडही।

कुडी—(सं०) अन्न बाँध की रबी हुई छोटी-
छोटी राशि या ढेर। पर्या०—कुडी (पट०-४),
कुबी (बं०, स०-२, पट०-४)। [< *कूट
(संस्क०), कुड् (हि०)]

कुत—(सं०) कृतने की प्रक्रिया।

कुतल—(फि०)—(१) खेत की फसल के परि-
माण करना और मूल्य का निर्णय करना, कृतना
(पट०-१)। पर्या०—कन करना। (२)
किसी वस्तु का मूल्यांकन करना। [मिला०—
√ कुत् = फैलाना (गो० वि० वि०), कुत् (ग्रा०)
= किराया। कृतना (हि०), कूट (कुमा०)
या कुत् (नं०) = जमीन की लगाना।
कुत् (गो०) = किराये पर देना]

कुतुरम—(सं०) सन की बाँध का एक पीचा,
जिसकी छाल के रेशों से बोरा बाँध बनाने के
लिए सुतली बनाई जाती है। इसके फल कुसुय
की तरह होते हैं। दे०—पट्टा। [(देशी),
मिला०—कुन्दर=एक प्रकार की घास;
कुन्दरिका=एक पीचा (गो० वि० वि०)]

कुदरम—(सं०) एक छोटा-सा पीचा, जिसके
फल की बटनी होती है (पट०-१)। [देशी]

कुदरम—(सं०)—(ब० भाग०) दे०—कुसुय,
पट्टा। [(देशी), मिला०—कुन्दर=एक
प्रकार की घास, कुन्दरिका=एक पीचा (गो०
वि० वि०), कुदरम, (सं०)]

कुदर—(सं०) काँहड़ा, कुदाल, मिट्टी कोबने का
एक हथियार (सं०, भाग०)। दे०—कुवारी,
कोरा। [< *कुदाल, < *कुदर, < *कुदालक,
* < कुदाल < कु + √ दक्ष + अ (< घञ्)]

कुदारी—(सं०)—(१) जमीन कोबने के लिए लोहे
का बना चौड़ा और तेज बार का
एक औजार, जिसमें लकड़ी या
बाँस की बँट लगी रहती है।
पर्या०—कोदारी या कोदारी,
कोदर (बं०), कुदाली
(ग० द०), कुदाल और कुदर,
ठेंडी कोदर (ब० भाग०, बं०) कुवारी
[< *कुदाल, < *कुदर, < *कुदालक,
कुदाल (संस्क०), कुदालकी, कोदाली (पा०),
कुदाल, कोदालिया (ग्रा०), कुदाल (हि०),



कोदाल (बं०, मल०), कोदाल (ग्रा०),
कोदारी (सि०), कोदाली (ग०), कुदाल,
कुदाला (बं०), कुदल (मरा०), कोदालि
(ग्रा०) < कुडार (१), कुडि (सं०)। (२) सन
के रेशों में बचा रह गया छोटा-छोटा ढंठल
(ब०-पू० नं०)। दे०—कुवारी। [देशी]

कुदाल, कुवार—(सं०) दे०—कुवारी।
[< *कुदाल, < *कुदालक]

कुदाली—(सं०)—(सं०-ब०)। दे०—
कुवारी।

कुदरुम—(सं०)—(महा०-१)। दे०—
कुवदन। [देशी]

कुडी—(सं०) अन्न का छोटा ढेर (ब० धू०,
पट०-४, मग०-५)। कुमावल (महा०)= छोटा-
छोटा हिस्सा लगाना, भिन्न-भिन्न अवस्थितियों में
किसी चीज को बाँटना। [मिला०—कूट=
राशि, कुदय=कुदय=दीवाल]

कुनरी—(सं०) एक प्रकार का पीचा, जिसका
फल अन्न में प्रयुक्त होता है। [< *कुनरु]

कुन्वी—(सं०) (१)—(ब० भाग०)। दे०—
बन्वी। (२) निष्फल बीज (ब० भाग०)
मिला०—मुन्वी। [कु + व्नी < कुन्वीज]

कुमुदनी—(सं०) एक शसिष्ठ जलोप फूल, कुमुद
(पट०-१, पट०-४, मग०-५)। [कुमुद, कुमुदिनी]

कुमुदसार—(सं०) महीन धान का एक अंश
(बं०-१)। [< *कुमुदशालि]

कुम्हड़—(सं०) कौहड़े की जाति का एक श्वेताम
फल, जिसका उपयोग मिठाई, मुरब्बा आदि
के बनाने में होता है (ग०)। दे०—कुमुदा।
पर्या०—सजकुम्हड़ (सं०-२), सीसकौहड़ा
(बं०, भाष०-१)। [< *कुम्मांड]

कुम्हिलाइल—(फि०) किसी फल-फल का घूप
में पड़ने या पेड़ से टूटने के बाद कुछ-कुछ
सूखने लगना (बं०-१)। [कुम्हिला + आइल
(ग्रा०) < कुम्हिल, कुम्हिला (हि०) <
कुम्हलान (हि० सं० सा०), < *कुम्हिल =
एक प्रकार का विषकीट; मिला० कुम्मांड =
बन्वी का एक रोग, जो कुम्मांड प्रेतों के कारण

होता है और जिसमें बच्चे सूख जाते हैं।
कुम्हाउनु (नं०), कुम्हाण (देशी०), कुमावण
(सं०), कुमावणायु, कुमावणायु (सि०),
कुमण (मरा०)]

कुम्हिस—(सं०)—(ब०-पू० नं०)। दे०—कुहा।
[मिला०—कुहेला, केहेडिका, कुहेडा]

कुरकुट—(सं०) पृथाल का मूसा (बं०-१)।
[< *कुक्ल]

कुरखेत—(सं०) (१) बोटा हुआ वह खेत, जिसमें
कुछ बीजों से हल नहीं चलाया गया हो (बं०)।
(२) खेतीबारी। [कुर + खेत < *कुरखेत्र
< *कुर्य खेत्र < *कृत खेत्र]

कुरताली—(सं०)—(१) किसान और दूसरे छोटे
किसान के बीच बटाई पर की गई खेती की
फसल का निश्चित परिमाण में विभाजन
(ब० भाग०, धू०-१)। [कुरत + आली < कृत
+ अर्थ < *कृतार्थ अथवा *कृताधिक या
कृष्टार्थ, कृष्टार्थिक] (२) फसल के आधे-आधे
या १/७ के बँटवारे की शर्त पर जमीन
जोतना। अथर्ववेद पर जमीन को उपजाने के
लिए लेना (धू०-१)।

कुरताली करल—(महा०) कुरताली की शर्त पर
दूसरे किसान का खेत लेकर खेती करना।

कुरथी—(सं०) एक प्रकार का वलहन, जो बोटा
छाल होता है और बड़ा कड़ा होता है।
[< *कुलथ, < *कुलथिका (संस्क०),
कुलथ कुलथा (पा०, ग्रा०), कुरथी, कुलथी
(हि०), कुर्यि (नं०), कुलथा (ब०) = जगली
कुर्वा। कुलथ (बं०), कुलथी (बं०, सि०)]

कुरथौली—(सं०) साधारण वास्तकारों के बीच
एक छोटा रथ। दे०—सिकमी। [दे०—
कुरताली]

कुरदन (सं०)—(१) (पट०)। दे०—कोखरी।
(२) मिट्टी का बना ओखर (पट०-४, मग०-५)।
[(देशी), मिला०—कुरद, कुरद, कुरद—
बैसा पाय। कुर्दक—कादर (पा० सं० म०),
कुरद=पाय, छिगी वस्तु]

कुराव—(सं०) वह परती जमीन, जो पहली बार
जोती जाती है (ब०-पू०)। दे०—खोल।

[(बेशी०), मिस्ता०-कुराय (हि०), कुरा (शा०)
= बकमं, भूमिविषय (वा० ल० म०),
मिस्ता०-कुराँउ (संता०) = बह पट्टी जमीन,
जिसमें जंगल काटकर बिना जोते बीज बोया
जाता है]

कुर्की—(त०) कर्जदार या जपराही की आयदाद की, जूग या जुरमाने की वसूली के लिए, सरकार द्वारा की जानेवाली बन्ती (ता०-१, भा०-१, पद०-४, कव०-५, भाष०-१)।
[कुर्की (ब०)]

कुलहर—(स०)—(१) जगदीश्वरी में बोलने के लिए माधव महीने में की जानेवाली जमीन की ओत (४०-५० साहा०)। हे०—माधव ओतन। (२) वह जमीन, जो एक बरसात से दूसरी बरसात तक केवल जोड़ी ही जाती है तथा दूसरी बरसात में उसमें धान का बीज बोया जाता है (४०-५०)। हे०—बोतरा बीजान। [देखी]

कुलिघा—(सं०) वह बैल, जिसका एक पैर दूसरे पैर से ढकराता है (पठ०-१) । [देशी]

कुलहाडी — (सं०) — (विह०) । दे० — कुलहाडी ।

कुल्हारी—(सं०) लकड़ी काटने तथा पेड़ काटने के काम में जानेवाला बसुला से कुछ लंबा एक प्रकार का हथियार। हे०—दंशा। पर्याय—कुल्हाड़ी (हि०)। कुल्हारा+ई (अन्तः प्र०), कुल्हारा < कुल्लारक (संस्कृत), कुल्लार (प्र०), कुल्हारा (हि०), लहान कुल्हाड़ (भरा०), कुल्हाड़ी (गज०)]

कुस—(सं०) एक प्रकार की पवित्र धातु (बिहा०, भाष०) । [कुश (संस्कृ०), कुस (पा०, प्रा०)
कुस, कुसा (हि०), कसा (ब०) कुंस (संता०)]
कुसवटना—(सं०) रोवे जानेवाले धातु में
लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा (उ०-प०) ।
पर्या०—कुसियाना (सं०) । [देशी, < कुश-
वर्तन (?)]

कुसही—(सं०) छोटे दानोंवाला काला मटर
(पट०, गया, ६०-पू०, पट०-४, बग०-५) ।
दे०-बजरी । पर्षा०—जेसबरिया (पट०-४) ।
[दूरी (३), मिला०—कोश, कौशिक=
गोल बरु]

कुसही केराव—(बं०) एक राव नृत्यप्र पौ
 और केराव का मिथन (पट०, र०-भू०, पट०-१)।
 दे०—बौ केराई। [कुसही+केराव, कुसही
 <*कोरा, <*कौशिक (बन्ध०), कौसिय
 (शा०), केराव<*कलस्य]

सुसाध—(सं०) वह बैल या भैंस, जिसका मुँह
 पीड़ा हो (पृष्ठ-१) । [देशी]

कुसियाना—(कं०)--(मे०) । दे०—कुसवटना ।
[देशी]

कुसिया मटर—(तं०) छोटे धाने का मटर,
 केराक (बू०१, मग०५)। [कुसिया+मटर<
 कुसिया<कुशिक<कोशिक, मटर<मठ<
 मट्ठ (बेत्तो)<*मृष्ट (?)]

कुसियार—(सं०) दंडाकार एक प्रसिद्ध वीणा,
जिसका रस मीठा होता है और जिससे युद्ध,
भीमी जादि बनाई जाती है, ईश (७०-५० नं०,
नं०-२) । दे०—अज्ज । [< *केशकर]

कुसिंहार—(सं०) एक प्रकार का ऊँक, जो छोटा और रुढ़ा होता है । [\angle *कोशकृत]

कुसुम—(बी०) बर (कुसुम) का पीला फूल,
जिससे रंग बनाये जाते हैं (बी० ३०, बी०-२,
मम०-५, चंपा०, पट०-४) । पर्या०—बर
(पट०-४), कुसुम (बी० ३०) फूल (बी०) ।
टि०—कुसुम से विमिश्रित रंग बनाये जाते हैं—
१. अतमाभी = हल्का नीला रंग ;
२. कामी = तेज बैंगनी रंग ; ३. काला =
काळा रंग ; ४. काहि सवुवा = गाढ़ा हरा
रंग ; ५. केसरिया = हल्का लाल-पीला रंग ;
६. गुलाब, गुलाबी = गुलाबी रंग ; ७.
चपई = नारंगी रंग ; ८. नारंगी = नारंगी—
पीला रंग ; ९. पैठानी = नील के साथ मिला
हुआ रंग ; १०. फलसाही = बर के रंग का
रंग ; ११. बादामी, बंदाभी = बादामी रंग ;
१२. बैंगनी = बैंगनी रंग ; १३. माछी =
मिताल वादा हरा रंग ; १४. लाल = लाल
रंग ; १५. लीला = वादा नीला रंग ;
१६. सवुवा = हरा रंग ; १७. सुरमई =
सुरमा-जैसा काळा रंग ; १८. सुरस = गाढ़ा

काल रं० । ११-सोनहवा = सुनहवा । नीला
 रं० । यद्यपि पूर्वोक्त रं० केवल कुसुम के नहीं
 बनते हैं, किंतु इसका आधार अवश्य रहता है ।
 माने रं० के बनाने में नील का सम्मिश्रण रहता है ।
 कुसुम के विषय में एक पहेली नीचे दी जाती है—
 “बाप रहल पेटे, पुत नेक बरिवाठ” ।
 (बाप कि बाप (कुसुम का बीज) पेट (बीज-
 कोष) में रह रहा था, उठी समय पुत (दुसुम
 बूल,) कपड़ों के रं० के रूप में, गारात चला
 गया [कुसुम, कुसुम्भ (संज्ञ०), कुसुम
 (पा०, प्रा०), कुसुम, (अज्ञ०), कुसुम,
 कुसुम, कुसुन (हि०), कुसुम, कुसुमा
 (ब०), कुसुनी (ति०), कुसुनी (ग०), कुसुन,
 कसुनी (ब०)]

कुहरा—(त०) मोस, कुहेसा (बं०-२)। पर्या०—
कुहा (ब०-४)। [कुहेडा या कुहेला]

कुहसा—(सं०) सबरे का कुहा (नीहार) —
(व० भाष०) । दे०—कूहा । [कुहेला,
कुहेडा, मित्रा०—कूहाय वा कुहेश्य < कुह
(कुहर) + आशय, शय]

कुहा—(सं०)—(पद०-५) । दे०—कुहा ।


कुहेस—(सं०)—(प०, उ०-पू०, म०, व०-पू० म०
म०-२) । वे०—कहा । [कुहेला, कुहेडा,
मिसा०—कहाशय, कुहेशय < कहा + आशय,
शय]

कुहेला—(सं०)—(प०, पट०-४) । दे०—कूहा ।

कच्चा—(सं०) (१) कलहान या जल कुहराने के लिए व्यवहृत ताड़ या सजूर के डंठल की चट्टी का कूचकर बनाई गई झाड़ू या कूची । दे०—सिरहक । (२) नारियल की सीक, सजूर के डंठल और पतियों एवं ताड़ की पतियों की सीकों जाड़ से बनी झाड़ू । (३) दे०—कुच्चा । (कूच्चा, कूचक (सङ्क०), कुच (भा०), कूच (हि०), कूचें (ने०), कुच्ची कुच्ची (बं०), कुच (बं०), कुचिएल (सं०), कूच्चे, कुच्ची (सि०), कुच्चे, कुचड़ो (गु०), कुच्चा (गरा०), कोस्स (सिहा०), कुच (रोमा०) = दाढ़ी ।

कूची—(सं०) छोटा कूचा। (ब०-प० गाहा०)
 दे०—तिरहस और कूचा। [कूचा+
 (अत्यन्त सूत्र० प्र०)]

कूँड़—(सं०)—(१) भोजन और अन्न रखने का मिट्टी का बड़ा बर्तन (घ०, पद०)। (२) हुए से पानी निकालने के लिए कोहरे का बना गोल बर्तन। दे०—ढोख। (३) *ऊँचा घेरने के कोल्लू का बड़ लोखला बाग, जिसमें जल धरा जाता है (घ०)। दे०—साग। डि०—पहले कोल्लू लकड़ी या पथर का होता था, किंतु आजकल तो कोहरे का होता है। इसलिए, बैसा लोखला बाग नहीं होता है। (४) डेंकुल, नैसा लोखला बाग (विहा०, बाज०)। पर्य०—कूँड़ी, कूँडी।



[कुड़, कुडरू, कुडी, कुडिका
(बं०), कुडिका, कुड वा०, प्रा०) ई०
कुडोक, (ब०) कुडू (कान०) = हंडा, कुंडी
(ब०), कुंडी (प्र०), कुंडी (हि०), कुन्नी
(प०, ल०), कडो (ने०), कुंडी (गु०, मरा०),
कडिया, कुँ, कुन् (विहा०)]

कूड़ा—(सं०) (१) अन्य रङ्गों के काम में जाने-
वाला एक प्रकार का मिट्टी का वर्तन (चूँड)।
पर्याय—कूकी (ब० भाग०)। (२) वही धधने
का मिट्टी का वर्तन, जो हाड़ी में मिट्टी लगाकर
बनाया जाता है (चपा०)। [कूंड, कूंडक]।

कूकी—(सं०)—(१) तबाने हुए रस को रखने
का बर्तन (इ० भाग०) । है०—मटुकी ।
(२)—(इ० भा०) । है०—कूडा ।
[कूडा+ई (जलपा० स्त्री० प्र०) <कूड]
(३) धूर (बन्धो०-१) । [कूट (संज्ञा०),
कूट(प्र०)] (४) है०—कूडा । [<कूड]

कूआँ- (सं०) भयमं एव जल निकालने के लिये बोवा,
गया बहुत गहरा और साधारणतः धोल कबजा
गद्दा, जो ईंट-पत्थर के बिना ही बनाया जाता है।
| कूप, (तट्टा०), कूपा(पा०), कुवा, कुआँ(पा०),
कूआँ (हिं०), कुआँ (बं०) कुआँ (ग्री०),
कूआँ, खुह (बं०), कुवा (ने०), कुवै (गु०), कुवा
(मरा०), अइ (बर०)। पं० खुह, (बं० नं०)
खुह (कश्मी०), खुहा (पं० पहा०), खूह (ति०)
शब्दों का मूल मयमत कसिय, कसुय (रोमा०)
है, जिसका अर्थ है—तंबू, गुड़ा। इसी प्रकार
खोह (हिं०, बं०, अहि०), खो (गु०) भी हैं।

किन्तु वस्तुतः पा० काकूपा = कूपा, मस्तूल, कुवो (गु०), कुंज (सि०), खुहा (ने०) की व्युत्पत्ति य समानता है (नेपा०)]
कूचल—(कि०) दूरना, पीछना, पीटना (गु०-१, पठ०-४, मग०-५, चंपा०), [कुच+ल (प्र०), मिला०—कुच, कुच (संस्क०), कुचि (प्रा०) = टटा कूचना (हि०), कुचान (व०), कचेइया (गो०), कचिनु (ने०)]
कूचा—(स०)—(गया, व० म०) । दे०—कूचा और सिरहूँ । [< कूचक (संस्क०), कुचक (प्रा०)]
कूट—(सं०)—(१) पुष्प का छोटा टुकड़ा, जो बूसा के समान होता है (चंपा०-१) । (२) मोटी लुगदी से बना कागज का एक मोटा भेद (बिह०) । [कूट=पुष्प, कुटिक, कुटित = बसा हुआ, मूसा हुआ ।]
कूटी—(सं०)—(शाहा०) । दे०—कूट ।
कूटल—(कि०) किसी चीज को ढँकी या ओझल में कूटना (चंपा०-१, पठ०-४, मग०-५, भाग०-१) । (वि०) कूटा हुआ (चंपा०-१) । [कुट्ट (संस्क०) कुट्ट (पा० प्रा०), कुट्टना हि०, कुट्टु (म०), कुट्टिना (अस०) कूटा (व०) कुट्टिना (गो०) कुट्टा (पा०), कुट्टा (अ०), कुट्टा (सि०), कुट्टा (मरा०), कुट्टे (गु०), कुट्टल (रोमा०) कुट्ट (वर०) कोटलवा (सिहा०) । जल बहाक और किले के मत से इन पदों का मत द विष है । मिला०—कूटो (कन्न०) = टोकर देना । कुट्ट (त०, कन्न०), कुट्ट (त०, व०—नेपा०)]
कूड़ा—(सं०) खाद बूझरस (गु०, सा०, चंपा०) । दे०—बादर । [कूट, संस्क०, कूट (प्रा०)]
कूड़ा कुलकुट—(सं०)—(गु०, सा०, चंपा०) । दे०—कूड़ा और खाद । [कूटा + कुलकुट = कुट + कुलकुट (दे०) कुलकुट—मृगा ।]
कूड़ा—(सं०)—(१) छोटी मछड़ी (पठ० गया) । दे०—गोहिया । (२) खेत या लालिहान में मछरी की गई औरड़ी (गया) । दे०—मछड़ी । [कूट कुलकुट कूटज]
कून—(सं०) दे०—कन । [कून (हि०), मिला०—कून, कून (नेपा०)]
कूना—(सं०) दे०—कन । [कून (हि०), मिला०—कून, कून (नेपा०)]
कूना—(सं०) दे०—कन । [कून (हि०), मिला०—कून, कून (नेपा०)]

कूप—(सं०) दे०—कूपा । [कूप]
कूर—(सं०)—(१) सूखी घास, बूझरस, गोबर आदि का ढेर (उ०-गु० म०, शाहा०) । [कूर] (२) नदी का किनारा (चंपा०-१) ।
कूरा—(सं०) कोयों की छोटी-छोटी ढेरी (म०-२, गु०-१) । दे०—कूरा । [कूर + ई (अल्पा०) लो० प्र०] < कूर]
कूरो—(सं०) जमीन, खेत आदि की नीस कट्टे की एक नाप (गु० म०) । दे०—बिगहा । [देशी]
कूहा—(सं०) सबरे का कुहरा । पर्या०—कुहेस, कुहेसा (पा०), कुहसा (व० भाग०), कुहेस (उ०-गु० म०, व०-गु० म०), कुम्हेस । [कुहेसा, कुहेडा, मिला०—कुहसाय, कुहेसाय < कुह (= कुहर) + आश्रय, शय, कोहक, कोहरी (हि०), कोहरी (ब०), कोवा-मोवा (अस०), कुहड़ी (अ०), कुहुर (पा०), कोहुर (म०), कोहई (मरा०), कोहरी (ने०)]
कूआँ—(सं०) तंबाकू के पत्तों में बिल बनाकर रहनेवाला एक छोटा विषय (म० उ०, म०-२) । दे०—लरका । [देशी]
कूकुरा—(सं०, -१) दे०—ककुरिया । [< ककुरिस्थि (२) (गया) । दे०—गंगट । कूकुरा + आँ] (?)
कूकुरल—(सं०) कूकुर के द्वारा ऊपर फकी हुई मिट्टी या बेंगी मिट्टीवाली जमीन (ग० उ०) । कूकुरल—दे०—ककुरल ।
कूकी—(सं०)—(१) राध को सफाई के कारण कम नोचना (चंपा०-१) । (२) पट की त्रिजाल (चंपा०-१) । (देशी), मिला०—[कूट=छल, कितव]
कूपी—(सं०) कोच का दो (गु० १) । [केपी < कूप + पी=पूषा—विषय]
कूवाड़—(सं०) दे०—कवाड़ । [कूपकच्छ]
कूवारी—(सं०)—(व० भाग०) । दे०—किवारी । [केवारी]
कूआल—(सं०) अन्न तोलनेवाला पुरुष (पठ०, व०-गु०) । दे०—हटवा । [(देशी) (?)]
मिला०—कूआल = वेनिया (रा० त०), आदिना (नी) = एक माप, क्रयण]

कयाली—(सं०)—(१) अन्न तोलनेवाले पुरुष का शुल्क (प्रति मन सेर-मर)—(व०-गु०) । दे०—हटवाई । (२) (उ० गु० म०) । दे०—किवाली । [केआल + ई (दे०—किवाली, केआली)]
केशीट—(सं०) मल्लाहों की एक शाखा (म० उ०) ।
केशीटीन—(सं०) (१) एक प्रकार की घास (वर०-१) । (२) मटों में नाचनेवाली देवदासी (चंपा०) । (३) केवट (वाति-विशेष) की स्त्री । [मिला०—केशी, केशीति मुस्तक = एक घास (म० वि० हि०)]
केशुरल—(कि०)—(१) जाड़ा आदि के कारण मवेशी या किसी व्यक्ति का सिकुड़ा जाना (चंपा०-१) । (२) पाखा और एक रोम-विशेष के कारण पीयी का सिकुड़ना । (वि०) सिकुड़ा हुआ । पर्या०—केशुरल, केशुरल । [केशुर + ल (वि० म०) < केशुरो < ककुराटक]
केशवारी—(सं०) कलों का गया बागीचा (शाहा०) । दे०—गवुनी । [केव + वारी, केव < केतकी, कटली अथवा केदार + वाटिका > वारी]
केशकारि—(सं०) आदिबन, कात्तिक और बगहन का महाना (वर०-१) । [(देशी), मिला०—कात्तिकदि (?)]
केशकी—(सं०)—(१) एक प्रकार का घान (वर०-१) । (२) केवड़ा का फूल । [केतकी]
केशरपार—(सं०) ऊँस की झाड़ी फसल को काटने-वाला (पठ०, गया) । दे०—बेंगेडीहा । [केतार + पार < केतारी + पार < कान्तर + पार । पार = अंत, पारयति = समाप्त करता है, पार (= टट-पाट)]
केशार—(सं०) एक प्रकार का ऊँस, जो पनला और मंदा हुआ करता है तथा कात्तिक में पानेवा होता है (गया, व०-गु०, मग०-५) । पर्या०—केशारा (पठ०), केवाली (सा०), केवारी (शाहा०), रौंदा (व०-गु०) । [कान्तर]
केशारा—(सं०)—(पठ०) । दे०—केशार ।
केशारी—(सं०)—(म०, पठ०, गया, व०-गु० बिहा०, पठ०-४, मग०-५, भाग०-१) । दे०—ऊँस । [केतार + ई < कान्तर] ।
केश डेहरी—(सं०) चणोपनी के अंत में अंत के एककोने में विंगण गीत के साथ एक मुट्ठी

मोरी (घान्य-बीज) के रोपने की एक रीति, पर्या०—पचाटी (पठ०-४, मग०-५), गव लगारवल (चंपा०) । [देशी, केन + डेहरी < कोय + देहली]
केनगाड—(सं०) चीनी-मिल की ओर से ट्रक पर लावकर लाये जानेवाले ऊँस पर बंधा हुआ वह कमचारी, जो रास्ते में उस ऊँस की रखवाली करता है, ताकि कोई उसमें से ऊँस ले न ले । [केन + गाड < केन + गाई (म०)]
केना—(सं०)—(१) अनाज के खेत में होनेवाला एक पर्व-खाद्य घास (पा०, गया, पठ०-४, मग०-५, म०-२) । दे०—कनवा । [देशी, मिला०—कण]
केना—(सं०) (पा०-म०, पा०) । दे०—कनवा । [देशी, मिला०—कण] ।
केनौला—(सं०) एक झाड़, जिसके फल की चटनी बनती है । पर्या०—करीवा (गु०-१, मग०-५) । [कुन्दुल]
केसाम—(सं०) गुड़ (ताजा) मकीन (कफा) के रस को उबालकर गाढ़ा करके बनाया गया पदार्थ (गया) । दे०—मदक । [केसाम < केसाम (अ०)]
केरवा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (वर०-१, पठ०-४, गया०-५) । [केरा + वा < केला < कदली]
केरवी—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (वर०-१) । [केरवी < केला < कदली]
केरा—(सं०)—(१) लोहार, बड़ई, नाई और धोबी को किसान की ओर से मिलनेवाली घान्य की एक छोटी राशि [जिसमें धोबी भूजाओं (पौजा) के बीज में आती है] । दे०—लरधन । [(देशी), मिला०—केर + (मात) यथा—अंकमाल > अकवार अथवा कोल, कोड (= पौजा)]
केरा—(सं०) केला, एक प्रसिद्ध फल । [बिहा०, भाग०-१] [कदली] (संस्क०), कयली, कयलि (प्रा०), केरी, केरा (ने०), केला (कुना०), केला (ब०, अस०), केला (हि०, व०), केला = केला, केवरी = पोषा (सि०), केला (गु०) = केले का पौधा, केला (गु०) = केला, केला, केला, केला (मरा०), केला, केला (मि०)]



केशरी

इन सभी पर्यायों का (संस्कृत, प्रा०) के 'कदली' और (ग्रा०) के 'कवली', 'कवली' शब्द से स्पष्ट संबंध नहीं दी जाता है। केवल हि०, ब०, अर०, प०, मरा० और संभवतः गुजरा० के पर्यायों का ही संबंध इनसे मिलता-जाता है, किन्तु पु० के पर्याय का कोई संबंध नहीं है। ब० की छोट-कर ऊपर के पर्याय और पु० के पर्याय प्रा० के केली, केरी से संबद्ध हैं और ये दोनों संस्कृत के कदली से व्युत्पन्न नहीं हैं। जे० प्राइल्सकी (J. Prylowski—MSL, XXII, P. 208) के मतानुसार 'कदली' शब्द आग्नेय-एशियाटिक से उधार लिया हुआ है, जिसमें 'की' के पहले पूर्वसर्ग (prefixes) 'क' और 'त' लगते हैं। इनमें 'की' प्रत्यय प्रतीत होता है। क्या प्रा० का 'केली' आग्नेय-एशियाटिक 'कालि' से व्युत्पन्न हो सकता है? डब्लू० माइजर (इडि० सिंह० पु०-१७) के अनुसार 'केलेक'—(सिंह०) का 'क' साधुव्यापक है, किन्तु यह मत उचित नहीं दी जाता। यह शब्द वस्तुतः किसी दूसरे मूल शब्द का व्युत्पन्न रूप हो सकता है—जैपा०।]

केराओ—(सं०) मटर। [कलाय]

केरावल—(०) दे०—किरावा।

केराब—(सं०) छोटे दानों का मटर (विहा०, ब्राज०)। दे०—मटर। [कलाय (संस्कृत), कलाय (ग्रा०), कलाइ (ब०, अर०)]

केरावल—(वि०)—जड़ी फलपातले जंत से घास-पात मिश्रित, निकोमी करना (पु०-१, मग०-५)। [केरा+ केराव आवल (प्र०) < *किर (यवा-किरति) < *कृ (विशेषे)]

केरीनी—(सं०) (१) छिछली कोड़ाई; कुरी या कुदाव जादि से की जानेवाली हल्की कोड़ाई (बं०-५, म०)। दे०—कुरियावा। पर्या०—किरीनी (मग०-५)। (२) छिछली कोड़ाई करके बनाज के जंत की घास जादि की तकाई (म० ज०, ब० भाग०, इ० पु०)। दे०—कोहनी। [केर+ कोनी < *किरय < *कृ (विशेषे)]

केरासार—(सं०) अच्छी किस्म का एक भोटा

बगुनी धान (पु०-१)। [केला+सार < *कदली+शालि]

केरीनी—(सं०)-(१)-(ब० भाग०)। दे०—केरीनी और कुरियावा। (२)-(इ० भाग०, इ० पु०)।

दे०—केरीनी और कोहनी। [केरीनी < केरीनी < केराना < *किरय < *कृ (विशेषे)]

केवई—(सं०) एक प्रकार की मछली (बं०-१, सा०-१)। पर्या०—कवई (बं०-५, म०-२)।

[*कविक, *कविक]

केवलहा—(सं०) छोटे दानोंवाला काक गेहूँ (गवा)। दे०—लकड़ा। [देरी, सं०—केवल+हा (प्र०) < केवल (विहा०)=काली चिकनी मिट्टी]

केवाल—(सं०) काकी पचवृत्त काली जमीन, जिसमें ८५ प्रतिशत मिट्टी का अंश रहता है। पर्या०—करार (ब०-पु०)। [केवाल, कासार] कहा०—'जल के बेंटी जल केवाल के जंती'—असल माँ-बाप की बेंटी और केवाल जमीन की जंती अथवा फलदायक होती है (पट०-४)।

केवाला—(सं०)-(१) जल के प्रवाह में या नहर चला लेकर जमीन बेचने की प्रक्रिया। (बं०-१, पट०-४, मग०-५, म०-२, भाग०-१)।

केवाला देवाल (गुहा०)=कवाला देना।

केवाला सिखल (गुहा०)=किसी के नाम से अपनी सम्पत्ति लिख देना। केवाला सिखावल (गुहा०)=किसी से केवाला लिखाना।

कवाला—(सं०) (२) वह दस्तावेज, जिसके द्वारा सम्पत्ति दूसरे के अधिकार में दी जाती है।

केवाली—(सं०)-(सा०)। दे०—केतार।

[केवाल+ई < केवाल (मिट्टी)]

केवाही—(सं०)-(साहा०)। दे०—केतार।

[मिला०—केवाही]

केसर—(सं०) कश्मीर की घाटियों में होनेवाले एक प्रसिद्ध फूल का रंग, जो पीलापन लिये, काक रंग का, सुगंधित एवं बहुमूल्य होता है और जीवन की वस्तुओं या पूजा-सामग्री के लिए व्यवहृत होता है। [केसर]

केसरिया—(सं०)—दे०—कुसुम। [केसर+रिया (प्र०) < *केसर]

केरी—(सं०) जूट के ऊपर के केरों का गुच्छा। दे०—जूटा। [< केरिक]

केरीर—(सं०)-(१) लम्बे दानोंवाले धान का एक उत्तम प्रकार (पु०-१, म०-२)। (२)

एक कंद की जाति का एक भीटा कंद, जो कच्चा खाया जाता है। (३) चौर में होनेवाला एक छोटा कंद, जो मोचे का तरह होता है और कच्चा ही खाया जाता है।

[क+सौर < केरीनी+शालि वा केसर+शालि]

केहुनी—(सं०)-(१) दोनों मूजाओं के मंदर भरकर खानेवाली फल का परिमाण (पु० म०)।

दे०—पौजा। (२) कोहनी, हाथ और बांह के बीच की छवि। [< कपोशि = केहुनी]

कैत—(सं०) छोटे कंकजैता एक प्रकार का जट्टा फल (गुहा०-१, पट०-४)। [कपित्थ (संस्कृत), कद्वय (ग्रा०)]

कैत—(सं०) एक प्रकार का चाप-बंसा श्वेत बारी-बाका संज्ञा फल, जिसकी तरकारी बनती है (सा०)। दे०—चिरिया। [सं०— < *रवेता < रवेतराजि (संस्कृत), कैता भिन्ना (सं०)]

कैता—(सं०)-(पु० म०, पु०-१) दे०—कंत और चिरिया।

कैदक—(सं०) जमींदारों और किसानों के बीच का एक प्रकार का हिसाब, जो कागज की एक चिट पर लिखकर बंडल में रख लिया जाता है। यह वही में नहीं लिखा जाता है। दे०—सबलक [देरी, सं० < कायदा < कायदः (प्र०)]

केरियार—(सं०)-(साहा०)। दे०—कोरार। [केरि+यार < केदार+वाट, कदली+वाट, वनटला+वाट]

केरी—(सं०) कदल के कोवे का ऊपरी भाग, जिसमें कोया छिपा रहता है (पट०-१)। पर्या०—मोथी (सं०-५) [देरी सं० < *कवरी]

कैल—(वि०) पीताभ-भूषण पशु (पट०-१, पुन०-१, म०-२)। पर्या०—कैला कडल

(बं०)। [कपिल (संस्कृत), कयिल (ग्रा०)] कैला—(वि०)—दे०—कल।

कैलाएल—(वि०)—फल की बाट की दूध (अथ के रूप में) होने की अवस्था को प्राप्त करना।

(वि०) पकती हुई फल। दे०—हबसाएल। [कैला+एल (वि० प्र०) < *कपिल]

कैला गैल—(वि०)—(पट०, पट०-४, मग०-५)। दे०—कैलाएल और हबसाएल। [कैला+गैल < कपिल; गैल < गएल < गयल < *गम]

कैलिया—(सं०) दे०—कोहली। [सं० < कपिल] कोंकडडल—(सं०) (१) कंकड़ का बिल (बं०-१)

(२) कंकड़ के बिल के ऊपर की मिट्टी। [कोकड+उल < *ककड+कुल]

कोंकड़ा—(सं०) कंकड़ा, एक जलीय जंतु, जिसके आठ पैर और दो पंजे होते हैं। यह आगे-पीछे समान गति से चल सकता है। यह धान के क्षेत्रों से लेकर समुद्र तक में पाया जाता है। [< ककडक]

कोंकड़ियाइल—(वि०) रोय या पाले से किसी पोथे के पत्ते का सिकुड़ना या संकुचित हो जाना (बं०-१, मग०-५, म०-२)। पर्या०—केंकड़ियाएल (पट०-४)। [कोंकड़िया+आइल < *कोकड़ा < *ककडक]

कोब—(सं०) महुआ के फूल का छत्ता (पट०-४, मग०-५, बं०-१)। दे०—छत्ता। [< कूब, कुबू, गुबू]

कोहिला—(सं०)-(१) एक पशुआय घास (बं०-१, उ० म०)। (२) चौर में होनेवाला एक जलीय पोथा, जिसके बटल से बिबाह का और बनाया जाता है। [(देरी), मिला०—कुष्ठ (संस्कृत), कूठ (हि०)]

कोपड—(सं०)-(१) पशुओं का एक ऐंव, जिसमें सींग की जड़ में पत्तें उगड़ती हैं। दे०—गाड़ा। (२) बाँस की जड़ से निकला हुआ नया कोमल बंडुर (बं०-१, म०-२)। [कोपड < कोपल < कोमल—(हि० म० सा०), < कडमल (संस्कृत) < कुपल (ग्रा०), कोपाल (हि०) कोपली (गु०), कोपिला (ने०), कोम या कोम्य (मरा०)]

कोपल—(सं०) बीस की जड़ का नया बंडुर (सा०-१,



केरी



कैता

मग०-५, पट०-४)। [कोमल < कोमल—(हि० सा० सा०), < कुडमल (संस्क०)]

कोहड़ा—(सं०) कट्टर की जाति का एक गोल फल, जो रंग में हरा या पीला होता है तथा जिसकी तरकारी भीठी होती है। पर्या०—कोम्हड़ा (उ० म०), कदीमा (पु० म०, म०-२)। [< कुम्भापट्टक, (संस्क०), कुम्भापट्ट (जा०), कुम्भापट्टी (ने०); कुम्हा (सं०) कुम्हा (हि०), काम्हा (सिंह०), (व० < व०)। कूहपट्ट कोहपट्ट, (जा०), कोहली (देवी०)—मिला०—कुम्भापट्टा (संस्क०), कोहड़ा, कोहर (हि०), कोहलु (गु०), कोहला (मरा०), कोहलें, कोहलें, कोहलें (मरा०)]

कोहरबट्टी—(सं०) कुम्हार द्वारा काम में लाई जानेवाली मिट्टी (सा०-१)। [कोहर+बट्टी < कुम्हार, (हि०) + मिट्टी < कुम्भकर+मृत्ति] कोष्ठा—(सं०) (१) कटहल के फल का बीज-कोष, जिसे लोग खाते हैं (बं०-१, पट०-१, पट०-४, मग०-५)। (२) रेशम के कीड़े का घर (बं०-१)। (३) जोड़ का डेला (हं०)—(बं०-१)। (४) ताड़ के फल के बीज-काष से निकलनेवाला एक चनेत काष्ठ। [कोशक < बीजकोशक (संस्क०), कोसा, कोसा (हि०)]

कोइन—(सं०)-(१) महुए की गिरी (बीज), जिसे तेज निकाला जाता है (म० उ०, उ०, बं०-१, पट०-४, मग०-५)। (२) महुए का फल। पर्या०—गडुआ (म०-२), कोइनी (उ०-पु० म०, भाज०), कोइन्दा (उ०-पु० शाहा), कोयन कोइन (म०-१), कोयँइ (सं० व०) कोइना (भाज०)। [को+इन < कोशिन]

कोइनी—(सं०)-(१) (उ०-पु० म०, भाज०)। दे०—कोइन। [को+इनी < कोशिन]

कोइन्दा—(सं०)-(१) (उ०-पु० शाहा)। दे०—कोइन। [को+इन्दा < कोआ+इन < कोशिन]

कोइया—(सं०) अनाज के मांझर को बीज हानि पहुँचानेवाला एक प्रकार का पतला, काला कीड़ा। [देरी]

काइरी—(सं०) हिनुओं की एक जाति, जो साव-पात की संती करके अपनी जीविका चलाती है। पर्या०—कोयरी (वर०-१)। [कोइर+ई, कोयर (हि०) = साव पात; < कोपल < *कुडमल]

कोइल—(सं०)-(१) आम के बीज का सूदा या गिरी, जिसकी रोटी भी कहीं-कहीं पकाई जाती है। (म०-१)। [देरी]

(२) जनावर की वह बाज, जिसमें पाका या चारा योग्य नया हो (पट०, गवा)। दे०—मराएल। [कपिल] (२) एक पक्षीविशेष, जिसका रंग काला होता है तथा बोली बड़ी भीठी होती है। पर्या०—कोयल (बं०-१)। [कोकिल]

कोइलखो—(सं०) जाम की फसल को हानि पहुँचानेवाली काटदार एक बास। पर्या०—गोलुला (पु० म०, बं०-१, पट०-४, मग०-५, म०-२), गोरगुल (पु०), बंछी (साहा)। [देरी], सं०—कोकिलाख]

कोइलपत—(सं०) चोट लगने के कारण दाब लगा हुआ आम (पट०-१, पट०-४, मग०-५, म०-२, बं०-१)। [कोइल+पत < कोकिल+पद (= चिन्त) (१)]

कोइला—(सं०)-(१) फसल के पुष्ट होने की अवस्था। (२) लकड़ी कपवा परधर का कोयला, जो जलाने के काम आता है। [कोइल+आ < *कोकिलक, कपिलक]

कोइलाइल—(सं०) किसी जग या फल का पुष्ट होना (साहा-१)। [कोइल+आइल (प्र०) < कोइल, कइल < कपिल]

कोइला माता—(सं०) हुए की सुरक्षित रखने-वाली कल्पित देवी। [कोइला+माता। सं०—< कम्हा माता, कोकिला (देवी) (म०-१, हि०)]

कोइली—(सं०) चावल में लगनेवाला विषम प्रकार का कीड़ा। पर्या०—कोइया, कोशिया। [(बं०) सं०—< कपिल]

कोकटि—(सं०) एक प्रकार की काल कपास, जो बाघों में पकती है। इसकी संती विरलत में होती है तथा इसके सूत बड़े महीन और सुन्दर होते हैं। पर्या०—भदैया। [देरी]

कोकड़ा—(सं०)-(शाहा)। दे०—कोकड़ा। [कोकड़ा < कोकड़ा < *कोकटक]

कोकला—(सं०) ठंडा में होनेवाला एक प्रकार का कड़ा फल। इसका फला हरा होता है, किन्तु पकने पर काल हो जाता है। पर्या०—विशकोष (भाज०-१)।

कोकला के साग—(सं०) एक प्रकार का साग। [कोकला के+साग]

कोचिआइल—(सं०)-(१) महुए के पेड़ में फूल के गुच्छों का होना (बं०-१, पट०-४, मग०-५)।

कोचिआवल—(सं०) साड़ी या धोती को चुनना (बं०-१, पट०-४, मग०-५, म०-२)। [कोचि+आवल (प्र०) < कोचि < *कुक्ष, कुक्षी < *कुच]

कोठला—(सं०) दे०—कोठला, कोठी।

कोठिया ईटा—(सं०) हुए बाघ की गोल परिधि बनाने के लिए बंधवत्ताकर ईटा (उ०-पु० म०)। दे०—बकी। [कोठिया+ईटा < कोष्ठ+इटक]

कोठियारी—(सं०) गाँव में रहनेवाले शिल्पियों और दुकानदारों आदि के जमींदार के द्वारा भूमि-कर के रूप में लिया जानेवाला शुल्क (बं०-१, म०)। दे०—कोठिया। [कोठिया < कोठी < (सं०) *कोष्ठ]

कोठिबौ—(सं०) बर्तों से बचाने के लिए बाल-महित कटी हुई फसल का लगाया हुआ ढेर (सा०) पर्या०—गूँज, गुँजौर (उ०-पु०, पट०, गवा, उ०-पु०)। [कोठिबौ < कोठिया < कोठी < कोष्ठक]

कोठिला—(सं०)-(१) बाँस की कट्टी आदि से बने गोल बाँचे (कोठी) से सुरक्षित कुर्वा (पु०)। पर्या०—गडौर्वा (पट०)। [कोठि+ला (प्र०) < कोठी < कोष्ठ] (२) दे०—कोठी। [कोठि+ला (मत्स्य० प्र०) < *कोष्ठ]

कोठिखी—(सं०)—दे०—कोठी। [कोठी+खी (मत्स्य० प्र०) < *कोष्ठ]

कोठी—(सं०)-(१) हुए की दीवार को चिरने से बचाने के लिए कभी-कभी प्रयुक्त बाँस की कट्टियों या बूँस की टहनियों से बनाया गया

गोल बाँचा (उ०-पु०, भाज०)। पर्या०—कोल (उ०-पु०, मग०-५), कोड़ (उ०-पु०, पट०, भाज०), कोल (बं०-पु०), बिबो (कहीं-कहीं व०)। (२) मिट्टी या ईट का बना हुआ एक प्रकार का गोल या चौकोर घेरा, जिसमें जल रखा जाता है। (बिहा०, भाज०)। पर्या०—कोठिला, कोठिली। (३) अथ, भूसा आदि के रखने के लिए खुली हवा में पुवाल, फट्टी, या खड़ का बना हुआ एक प्रकार का घेरा। दे०—बकार। (४) बाँस के पोखों का एक समूह (बं०-१, भाज०)। [कोठ+ई (प्र०) < *कोष्ठ]

कोड़ देल—(मुहा०)—जुरी आदि से गहरी कोड़ाई करके घास आदि निकालना (उ०-पु०, उ०-पु० म०, म०-२)। दे०—जर जुरपी लोहक। [कोड़+देल < कोड़ल (बिहा०) कोड़ना (हि०) < *कुट् (खेने), अथवा *कुह् (बँकस्थे)। (सं०) < कू+दा < *क (सबधारणे) से नामधेय प्रत्यय के साथ व्युत्पन्न होकर बना हो।]

कोइन—(सं०)-(१)—(उ० भाज०, म०-२)। दे०—कोइनी। (२) एक फूट ऊँचे जनेरे, बाजरे, टेंगुनी आदि की बीत या कुवाल आदि से की गई कोइनी (गवा, बं०-१, म०-२)। दे०—बिदाह।

कोइनी—(सं०)-(१) कोड़ाई, कोइने की प्रक्रिया। दे०—कोइल। (२) जनावर के जेत की छिछली कोड़ाई करके की गई घास आदि की सफाई। (३) सफई आदि के पोखों से जग बाने पर, खड़ के आसपास की मिट्टी को बीरे बीरे कुदाव से कोड़ कर हटकी कर देने की प्रक्रिया (म०-१, म०-२)। पर्या०—जमनी (बं०-१, म०), निकोनी (पट०, गवा, उ०-पु०), छेजनी (उ०-पु० शाहा), कोइन, खड़ (उ० भाज०)। (४) एक फूट ऊँचे जनेरे, बाजरे, टेंगुनी आदि की कुवाल से की गई कोड़ाई।

कोइल—(सं०) कोइला, कोइना (वर०-१, पट०-४, मग०-५, म०-२) पर्या०—पारल, तामल (बं०-१, म०), छेजल (उ०-पु० शाहा),

[कोइल (प्र०), कोइना (हि०), मिला०—
✓कुट (सं०), ✓कुह (सं०)] । (सं०)—
कु+दर<✓कु (बनवाने) से ना० या० प्र०
लगाकर बना हो]

कोइल—(वि०) कुदाल से कोदी हुई जमीन
(बं०-१) । [कोइ+ल (वि० प्र०)]

कोड़ा—(सं०)—(१) ठल की दूसरी छिछाई (पट०)
पर्या०—दोसर पटावन (सं०), दोसरी
पटावन (ब० भा०) । कोड़नी (पट०-४,
मं०-५) । [देरी, (सं०) < कोइल (बिहा०),
कोइना (हि०)] (२) (बं०-१) ।
दे०—कोरा । [कलर=बालों का गुच्छा] ।
(३) बाग तोपने के लिए बने घूर का डेर
(बं०-१) । पर्या०—घूर (मं०-२, बं०-३),
घुरौरा (पट०-४, मं०-५) ।

कोइर—(सं०)—(१) वह जंतु, जिसमें साग-भाजी
बोई जाती है (बं०-साहा०-१) । दे०—कोरार ।
(२) वह जंतु, जो बार-बार कुदाल से कोड़ा
काता है (साहा०-१) । (३) नाव के पास की
उपजाऊ भूमि । (४) वह जमीन, जिसमें कुल-
हारी में लगाये जानेवाले पीछे पैदा होते हैं
(पट०, ब०) । पर्या०—कोरियार (पट०, ब०),
कोरॉट (ब० मं०), कैरियार (साहा०), बारी
(मं०), सतिहानी (ब० मं०) । [कोड़ा+आर,
कोड़ा<कोण अथवा कोइल (बिहा०), आर
(हि०) अथवा <केदार वा कालमृद, गैरमृद
अथवा (सं०) <कडर (=पीला) ?]

कोडी—(सं०) दे०—कोरी ।

कोइ—(सं०)—(१) सामा (व्यापार) के बावल को
दूध में पकाकर बनाया गया एक प्रकार का मोज्य
पदार्थ (वर०-१) । पर्या०—कोड़ा (मं०-२) । (२)
एक प्रकार का मीषण चर्मरोग । [मिला०—कुण्ड]
कोड़ा—(सं०)—(१) मकई की बड़ी बाल
(मं०-१) । (२) सोने-चांदी के आभूषण को
भूजने के लिए उसके ऊपर बना हुआ छेद
(मं०-१, पट०-४, मं०-५, मं०-२) ।
[मिला०—कुंडल]

कोइ—(सं०)—(१) हल या गाड़ी में चलनेवाला
मोटा और बालसी बेल, जो कार्य करते समय
अधिकतर बैठ जाता करता है । पर्या०—पुरुआ ।

कोको—'कोड़ि बरद के फेरि बहुत' =
कोइया बेल ज्यादा हुकता और उच्छवास
मेता है । (२) कोइ-रोग-वस्तु [कोइ<कोदी
<कुण्ड]

कोइयाइल—(वि०) वह पीसा, जिसमें कली
का गई हो (बं०-१) । (वि०)—फिसी पीने में
कली लगना (बं०-१, मं०-५, पट०-४) ।

[मिला०—कुण्ड=बाली बादि का अन्न भाग ।

कोरक—(वि०)—कोरिक्त, कुहमल]

कोइया—(सं०) दे०—कोइली । [मिला०—
कोल=एक प्रकार का घृण । कुह=एक
प्रकार का रंग]

कोइला—(सं०) बाग के कोत में उपनेवाली एक
बास (उ० मं०, वर०-१) । इस बास के उठल
से बिबाह के लिए और और इसी प्रकार की
दूसरी बीजें बनाई जाती हैं । दे०—सैंडई ।

[(सं०) < *कुह, कुल्ल अथवा कुट]

कोडी—(सं०)—(१) ताल का वह पंक्ष, जिससे रस
निकाला जाता है (उ०-मु० मं०, मं०-२) ।
पर्या०—बहिरा (उ०-मु० मं०), बांसी सिसबा
(उ०-५० मं०), फनाहु (उ०-५० मं०) ।
(२) वह हलकी जमीन, जो अपनी उर्वराशक्ति
भो चुकी हो । दे०—मूल । (३) (मं०-३)
दे०—वधवा, कोड़ि । (४) बली । [कोदी (हि०)
... कुछिन् (सा० प्रथ०)]

कोतनयना—(सं०) वह बेल, जिसकी बाँछ लाल
और मोतर कोटर में बंसी हुई हो (पट०-१) ।
[कोत+नयन+आ (प्र०), कोत<कोट<
कोटर+नयन]

कोइई—(सं०) (साहा० बं०) । दे०—कोदो ।
[कोदो+ई (सं०) <कोदव]
कोइवा धन—(सं०) कोबी की तरह होनेवाला
एक छोटा भाग (पट०-१, मं०-५, पट०-४) ।
[कोइवा+धान<कोदवक+धान्य] ।

कोइर—(सं०)—(१) कावड़ा, कुदाल । गिट्टी
ओवने का छोड़ का बना एक औजार (उ० भा०,
बं०-५, मं०-५) । दे०—कोरा । [कुदर, कुदल,
कुदल] (२) (बं०) दे०—कुदारी ।

कोइरि—(सं०)—(मं०-४) दे०—कुदारी ।

कोइरी—(सं०)—दे०—कुदारी ।

कोदो—(सं०)—(१) सामा की जाति का एक

कवड इस जन्म की विशेषता यह है कि मूसी-
सहित रखने पर यह पचासों वर्ष तक सुरक्षित
रहता है । पर्या०—कोदई=छोटा कोदो
(साहा०) । (२) एक प्रकार की बवाई फलन
(पट०-४) । [कोदव (सं०), कोदव, कुदव
(मं०), कोदो (हि०), कुना०, बं०), कोदो,
कोदो, कोदो (५०), कोदोरी (सं०), कोदो
(गु०), कोदु (मरा०), कोदुरु (सं०)]

कोन—(सं०)—(१) (बं०, मं०, बं०) । दे०—कोनिया
जोत । [कोण (सा०) (?)]

कोनसिया—(सं०)—(१) (बं०, बं०-५० मं०) ।

दे०—कोनिया जोत । [कोन+सिया<*कोणशः
<*कोणसीत्य (<सीता=जोत की रेखा)]
(२)—दे०—कोनिया बर ।

कोनसी—(सं०)—(१) (बं०, मं०) । दे०—कोनिया
जोत । [दे०—कोनसिया]

कोनाकोनी—(सं०)—(१) (बं०) । दे०—कोनिया
जोत । [कोना+कोनी (सं०) <*कोणा-
कोण, (बं०-मं०) कोन, मूठो-मूठि बादि]

कोनासी—(सं०)—(साहा०) । दे०—कोना ।

[कोना+सी (प्र०) अथवा (सं०) कोणसीत्य
कोनाह—(वि०) दे०—कोनाहा । [कोना+ह (बं०)
<कोना<*कोण]

कोनाहा—(वि०) वह वस्तु, जिसमें कोना निकला
हो, कोना बना हुआ (मं०-१, पट०-४, मं०-५,
मं०-२, बं०, मं०-१) । पर्या०—कोनाह ।
[कोना+हा (बं०) <कोण]

कोनिया—(सं०) दाँस की फट्टी की सीकों का बना
फटकने का सामान जिसके तीन और गोल मेंड़
बनी होती हैं । (उ०-५० मं०, वर०-१) । दे०—
मड़रा । (वि०)—कोनियासा, कोने की ओर
(मं०-१) । [कोन+इया (बं०) <कोण,
कोणिक]

कोनिया घर—(सं०) वह घर, जो किसी कोने
में स्थित हो । [कोन+इया (प्र०)+घर<
कोण, <*कोणिक घर<मूठ]

कोनिया जोत—(सं०) एक काम से दूसरे कोने
तक की जलाई की रीति । पर्या०—कोन,
कोनसी (बं०, मं०), कोनसिया (बं०,
उ०-मु० मं०), कोनी (बं०), कोना कानी
(५०) । [कोनिया+जोत कोनिया<*कोण,

जोत<जोतल (बिहा०)] जोतना (हि०)<
जोतन / जुजु (मं०)]

कोनी—(सं०)—(बं०) । दे०—कोनिया जोत ।

[कोन+ई (प्र०) <कोण, कोणिक]

कोपड़—(सं०)—(बं०) । दे०—कोपड़ । [कोमल
(?) , कुहमल]

कोबी—(सं०)—(१) एक प्रकार की तरकारी का
छोटा पीसा, जिसके बीब में बड़ा पसरा हुआ
फल होता है । (२) ओषध के लिए प्रयुक्त
एक वनस्पति-विशेष । [कोबी<ग्री<गोजिहा
(सं०) कोबी, गोभी (हि०), दाबिराक,
दाबिराक गोजिया (बं०), पाथरी, मूठपथरी
(मरा०) ओपाथरी, मूठपाना, जिमी (गु०),
येदुनालुक चेट्टु, मरिलिक चेट्टु, (सं०)
घाउन (मं०), यलुना गले (बं०) कलाम रुमी
(का०), भरोप-कंनेज (बं०), पुतं-कोउदे]

कोम्हड़—(सं०)—(उ० मं०) । दे०—कोहड़ा ।
[कुम्माड]

कोयन—(सं०)—(बं० मं०) । दे०—कोइन ।

कोयरी—(सं०)—(वर०-१) । दे०—कोहरी ।

कोयला—(सं०) चूल्हे वा ईंधन में बकाया
जानेवाला लकड़ी का बनाया वा खान से
निकला ईंधन-विशेष । [कोयिलक (सं०),
कोल (बं०)]

कोयला फर्नेस—(सं०) कोयले से बनाया जाने-
वाला बड़ा चूल्हा, जो बड़ी-बड़ी मिकों और
फैक्टरियों में रहता है । ऐसे चूल्हों का उपयोग
वाष्प-शक्ति तैयार करने के निमित्त बड़े-बड़े
पीपों को गर्म करने के लिए होता है (बिह०) ।
[कोयला+फर्नेस<कोयला (हि०)+फर्नेस
(मं०), कोयला <कोयिलक]

कोरंजा—(सं०)—(१) वह मजदूर, जिसे मज-
दूरी में प्रवानत मकद रुपये ही दिये जात हैं
(उ०-५०) । (२) मोज-मडारे में दही-चूड़ा-
पूड़ी बादि का पक्का भोजन । इसके विपरीत
कच्चे भोजन को 'मतवान' कहते हैं । [(बेसी),
मिला०—कोरंजा <कोर+अनाज=बहु जन्म
जो मजदूरी में दिया जाय (हि० सा० सा०)]

कोरई—(सं०)—(१)—(साहा०) । दे०—कोरो ।

(२) (बं०) दे०—कोरो-१

कोरट—(सं०) वह स्टैंड, जिसकी देखभाल का

कार्य सरकार की ओर से होता है (सा०-१, पट०-४, बंधा०, नम०-५)। [कोर, कोर आदि वाहुर्त्स (ब०)]
 कोरवास—(सं०) पान की पत्तियों के आचार-स्वम्भ के बीच का बबकाइ (उ०-पु० ब०)। [कोर+वास, मिला०—कोर (हि०)=पत्ति, अंगी, करता। कोर=चोर, बगों की सधि]।
 कोरॉट—(सं०)-(१)-(२) (ब० ब०)। दे०—कोरार [(बेसी) (सं०) केदार+मूद, अथवा काला+मूद, गौर+मूद]। (१) कटे जादि के गड़ जाने से पैर के तलवे में हो गया बड़ा।
 पर्या०—कोरॉटी।
 कोरॉटी—(सं०)—दे०—कोरॉट (२)।
 कोर—(सं०) थोड़ा हाँकने का वाहुक। पर्या०—कोड़ा, वाहुक। [कोर (सं०)=बालों का गुच्छा]।
 कोराइ—(सं०)-(१) अनाज के कूटने-पीसने के बाद बालकर निकाला गया मिश्रक मोटा बंस (पट०, ब०)। विशेषकर इलहन रत्न के बाद निकली ऊपर की भूसी (पट०)। दे०—कोकर। (२) धावक या धिठरा कूटने पर उससे निकली वह महीन भूसी, जिसमें अन्न के ऊपर का महीन बंस मिला रहता है (बंधा०-१)। [बेसी—मिला०—कंडर, कंड्य < कंड (बेबने), कोडा (बरा०)]
 कोराई—(सं०) दे०—कोराय।
 कोराना—(सं०) बेलन के बबले नीकर को दिया जानेवाला अनाज (प० भू०)। दे०—मनी। [कोर+आना—कोरा + अनाज (हि०) सा०]।
 कोराबाल—(सं०) काफ़ी बाकु जमा हो जाने के कारण बेकार अमीन (सा०)। पर्या०—बलान (ब० प० ब०)। [कोरा+बाल < कोरा+बाल < कोरा < केवल]।
 कोराय—(सं०) रत्न का छिलका (भूसी), जो पत्तियों का पुष्ट भोजन है (पु०-१)। पर्या०—कोराई (पट०, बंधा०, नम०-५, मोब०)। [बेसी) मिला०—कंडर, कंड्य < कंड (बेबने)]
 कोरार—(सं०)-(१) दे०—कोड़ार; शोई, भीह। [कोर+आर, कोर < कोर्य; आर (हि०)

अथवा केदार (सं०), वा काल+मूद, गौर+मूद > गौरट, गोरॉट]
 कोरिबार—(सं०)-(पट०, नम०)। दे०—कोड़ार। [मिला०—वैदार्थ अथवा कदरिक]
 कोरी, कोड़ी—(सं०) पान की २० पत्तियों अथवा किसी की दूसरी वस्तु की एक राशि। बीस का समूह (ब० ब०, पट०-४, नम०-५, बंधा०, ब०-२)। पान के पत्तों के कुछ परिवान मिश्र-लित है—चोटया—पान की पचास पत्तियों की एक राशि (ब० ब०)। आधा डोली—पान की १०० पत्तियों की एक राशि। एक डोली—पान की २०० पत्तियों की एक राशि।
 ग० उ० ओर राहु० में निर्माकित परिमाण है—
 ७ डोली = १ कनवा।
 १४ डोली = १ अघरा।
 २८ डोली = १ पीया या पावा।
 ४ पीया = १ लेसा।
 १०८ डोली = १ लंडो (सं० ब०)।
 [बेसी) मिला०—कपदिनु (सं०), स्केर (सं०)]
 कोरीकरक—(पु०) पत्तियों द्वारा बार्द वस्तु का पुनः बनाव, रोमग (पानुर) करना (पट०, नम०)। दे०—पगुरी करक। [कोरी+करक; कोरी < कवल (< कवलो + कृ)।]
 कोरो (सं०)-(१) पान की पत्तियों का प्रथम बबलव (ब०, बंधा०, नम०-५)। पर्या०—कोरई (आहा०), इकरी (ब०, पु०, सा०)। (२) पान के बाब में ऊपर दिने गवे ऊपर का आचार-स्वम्भ। पर्या०—ऊंया (पट०, नम०, आहा०)। (ब० भू०)। (३) घर में लगे छप्पर का आचार-स्वम्भ। यह लकड़ी या बंस का होता है तथा कड़ी के रूप में काम में जाता है (बिहा०, बाब०)। [देशी, मिला०—कूद, कूद]।
 कोलटारा—(सं०) कोयला टालने या उसकाने की लोह की छड़, जिसका एक छोर टेढ़ा और दूसरा छोर हाथ में पकड़ने लायक बना होता है। (बिहा०)। दे०—बैकुड़ा। पर्या०—बैकुड़ा (हरि०)। [कोल (सं०) वा कोयला (हि०)+टारा (< टारना-हि०)]
 कोलबोसी—(सं०) (१) आम का दाबदार टिकोला (बंधा०-१)। (२) आम के टिकोले की कोयल मुठली (बंधा०-१, पट०-४, नम०-५)

(३) वह आम, जो थोटा साकर काला पड़ गया हो (आहा०-१)। [कोल + बोंसी < *कूलभाष, < *कलभाष]
 कोलवा—(हि०) कोने वाला, तंग अवह में पड़ने-वाला (ब०-१)। पर्या०—कोलक घर = कोनिवा घर (ब०-१), कोला (नम०-५)। [कोल + वा (ब०) < कोण]
 कोलवाइ—(सं०) बगीच का छोटा टुकड़ा, जो घर के पास हो (उ०-प०)। दे०—कोला। [कोल + वाइ (प०) < कोण]
 कोलसार—(सं०)-(१) दे०—गुड़ौर। (२) (पट०, नम०, पु०)। दे०—कोलुहार। [कोल + सार; कोल < कोलह < कूलहंडक (= तोड़नेवाला, नाचने की तरह धूमनेवाला) + सार < शाला]
 कोलसार, कोलुसार—(सं०) वह स्थान, जहाँ ऊपर पेरकर गड़ बनाने के लिए कोलु बैठाया जाता है (ब०-१, पट०-४, नम०-५)। [कोल + सार < कोलह + सार < शाला; कोलह—मिला०—कूलहंडक = तोड़नेवाला, आवर्त्त की तरह धूमनेवाला]
 कोलसुप—(सं०)-(१) अनेक प्रकार के अन्नों को फटकने, पंचने और चाकने के लिए प्रयुक्त एक साधन, जो बंस की कमाचियों या बूँध की सीकों का बना होता है। दे०—सूप। (२) अनाज फटकने के लिए प्रयुक्त एक साधन। पर्या०—डगरा (उ०-प० ब०, बंधा०), सुप। [कोल + सुप, कोला (बेसी) वा कोल < क्रोड, सुप < शूर्प]
 कोलहकड़—(सं०) ऊपर के कोलु की ठीक (दुस्त) रखने के लिए किसान की ओर से बड़ई को मिलनेवाला पुरस्कार (पट०)। दे०—पचरावन। [कोलह + कड़ < कोलह + कड़ < कादल (बिहा०) < कर्च < कृष्ण]
 कोलह पचरानी—(सं०)-(ब० भाग०)। दे०—कोलह कड़ और पचरावन। [कोलह + पचरानी, कोलह < कोलह, पचरानी < पचर (बिहा०), (हि०) < पचनिका (सं०) = हल का एक भाग, टुकड़ा]



कोलसुप

कोलासी—(सं०) दे०—कोलबोसी।
 कोला—(सं०)-(१) बगीच का वह छोटा जग, जो घर के पास हो तथा धाक-भाजी उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होता हो (आहा०, ब०-पु०, पट०-४, नम०-५)। पर्या०—कोली, कोलवाइ (ब०-प०), बारी (बंधा०, ब०), खंड, खंड (सा०, पट०) (बलुत: इसका अर्थ है ज्वरत घर), चेबारी (गया), रत्की (बैक नाम ब० भाग०), कोनासी (बैक साहा०)। (२) दे०—कोलजा। (३) चारों ओर डरेर (मेड़) से घेरकर बनाया गया छेद (बंधा०-१)। [कोल = गली, तंग रास्ता, तंग जमीन का एक टुकड़ा]
 कोलिदेवी असाभी—(सं०) साधारण कारतकारों के स्तर से नीचे का एक छोटा रंगत (पु० ब०)। दे०—सिकमी। [कोलिपती + असाभी]
 कोलिवा—(सं०) चारों ओर मेड़ से घिरा हुआ क्षेत्र का छोटा टुकड़ा (आहा०-१, बंधा०, ब०-२)। [कोल]
 कोली—(सं०)-(ब०-प०)। दे०—कोला।
 कोलह—(सं०) ऊपर या तेल पेरने का यंत्र (बिहा०, बाब०)। पर्या०—कोलु, कल। दे०—कोलु। [< कूलहंडक]
 कोलहकर—(सं०)-(ब० भू०)। दे०—कोलहकड़ और पचरावन। [कोलह + कर < कोलह + कर]
 कोलुआड़—(सं०) वह स्थान, जहाँ कोलु गाड़ा जाता है (बंधा०-१, पट०-४, नम०-५, भाग०-१)। [कोलु + आड़ < कोलह + वाट < कूलहंडक + वाट]
 कोलुहार—(सं०)-(१) ऊपर पेरने तथा गड़ बनाने का स्थान। पर्या०—गोलौर (ब०-प० साहा०), कोलसार (पट०, नम०, पु०), कोलु-आड़ (बंधा०-१)। (२) दे०—गुड़ौर। [कोलु + आर < कोलु + आड़ < कूलहंडक + वाट]
 कोलु—(सं०)-(१) ऊपर पेरने की कल, जो नाच-कल लोहे की बनी होती है और इसमें तीन बेलन लगे रहते हैं। पहले यह लकड़ी अथवा परधर का, आश्चर्य के तेल के कोलु की तरह, बना होता था और इसमें ऊपर काटकर दिया जाता था।



कोलु

ऊपर मोहें का मोहन लगा रहता था, जिससे उसका टुकड़ा पेराला था। (२) तेल पेरने की, लकड़ी की बनी कल।
 मिछा-कुलहंडक (संस्कृत), कोलहुओ (देशी), कोलहु (हि०), कोल (ने०)।
 कोल्ल—(सं०) पारिवारिक संपत्ति के अतिरिक्त जमा की जायेंवासी व्यक्तिगत संपत्ति (बं०-१, पट०-४, मग०-५)। [(सं०) < कुसुल कोल]
 कोस—(सं०) ३५२० गज या दो मील की दूरी की एक माप। (बगल के अनुसार इसकी दूरी में अंतर होता है)। [देशी]
 कोसल—(सं०) गुप्त जन। पर्या०—पौगंडी, कुशी, धरोहर (प०-१, प०-२, मग०-१)। [कोसल < कुसुल, कोश]
 कोसा—(सं०)-(१) मुट्टे के ऊपर की पतियाँ (ब०-५० न०, बं०-२, म०-२)। दे०—कोइसा।
 (२) जाम के फल में होनेवाली गुठली (बं०-१)। (३) जाम के बीज का गुहा (बिरी), जिसकी रोटी भी पकाई जाती है (प०-२)।
 [कोश (संस्कृत), कोस (प०, म०) कोसा (हि०)। कोसी (ने०) -बीजकोश, कोसा, कोसी (बं०) अनाज की बल्ली या मुट्टे आदि के ऊपर रोशे का गुच्छा]
 कोसी—(सं०) एक साध उत्पन्न की ओर बरस का मिश्रण (ब० भाष०)। दे०—कोसीराई। [देशी, कोशिका]
 कोसुम—(सं०)-(बं०-५०)। दे०—कुसुम। [कुसुम]
 कोईड़ा—(सं०)-(साहा०-१, बं०-१)। दे०—कुम्हार। [कुम्हार]
 कोहा—(सं०)-(१) अन्न रखने का मिट्टी का बर्तन। पर्या०—कटिबा (उ०-५०, ब०-५० न०), करवा (बं०-१)। (२) बही बचने का मिट्टी का बर्तन, जिसकी पंखों में बाहर से अतिरिक्त मिट्टी लगा दी जाती है। (३) कटोरे के बाकार का मिट्टी का एक पात्र (बं०-१, भाष०)। [कोश = पात्र—'कोशोऽस्त्री कुट्टम्ले पात्रे दिव्ये खड्गपिपायने'—(मेदि०)। कोहा



(अस०) = ठंढे का जलपात्र। कोस (प०) = चमड़े का बना वाल्टी-बैसा पात्र]
 कौकरी—(सं०) चटेल या लंबा-नाथक फल, जिसकी तरकारी बनती है (प०-१)। दे०—चटेल। [कर्कटा]
 कौरी—(सं०) सामा के पावल की ओर (पट०-१)। [देशी], मिछा—कौनी < कंगू।
 कौशाभयान—(सं०) (ब०-५० साहा०)। दे०—कोबा लुकान। [कौआ + भयान (देशी); कौआ < काक, काकोल। भयान (देशी)]
 कौशाभोग—(सं०) दूध के अनुसार दान का एक सेर (ब०-१)। [कौआ + भोग, कौआ < काक, काकोल]
 कौमार—(सं०) एक पण-मात्र मात्र (प० न०)। [देशी], मिछा—कावर = एक बलीय मात्र (म० वि० हि०)।
 कौमालुकान—(सं०) लगभग छह इंच का अंधा गवा घोड़ा, जिसमें कोबा छिप सकता हो (प०, सा०, साहा०)। पर्या०—कौआ-भयान (ब०-५०), कौआ-लुकान (बं०-१), कौआ-भयान। [कौआ + लुकान (देशी)। कौआ < काक < काकोल। लुकान लुकावत (बिहा०), लुकावा (हि०) < लुप < बि + ली]
 कौआ हाँकल—(हि०) संत से कौनों को डराना (हाँकल) - लंबन। दे०—हाँकी। [कौआ + हाँकल। कौआ < काक, काकोल। हाँकल (अनुकरणात्मक लब्धपरक), हाँ < का + ह]
 कौकड़ी—(सं०) एक प्रकार की बरसाती लता का फल, जिसकी रसदार या सूखी स्वादिल तरकारी बनती है (ब० भाष०)। दे०—चटेल। [कर्कटी]
 कौड़—(सं०)-(ब०)। दे०—मूर। [कूट, कौट]
 कौड़ी—(सं०)-(१) बनीबार की ओर से अन्न-विप्रेता की माप पर निर्धारित कर (उ०-५०)। पर्या०—मलिकाई चुटकी (ब०-५० न०), बयाई (साहा०), किराया (बं०) मोगनी, किआकी, कोबाकी (उ०-५० न०), बरदाना (पट०)। (२) समुद्र में उत्पन्न होनेवाला शंख की जाति का एक बीज, जिसका अस्थिकोश कारत में पैसे से कम मूल्य के सिक्के के रूप में व्यवहृत

होता था। इससे बेंगों का भूषण बनाया जाता है और बच्चे इससे खेलते हैं।
 [कौड़ी < *कूड (संस्कृत), कवडु (बा०), कौड़ी (हि०), कौड़ी (बं०, म०, गुमा०), कौड़, कौड़ा (प०), कौड़ी (ब०-५०), कौड़, (वि०), कौड़ों, कौड़, कौड़ी (प०), कवडु, कवड़ी (मरा०)]
 कौनी—(सं०) बाघरे की जाति का सूक्ष्म बगों का एक जनाव (म०-२, पट०-४, मग०-५, भाष०-१, बं०-१, बर०-१, म०-१)। [कडगु (संस्कृत), कुंगुनी, कांकुनी, कौनी, टंगुनी (हि०), कांकुनी, कानी घान (बं०), काँग (मरा०), काँग (प०), नवणे (कन्न०), प्रेक्कण पुच्छेट्टु (तेलु०), गल अरजुन (का०), दुखन (बं०)।]
 कौर—(सं०)-(१) भूमि की खोद कर बनाया गया छोटा गड्ढा, जिसमें लकड़ी, घास, सूखा गोबर आदि जलाकर जाड़े की रात में ग्रामीण कोष तापते हैं (प०)। दे०—मूर। (२) पीसने के समय जाँता में एक बार दिया जानेवाला अन्न-परिमाण। दे०—लीक। (३) खाने के समय गृह में एक बार आनेवाला भोजन का परिमाण। [कुंड]
 कौराकादुल—(महा०) आठकर्म में भोजन के पहले कीए आदि विषंग्वोचि के निमित्त उद्भूत की दाल और भात के कौर का निकाला जाता।
 कौर जाएल—(महा०) भोज का घर जाना या नहीं उगना (उ०-५० न०)। दे०—बिजमार। [कौर + जाएल, कौर (देशी), कौरना (हि०) = बोड़ा भूना, सँकना। मिछा—कुडि (बाहे) = जलाना]
 कौरीकरल—(महा०) पशुओं द्वारा खाई हुई वस्तु का पुनः खाना, रोमण (पागूर) करना (पट०, मग०, बं०-१)। दे०—पगुरी करल। [कौरी + करल। कौर < कवर < कवरल (बबली + ह्रस्व)]
 कौवा—(सं०)-(१) एक प्रसिद्ध काला पक्षी, काक; (२) एक प्रकार की मछली, जो अंगुली के समान मोल और लंबी होती है एवं जिसका मूँह कोवे की चोंच के समान होता है (बं०-१)।

पर्या०—कौवा ठोठी। [कौवा < *काकोल]
 कौवा-भयान (सं०) दे०—कौआ-भयान।
 कौवा-ठोठी—(सं०)-(१) (म०-२)। दे०—कौवा-२। (२) एक लता, जिसके फूल समेध और नीले रंग के तथा कौवे की चोंच की तरह लंबे होते हैं। [< *काकतुण्डी]
 कौवा लुकान—(सं०)-(बं०-१)। दे०—कौआलुकान।
 कौवा हाँकल—(महा०) दे०—कोबा हाँकल।
 किसिका—(सं०) तीसरा पक्ष, कृतिका। छह तारों का यह नक्षत्र होता है। [कृतिका < कृत्ति < कृत्त]
 कवाड—(सं०) बीबी-मिल में ऊल के रस को गाढ़ा करनेवाला एक चौकोर घन (बिह०)। [कवाड < कवाड वा कवाडूट (बं०) = वर्णकार]
 कवाड मैन—(सं०) बीबी-मिल में कवाड पर काम करनेवाला कर्मचारी (बिह०)। [कवाड + मैन (बं०)]
 कवार—(सं०) आश्विन मास, कुमार। दे०—आश्विन, कुमार। [कवार < कुआर < कुमार(?)]
 ख
 खँखड़—(सं०) कुमाँ बनाने के लिए खोदा गया गड्ढा (साहा०-१)। दे०—जाँड़। [देशी]
 खँखड़ा—(सं०)-(१) अन्न का बट्टा, जिसमें केवल मूसा ही हो, अन्न का अंग न हो (बं०-१)। पर्या०—खँखड़ी (साहा०)। (२) एक पौधा-विशेष, जिसके डंठल से मोर बनता है। कभी कभी औरतें अपने कान के छेव को बढ़ाने के लिए भी इसका उपयोग करती हैं। [देशी], मिछा—कंकाल = हड्डियों का ढाँचा मात्र; खँखर, खँखर (संस्कृत) = छिद्रवाला, खँखर = कठोर, घना]
 खँखड़ी—(सं०)-(१) अन्न के पौधों में लगनेवाला एक रोग, जिससे बाज में दाना नहीं होता। (२) वह अन्न कोश जिसके अन्दर अन्न उत्पन्न ही न हुआ हो। खँखड़ा का स्त्रीलिंग। [देशी], मिछा—कंकाल (संस्कृत) =

हड्डियों का ढाँचा। खैर, खैरखैर (संस्कृत) = छिन्नवाला, खैरखैर (संस्कृत) = कठोर, बनाव (बो० वि० डि०), खैर = कंक = कड़ा, लकी (हि० ल० ला०), कंकट (संस्कृत) = कचब, ऊपरी भागधरण]
 खैरी—(सं०) (साहा०) दे०—खैर ।
 खैरखैरा—(सं०) छोटी पत्तीवाला एक प्रकार का तंबाकू (द्र० विहा०) । दे०—पत्रवटिया । [(बेनी), मिला०—खैरी < खैरा (< खैरा) = जीना, घटना; खैरी + खैरा (< खैरी ?)]
 खैरा—(सं०) (१) ताड़ (ताल) का गन्ना पेड़ (पट०-४, मग०-५, बं०-५) । (२) ताड़ का ठंडल-सहित पत्ता (बं०-५, पट०-४, मग०-५) । पर्या०—खैरा, खैरी (पट०-४, मग०-५, बं०-२, बं०-५) । [(बेनी), मिला०—खैरा = एक प्रकार की बेंट]
 खैरका—(सं०) (१) पंक्ति, चलरली जमीन या चारा के साथ बहकर जमी हुई मिट्टी (ब०-५० साहा०) । दे०—आर । (२) बरसात, बरसकर । [खैर + का (प्र०) < कच्छ, < खच्छ] खैरका—(सं०) वह जल, जिसमें कई जलों की मिश्रण हो (बं०-२) । पर्या०—संतआ (पट०-४, बं०-२, मग०-५, बं०-५) । [खैर + का, मिला०—खैरकारि = संतारी, मिला०—खैर (बं०), खैर (सं०) (सा०, पट०-४, मग०-५) । दे०—कोरा । [खैर (२) (ब० भाग०) । दे०—कोरल, कोरनी । [खैर < खैर] खैरकर—(सं०) (२० साहा०) । दे०—खैरखैरी । [खैर + कर, खैर < खैर । खैर < खैरी = (विहा०) = बबलब, स्तम्भ]
 खैरमोड़ा—(सं०) हथेली (लकड़ी या काष्ठ) अंश। बनाव औरकार) से पानी छिड़ककर खेत को सींचनेवाला पुरुष (पट०, गवा) । दे०—हथवाहा । [खैर + मोड़ा < खैर (= जमीन का टुकड़ा, बगारी) + मोड़ा < मोड़ल (विहा०), मोड़ना (हि०)]
 खैरवाह—(सं०) (पट०) । दे०—खैरमोड़ा और हथवाहा । [खैर + वाह < खैर (= जमीन

का टुकड़ा, बगारी) + वाह (प्र०) या वाह < वाह]
 खैरवाहा—(सं०) सींचने के समय खेत में पानी को द्रवर-उत्तर बिखेरनेवाला मनुष्य (पट०) । दे०—पत्रमोरा । [खैर + वाहा < खैरवाह] खैरसारी—(सं०) खैर (बीनी) तैयार करने का स्थान (सं० ब०, पट०-४, मग०-५) । दे०—बीनी के कारखाना ; [खैर + सारी < खैर + सारी (हि०)]
 खैरहुल—(सं०) (१) कड़ का जंगल (बं०-५, बं०-२) । दे०—खैर । (२) दे०—खैर (पट०-४, मग०-५)
 खैरहू—(सं०) पानी के बग से बाँध का फटना या कट जाना (गवा) । पर्या०—खैरिया (बं०-२), खैरहुल (पट०-४, मग०-५) [खैर + हू < खैर]
 खैरा—(सं०) (१) गृहस्थी के काम में जानेवाला लकड़ी बाँध काटने का एक जोर (बं०-२) । (२) घर या खैरी की सामग्री (पट०-४) । [< खैर, खैरा]
 खैरकार—(सं०) (१) (गवा) । दे०—खैरवाहा और पत्रमोरा । (२) बाँध के पास टूटकर बनाव गड़ा (मग०-५) । [खैर + कार < खैर] खैरौरा—(सं०) (ब०-५० साहा०) । दे०—खैर । [खैर + औरा । खैर < खैर ; औरा < औरा चाउर < आवल (हि०) < तंडुल (संस्कृत) । मिला०—खैरौरा (हि०) = मिट्टी का लकड़, बोला ; खैरौरा (हि०) = बाबल का टुकड़ा । खैरौल (बं०), खैरौरी < खैर—(मं०-५)]
 खैरा—(सं०) परती जमीन, जहाँ सरकारी बगीरह बोई जाती है (पट०-२) । [(बेनी) मिला०—खैरा (मग०) = गढ़ा]
 खैर—(बि०) खोदनेवाला (बं०-१) । [खनित्र (संस्कृत), खण्डित, खैर (मरा०) < खनित्र (बला०)]
 खैरा—(सं०) (२) पानी के भीतर का बनाव हुआ गढ़ा (बं०-१) । (२) नदी-नाले के पास खोदा हुआ गढ़ा । (३) अट्टी में जलती हुई बाग बो उसकाने के लिए प्रयुक्त लोहे की छड़ । (४) खोदने के लिए लोहे का बना एक लंबा जोर । (५) (ब० मग०) दे०—खैर ।

(६) काटी हुई मृमि और कुएँ की गहराई की नाप के लिए प्रयुक्त एक हाथ का परिमाण (ब०-५० साहा०, ब०-५० बं०) । दे०—खैर, तरहा । [खैर, खनित्र < खैर]
 खैरी—(सं०) जमीन खोदने के लिए लोहे का बना एक जोरार (बं०-२, पट०-४, मग०-५, बं०-२) । [खनित्र, खनित्रिका (संस्कृत), खनिरी (प्र०), खनिरी (प्र०), खैरी (हि०), खैरि (बं०), खैरि (मरा०), खैरि (बं०), खैरि (मरा०)]
 खैर—(सं०) खैरी की हुई मृमि का एक बड़ा भाग । (बं० के खैरी की काता-संख्या एक होती है, किन्तु प्याट-सं० धलत-भजन होती है पट०-४, मग०-५) । पर्या०—खैरा, किचा, किता (पट०, गवा) । [खैर < खैर = खैर (खैरी का समूह)]
 खैरा—(सं०) (पट०, गवा, पट०-४, मग०-५) दे०—खैर । [खैर < खैर = समूह (खैरी का समूह)]
 खैरौट—(सं०) खैरी की हुई मृमि के एक बड़े भाग का उपभाग, जो और भी कई टुकड़ों में बाँटा रहता है । दे०—खैर । [खैर + औट ; खैर < खैर = समूह (खैर-समूह), औट < आवट, आवरट]]
 खैरा—(सं०) (२) कुएँ की जयत पर गाड़ा हुआ जो मोर्कावाला बंधा, जिसपर धिरनी नाचती है (पट०, बं०-५, ब०-५०, पट०-४, मग०-५, बं०-२) । दे०—खैर । (२) दो कानियोंवाला अंश लंबा स्तम्भ, जिसपर लाटा लटकता रहता है । पर्या०—धुरेया (पट०, साहा०), धुरेई (प०) । (३) खैरी का वह स्तम्भ, जिसपर खैरी टिकी रहती है (ब०-५० साहा०) । दे०—खैरा । (४) (पट०, गवा) । दे०—कोरो । (५) किसी वस्तु के अवलंबन के लिए जमीन में गाड़ा हुआ स्तम्भ । पर्या०—खैरा, खैरिया (विहा०,



खैरी

आव०) । [स्तम्भ (संस्कृत), खैरा (हि०), खैरा (बं०)]
 खैरा—(सं०) दे०—खैरा ।
 खैर—(सं०) (१) गढ़े का किनारा, खैर । पर्या०—खैर, खैरा, खैरा, खैरा (बं० भाग०), खैरा = छोटे गढ़े की खैर (गवा) । (२) गहरा खेत (बं०-५, बं०-२) । [खैर < खैर (= खैरा)]
 खैरा—(सं०) दे०—खैरा ।
 खैरा—(सं०) (१) ताड़ की छाल (पट०-२) । (२) ताड़ के पत्ते के काटने पर बनाव हुआ सूतकर धिर जानेवाला पत्ते का मूल भाग (पट०-४, मग०-५) । [< खैरल]
 खैरखैरी—(सं०) (बं०-२, बं०-२) । दे०—खैर ।
 खैरा—(सं०) (१) जमीन के ऊपर का छिलका । जल या किसी भी जलवायु का बिना जाने का निष्फल छिलका (ब० भाग०, ब० बं०, मग०-५) । दे०—खैरा । (२) खैरान में पड़ा हुआ निष्फल जलवायु (ब०, उ०, मग०-५, पट०-४, मग०-१) । दे०—पटवर । [मिला०—खैरका]
 खैरसो—(सं०) बटेल नाम की एक तरकारी । यह महीन काँटेदार तथा गोल आकार की होती है । पर्या०—खैरसो (बं०-१, पट०-१, पट०-४) । [देरी]
 खैरखैरी—(सं०) (२०-१) । दे०—खैर ।
 खैरखैरी—(सं०) (१) जमीन के बरतन से खुरचकर निकाली गई जमीन (गवा, ब०-५० साहा०, बं०-१) । (२) खुरचकर निकाली गई वस्तु । दे०—खैर । [अनु०]
 खैरखैरी—(सं०) पर्या या सिचाई के बाद खुरचने से खेत की मिट्टी कड़ी हो जाने पर उसे मृदायम करने के लिए, लोहे के काँटों का बना हुआ हल (बं०, बं०-१, बं०-२) । दे०—खैरा । पर्या०—खैरखैरी (बं०-१) । [अनु०, वा (बेनी), खैरखैरी (विहा०), मिला०—अनु०—खैरखैरी (संस्कृत), खैरखैरी (प्र०), खैरखैरी, खैरखैरी (हि०),

साव पड़ी हो। पर्या०—गोबराल, भरल (ब०-पू० नं०), खदीर (ब०-३०), खदगौर, खरित (गहा०), पटाएल (नं० ३०)। [खदीर+खेत < खद+और < खाद्यवट; खेत < क्षेत्र]

खदीर—(ब०) (नं० ३०)। दे०—खदीर कंत। [खद+और < खाद्य+अवट]

खदी—(ब०) साव। दे०—खाव।

खधरल—(ब०) (१) पानी की धारा या उसकी लहरों के धक्के से किनारे की मिट्टी का कटना (गहा०-१)। (२) घाव के घाव के बांस का गिरना (बं०-१)। (३) किसी मादा मवेशी (गाय-भेल) की जननेन्द्रिय से संकेत रंग की लस बार बीच का निकलना (बं०-१)। (ब०) पानी की धारा या लहरों द्वारा काटी हुई जमीन (बं०-४, बं०-५, बं०-२, भाग०-१)। [खधर+ल (ब०) < खदा < खात]

खधुक—(ब०) कर्ज लेनेवाला (गहा०-१)। [देरी.मिला०—खाया या खाद]

खधुली—(ब०) (बं०)। दे०—खोइली।

खधेल—(ब०) पशुओं के खाने के बाद बचे हुई खरब की (शलाख) घास भूसा आदि (गहा०)। पर्या०—सीटी, उपखन (बं०-५, बं०-३)। दे०—जयल। [खध+एल (ब०) < कुत्ताधक] < खास]

खधोरल—(ब०) (१) दे०—खपल।

खन—(ब०) नय कोहर को बनाने के लिए बड़ी की बी जानेवाली मजदूरी (उ०-पू० नं०)। [देशी]

खनजीर—(ब०) इट या पत्थर का बना हुए का गोल धंदा। [देशी]

खनल—(ब०) खनना कोहन। [खन, संह० प्रा०, खण (प्रा०), खनना (हि०), खनन (कर्म) खणणी (कुवा०), खनु (नं०), खनिश (बं०), खणु (गु०), खणणे (बरा०), खनिनु (संह०)]

खनसारी—(ब०) एक आदमी द्वारा व्यवहृत मछली पकड़ने का बड़े जाल, जिसमें तीन लकड़ियाँ लगी रहती हैं (उ०-पू० नं०)। दे०—बिसारी। [देशी]


खनावल—(ब०) खनल कि० का प्र०। खन-वाना, खोदवाना।

खनित—(ब०) काटी हुई भूमि और कुएँ की गहराई की माप के लिए प्रयुक्त एक हाथ की लकड़ी (ब०-५०)। दे०—खरहा। [खनित = खंटी < खन]

खनित्त—(ब०) बड़े बगीच, जो लकड़ के किनारे लकड़ को बनने के लिए छोड़ी जाती है (गहा०-१) [खनित]

खपचल—(ब०) किसी नुकीली वस्तु से दूसरी वस्तु पर आघात करना, खपचाना। [(ब०) खपचो हुई वस्तु। [खपित्र, खपित < खप]

खपचार जाल—(ब०) मछली पकड़ने का एक प्रकार का जाल, जिसे दो आदमी दोनों तरफ से पकड़कर अपनी-अपनी ओर खींचे रहते हैं। इसमें नीचे लोहे की बुनिया लगी रहती है (सा०-१)। [खपचार+जाल < खपचार (देशी)]

खपडा, खपरा—(ब०) (१) कुत्रा के बनाने या बीजाल के बीजने में प्रयुक्त भट्टी में पका मिट्टी का गोल पट्टा। पर्या०—नाद (उ०-५०), मोखड़ा (ब०-५० गहा०), गिरदा (पट०), गेंडुआ (पट०, ब० नं०), पाट (ब०-भाग०) (२) छपर छाने के लिए मिट्टी का बना और भाग में पकाया हुआ लवा, । गोल बरबा चौड़ा एक प्रसिद्ध साधन। घर छानने या खपडा खपरा दो प्रकार का होता है—जरिया, जो नाली-जैसा होता है और ऊपर से रखा जाता है, दूसरा यपुआ, जो चौड़ा होता है और जिसके किनारे लकड़े होते हैं। यह नीचे बिछाया जाता है। भाजक नये रंग का खपडा होता है, जिसे 'टाइल' कहते हैं। [< खपरे < कर्म (संह०), खपर (प्रा०), खपड़ा (हि०, नं०), खपड़ (कुवा०) = खोपड़ी। खपरी, खपड़ (गु०), खपड़ी (अल०), खपड़ा (बं०, जो०), खपला (बरा०) = टुकड़ा खपरा (बरा०)]

खपडाइया—(ब०) (१) बाबल में लगनेवाला एक प्रकार का छोटा उजला कोड़ा (बं०)।

पर्या०—गहरा (बं०, सा०, बं०, बं०-५०, पट०-४, बं०-५)। (२) बेल, नारियल आदि का ऊपरका मोटा छिलका। (३) कछुए के शरीर के ऊपर का भाग। [मिला०—खपर]

खपरा—(ब०) दे०—खपड़ा। [खपरे, कपरे]

खपरा आचल—(ब०) खपड़े से घर का छाना। [खपरा+आचल; खपरे+आचल]

खपरा फेरल—(ब०) खपड़ा फेरना या खपड़े की छावनी की मरम्मत करना।

खपड़ा बदलल—(ब०) दे०—खपरा फेरल।

खपावल—(ब०) खपाना, समाप्त करना, बाँक बचाकर किसी का जाल उड़ाना। [< खप]

खपियार—(ब०) पानी में डोंककर मछली मारने का एक प्रकार का जाल। [खपित्र(?)]

खभड़ल—(ब०) बीजने या बिसकने के कारण बना गहरा। पर्या०—खभरल।

खभरल—(ब०) दे०—खभड़क।

खभार—(ब०) (१) ईट आदि से बीजने के पहले कोटा बसा कुएँ का बड़ा गोल बीचा (बं०)। दे०—बबड़। (२) गहरा। (३) सूबरे के रहने की बगल। पर्या०—खोभार (बं०)। [मिला०—स्कम्, कपाट (संह०), खपाच (हि०)]

खभारल—(ब०) (१) जमीन को हलके-हलके कोड़कर मिट्टी को ऊपर-नीचे करना (गहा०-१)। (२) नदी की लहरों से जमीन का बीरे-बीरे कटना। [खभरना (हि०)]

खभरुआ—(ब०) एक लता, जिसके कंद और फल दोनों की तरकारी बनती है (बं०-१)। दे०—खभरुआ। [देशी, मिला०—खभरु (हि०)]

खभल—(ब०) (१) पशुओं का बुलं होना (पट०-४)। (२) दे०—खभल-३।

खभरुआ—(ब०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (बं०, नं०-२)। दे०—खभार। [(देशी), मिला०—खभरु (?) , बाराही कंद (संह०), बाराही कंद, गेंडी (हि०), चामार आलू, चामालू, चुनड़ि आलू (बं०), हुकर कंद, बाराही कंद (बरा०), सुअरिआ, सालिवणा वेल्ल (गु०)]

खभहा—(ब०) (उ०-५०, ब० नं०, पट०, बं०-५०, बं०-५०, पट०-४, बं०-५, नं०-२, भाग०-१, भाग०)। दे०—खंभा और खुरही [< स्कम्]

खभहार—(ब०) (उ०-५० नं०)। दे०—गाँव। [खभहा + र (ब०) < स्कम्]

खभहार, खंभार—(ब०) (१) फसल तैयार करने की बगल, बलिहान (नं०-१, ब०-१)। दे०—बलिहान। (२) (ब०-५० नं०)। दे०—गाँव। [खभहा+र (ब०) < स्कम्]

खभिआ—(ब०) (बं०-५०, भाग०)। दे०—खंभा।

खयरा—(ब०) बड़े बेल, जिसका रंग लाल की तरह बोझा जाल हो। (पट०-१)। पर्या०—खैरा। [खप + आ (ब०), खैर < खिरिक (संह०), खहर (प्रा०), खहर (कर्म) खैरो (नं०), खैरा (हि०, बं०), खैरो (गु०), खैरा (बरा०)]

खरहरा—(ब०) (१) बलिहान के बीस की बृंहारने की झाड़ू (ब० भाग०)। दे०—खिरहर। (२) बगल आदि बृंहारने के लिए रूठे जादि की बनी झाड़ू। [खर+हरा < खर, खड = घास, तुण, जयवा < खल = बलिहान, हरा < हर]

खर—(बं०) (१) लड़; एक प्रकार की विधोष घास, जो घर छानने के काम में जाती है (बं०-१)। पर्या०—खड़, खड़, खरह (बं०)। (२) एक प्रकार की घास। [(देशी), मिला०—कट, कुट = घास, तुण; खड़, खट (संह०), खड़ो (प्रा०), खर (हि०, बं०), खर (नं०), खड (गु०, बरा०), खेरु (कर्म), खड़ा (जो०), खड्ड (हि०) = बरली (नं०)]

खरई—(बं०) (१) एक प्रकार की घास। (२) रबी या चौरी फसल का, जिसे खरहर का, कनाज निकालने के बाद बचा हुआ उठल (पट०, बं०-५)। दे०—खरडा। (३) घास की लता के ऊपर की बनी झाड़ू। पर्या०—खरचा (ब०-५० गहा०), कचुआ (बं० नं०)। [(देशी) मिला०—कट, कुट, खड, खट]

खरकल—(बं०) (१) बाढ़ के पानी का हट

जाना, खत्म होना (सं०-१) । (२) छिन्न-भिन्न होना (सं०-१), खिसकना (बं०) । (३) चुपके भाग लड़ा होना (सं०-१) । [खरक+ल (प्र०) < *खरक < *खर । मिला०—खर्कनु (ने०) = इकट्ठा होना । खड़कलू (गु०) = व्यवस्था करना, गजना]

खरकावत—(कि०) खरकलू किया का प्रेरणार्थक; खरकाना ।

खरकोटी—(सं०) खरिका रत्न के लिए बीवार में बना छिद्र (गया, ४०-५० बिहा०) । [खरक+ओटी < खरिका+ओटी, संभ०—< *खडक+अवट]

खरचराई—(सं०)-(गं० उ०, गया) । दे०—खरचरी । [खर+चर+आई (प्र०) । खर (देसी) अथवा < कट+आई < *चर]

खरचरी—(सं०) खरगाह के मालिक को दिया जानेवाला गुरुक (गं० उ०) । पर्या०—खरच-गई (गं० उ०, गया), बरदिया (शाहा०), कास चराई (सं०, पट०, गु०), कास चराई (सं०, पट०, गु०), देना (सं०, पट०, गु०), मैसोधा (सं०, पट०, गु०), बरदाना (सं०, पट०, गु०), देना (गं०-पु०) । यह गुरुक कहीं-कहीं केवल भैंसों के चराने के लिए ही लिया जाता है, अतएव 'भैंसोधा' कहा जाता है । [खर+चर+ई (प्र०), मिला०—खरचराई]

खरचल—(कि०)-(१) पान आदि में लगी किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से खरोचना । (२) व्यय करना ।

खरचा—(सं०)-(१) (गं०-पु० शाहा०) । दे०—खरई । [देसी, मिला०—खरई] (२) खेती आदि का व्यय । [खर्च (का०)] (३) खीपी या लोहे का बना खरचने का छोटा साधन (गं० भाग०) । [< खरकलू (बिहा०)]

खरचारु—(सं०)-(गं० भाग०) । दे०—खरचाड़ी । [खर+चारु, खर < खंड, चारु < चौरी (बिहा०)]

खरचाली—(सं०)-(पट०, गया) । दे०—खरचाड़ी । [खर+चाली । मिला०—खरचारु]

खरचुआ—(सं०)-(पट०, गया, मग०-५) । दे०—खड्का । [खर+चुआ । < खर, चोआ (देसी)]

खरबटाई—(सं०) खेत में ही, कटे हुए अनाज के बोझों को बाँटने की प्रक्रिया (बं०, ४०-५० सं०) । दे०—बोस बटाई । [खर+बट+आई (प्र०), खर < कट, खड, < खट+बटाई < बटाई < बटन]

खरबिरवा—(सं०) वह औषध, जो वनस्पति से प्राप्त होता है (बं०-१) । [खर+बिरवा । खर < कट, खट, खड, बिवा < बीज < वीर्य]

खरबूजा—(सं०) खरबूज की तरह का एक फल, जिसमें पानी नहीं होता तथा स्वाद में उषार भिठाव होती है । पर्या०—खालमी (पं० सं०, पट०, गु०), फूट (गं०-पु०) । [(देसी), खर+कूना, बूजा < बीज (?) । खरबूज (संस्कृत—मा० प्र० नि०), खरबुजा, खरबुज (बं०), खरबुज, खरबुज (भरा०), तेलिया, शकरटेटी, तेलिया भीमड़ा (गु०), खरबूज (ने०), सड़जसीटी, बड़भुजा (कं०), खरबूज (का०) खरबुजह (गं०)]

खरबन—(सं०) फल काटने के समय लोहार, बड़ई, नाई और धोबी को किसान कं. और से मिलनेवाला एक पंजा पान या कोई दूसरी फल (गं०-पु० शाहा०) । पर्या०—केर, पुरी, पाकपसेरी (गं० सं०) । [खर+बन; खर < कट, अथवा < काटल (बिहा०), काटना (हि०) < *कट । बन < *बन् (पाचने) (?) , अथवा खर+बन; खर (= कटल-सहित फल) का मिलनेवाला बन (समूह)]

खरबोस—(सं०) शीत और थोप का महीभा, जो हिन्दू-रीति के अनुसार अशुभ माना जाता है और जिसमें शारीर-वाह आदि शुभ कार्य नहीं होते । (शाहा०-१, बं०-१) । [खर+बोस < *खर+मास]

खरवा—(सं०) वह जमीन, जिसमें खुना और मंघक का अंश अधिक भाग में हो (गं० भाग०) । दे०—खारी । [खर+वा (प्र०, अत्यधिक) < चौर]

खरवाह—(सं०) समय के पहले सुखी जमीन में खान की बोआई । दे०—खरहर बाग । [खर+वाह । < खर, < कट+वा < खड़ा (हि०), वाह (प्र०) अथवा < *वह (?)]

खरवाहा—(सं०)-(१) बिवाई करनेवाला पुष्प (गं०-पु० सं०) । दे०—पनछम्पा । (२) सींचने के समय खेत में पानी को इधर-उधर बिखेरनेवाला मनुष्य (सा०) । दे०—पनसोरा । [खर+वाहा । खर < खंड अथवा कर्ष । वाहा (प्र०) वा < *वह]

खरवे, खरवेह—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली पान की बोआई (गया) । दे०—खरहर बाग । [खर+वे । खर < *कट, < *कर्ष अथवा खड़ा (हि०) । वे < वाप (= बपन) (?) < *वप]

खरवेह—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली पान की बोआई (गया) । दे०—खरहर बाग । [खर+वेह, मिला०—खरवे]

खरसान—(सं०) तम्बाकू का टूटा अवशेष बंठक बोध पत्ता (गं०-पु० सं०) । दे०—साका । [देसी, वा खर+सान । खर < कट (= नास) +सान < समान (सन्-बिहा०) = सामान, गन्ना-रोसन, बैसन, तैसन आदि । मिला०—खरसन (संता०) = बिना संवार किया हुआ तम्बाकू]

खरहर बाग—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली पान की बोआई । पर्या०—धुरिया बाग (गं०-पु०), ठर्रा (शाहा०, पट०), खरवाह, खरवेह, खरवे (गया), बीधा (पट०), बुरपूसा (गं० सं०), खरहरिया बाग (गं०-२, पट०-४, मग०-५) । [खर+हर+बाग । खर < कट, कर्ष अथवा खड़ा (सूखी भूमि के लिए प्रयुक्त) +हर < *ह अथवा खर (< खड़ा) +हर < हल । बाग < वाप (+क) < *वप]

खरहरल—(कि०) खरहरे से जमीन को साफना । (बि०) खरहरे से साड़ी गई जमीन आदि ।

खरहरा—(सं०) खलिहान में अन्न बृंहारने अथवा बचान बृंहारने के लिए प्रयुक्त साड़ू (बं०) । दे०—खरहय । [खर+हरा । खर < कट अथवा खड़ा (= खलिहान) हरी < *ह वा भड़का < भाड़ल (बिहा०) < उड़+< ह । खरोट (भरा०) < खर+यष्टि (संस्कृत)—(गं० म्य०)]

खर-रिया बाग—(सं०)—(गं० २, पट०-४, क. ५) । दे०—खरहर बाग ।

खरहरा—(सं०)—(गं० भाग०) । दे०—खरहरा ।

खरहा—(सं०) । दे०—खड्हा ।

खरही—(सं०)—(१) पान की लता के आधार पर लम्बा, जो प्रत्येक कोरो के बीच में छे-छे पड़ते हैं । [(देसी)—संभ० < खर वा खंड] (२) बड़ा बड़ (बं०-१) । [खर+ही (प्र०) < खर, मिला०—कट । खरही (हि०) = बाध वा जन्म का डेर]

खरहुल—(सं०)—(गं० २०) । दे०—खडोर । [खर+हुल (प्र०) अथवा < *हु]

खरिचीटा—(सं०) खरिका (बंतावनी) रत्न के लिए बीवार में बना छिद्र या साका (गं०-पु० सं०) । पर्या०—मुखा (पट०-४), खरकोटी, भुङकी (गया, गं०-पु० बिहा०) । [खरिका+ओटा । खरिका < खर (हि०) +इक (गल्पा० प्र०), ओटा < अवट (संस्कृत) = बाध, छिद्र]

खरिच—(सं०)—(शाहा०) । खरोक खेत । [देसी]

खरिचगी—(सं०)—(१) खरीव कर अधिकृत की गई करमुक्त भूमि । पर्या०—इनाम, इनामात, खैरात (शाहा०), कसकत (गं० भाग०) = प्रसन्नता या खोहार के कारण मिली हुई अधिकृत करमुक्त भूमि । (२) खरीव कर जमीन पर अधिकार करनेवाला, न कि मोहसी हुकमाला (शाहा०) । (बस्तुतः सम्बन्ध—खरीव की हुई है) दे०—खरीवसी । [खरिद+गी (प्र०) < खरीद (का०) मिला०—क्रीत, क्रीति < *क्री]

खरिदार—(बि०) खरीदी हुई सम्पत्ति का वन स्वामी । पर्या०—खैदार । [खरिद+दर (प्र०) < खरीद (का०)]

खरिहान—(सं०) फसल की बोनी के लिए बनी हुई जगह (बिहा०, मग०) पर्या०—खरिहानी (पट०, पट०-१) । [खरि +हान < *खलधान, < *खलधान, < *खलो+धानी (नेपा०)]

खलिहान (हि०), खलियान, खलिहान, खलो



(ने०), खलिवारा (बं०, लि०, ल०) < *खल-वाट । खल (बं०), खला (खल०, खो०), खरा (लि०), खलू (बु०), खलं (बरा०), कल (लि०)]

खरिहानि—(ल०) दे०—खरिहान ।

खरिहानी—(ल०)-(१) / पट०-४, पट०, चंवा०-१, मग०-१) । दे०—खरिहान । पर्या०—खरिहानि । (ब०-१) [खरि+हानी, खरी+हानि +ई (प्र०) < *खलघान, *खलघान्य, *खलाघान; < *खले+धानी—(नेवा०)]

२—भौकीदार को किसान की ओर से मिलने-वाला पारिश्रमिक, जो खलिहान में ही दिया जाता है (उ० प०, ल०-२, मग०-५) । दे०—भौकीवारी । ३—बढ़ई को किसी हथियार की मरम्मत या फिर कार्य करने के बदले मिलने-वाली मजदूरी, जो प्रायः खलिहान में ही मिलती है (चंवा०, ल०, ल०-२, पट०-४, मग०-५) । दे०—धाडी । ४—बवार को जूता बनाने के बदले मिलनेवाली मजदूरी (गाहा०, मवा) । दे०—भाबर ।

खरी—(ल०) तेल निकाल लेने के बाद तेलहन की सीडी । दे०—खरी ।

खरीफ—(ल०) दे०—रबी । [खरीफ (ब०)]

खरखाएल—(ल०)-(१) बैचन या फिर तरकारी के पीछे की वह अवस्था, जब फलना बंद हो जाता है तथा पेड़ सुखने लगते हैं (चंवा०-१) । (कि०) —किसी पीछे का लूजना (चंवा०-१, मग०-५) । [खर+आएल (प्र०) < *खर जयवा खरू (=जैत)]

खरुका—(ल०) (१)—अफीम में लपनेवाला एक रोग (ब०-प० गाहा०) । (२) फसल में लगने-वाला एक रोग । पर्या०—जाला (ल०, पट०, पू०), पक्षख (प०, ल०, मवा), घुरका (प०, प०, ल०) । [(देही), मिला०—खरू, खरूक (संस्कृ०) = उबका]

खरुहन—(ल०) एक से अधिक बार रोपा जाने-वाला बीया (प० उ०, ल० २) । दे०—खार । [खरु+हन, खरु < उखरु < उखारल (बिहा०) उखाड़ना (हि०) < *उत्खात (संस्कृ०) < उख+खरु, हन < धान्य]

खरुहान—(ल०)-(उ० पू० ल०) । दे०—खार । [खरु+हान । मिला०—खरुहन]

खरुहो—(ल०)-(१) बंद, बकरी या फिर पशुओं का समूह (ब० नाम०) । दे०—मुंड । (२) छोटे-छोटे बच्चे । [मिला०—खरुह, खुल्लुह, खुल्लुह (प्र०), मिला०—खरुहो (हि०) = बाल, बाल या फिर का डेर ।]

खरैठा—(ल०) वह स्थान, जहाँ मूत्र नामक पदार्थ पड़ा होता है (ब० मु०) । दे०—मूत्रवासी । [खर+पेठा (ब०) मयवा < खरु]

खरैस—(ल०) एक बादली द्वारा प्रयुक्त होने-वाला मछली पकड़ने का वह जाल, जिसमें छह लकड़ियाँ लगी रहती हैं । [देही, संम०—खर+ऐल < खरू + ऐल (देही प्र०) (?) खरोर—(ल०) खर की बनी जोपड़ी । [खरु+ +पर < खरू, < खर + गुरु]

खरी—(ल०)-(१) खलिहान में जन्म बूहारने के लिए प्रयुक्त मादू (प० ल०) । (२) जोड़े को मजिने (खरहरने) के लिए छोड़े या रस्ती की बनी सूची । (३) साथ पंथा करनेवाला रोग, बुझी । (४) जारा पत्नी । [खर-खर शब्द करनेवाला—अनु०]

खरी—(ल०) तेलहन का वह भाग, जो तेल निकाल लेने के बाद कोलू में बचा रहता है और जिसका उपयोग पशुओं के चारे या खाद में होता है (सा०, चंवा०) । पर्या०—खल्ली । [खरु] खरी—(ल०) एक प्रकार की बरसाती तरकारी, भिगनी (प०) ।

खलकोइया—(ल०)-(१) मंडू या मयवा किसी दूसरे जनावर के दाने निकाल लेने के बाद बची हुई ऊपर की मूची (पट०, मवा, पट०-४, मग०-५) । दे०—डोटी । (२) मकई के ऊपर का पत्ता । (३) चमड़ा । (४) छिलका । [खलको + इया (प्र०) अथवा खल+कोइया । खल < खल < खलू (=संचलने) वा खल्ल (संस्कृ०), खल (प्र०), जिलका, खल (हि०), खलखलाओ (संता०) = चमड़ा उभारना (खल उभारना), परती बोलना । कस्तड़ी (मरा०), चामड़ी, चामडू (बु०), खलहिं = < *खल्ल—(नेवा०); कोइया < कोइयिक]

खलखलाएल—(कि०)-(१) मछली का पानी में इस तरह घूमना कि पानी ऊपर तक उछल पड़े (भोब०) । (२) पानी का खोचना । [अनु०]

खलचोइया—(ल०) मूट्टे के ऊपर की पत्तियाँ (चंवा०) । दे०—खोइया । [खल+चोइया = चोईया (बिहा०), चोई (हि०) < चोच (संस्कृ०) = छिलका । खल = भाग, भाजित । मिला०—खलकोइया]

खलड़ी—(ल०) चमड़ा । रबवा । दे०—चाम । [खल+ड़ी < *खल्ल, < खल]

खलवा—(ल०) गहरी जमीन जिसमें पानी नहीं हो । दे०—खाल । [खल+वा (प्र०) < खल (?) मयवा खल (=खलिहान) > खल्य । मिला०—खल्ल=नीची भूमि (=‘कस्को बहनप्रमं दे स्वावु वल्लं धर्मणि भातके’—नेवि०)]

खलसी—(ल०) एक प्रकार की मछली । [देही]

खलार—(ल०)-(१) वह गहरी जमीन, जिसमें पानी न हो (उ०-पू० चंवा०, खाल०) । दे०—खाल । (२) मीची जमीन । (३) खाल, चमड़ा । [खल+अर (=हरा < बरा), < खल (?) मयवा खल (=खलिहान) < खल्य । खल्ल—धरा । खलधरा वा खलधरा]

खलिहानी—(ल०) किसान द्वारा अधिकार जमा-कर लिया गया जला, जो विशेषतः खलिहान की रक्षा या फिर के नाम पर लिया जाता है (पट०) । पर्या०—भाबर (गाहा०), भौगनी, माँगन (पू० ल०, पट०-४) । [खलि+हान+ई (प्र०) < खलोयानी] हि०—खलिहान में दीवार जम्म के बंटवारे की पद्धति में फसल की कटनी जमींदार और किसान दोनों की देल-रेल में होती है और वह फसल एक समुदाय खलिहान में एकजुट की जाती है । उसकी देल रेल दोनों दलों की ओर से सावधानी से होती है । जबतक गांव की अधिकृत सब फसल खलिहान में जा नहीं जाती है, दोषी नहीं होती । जबतक उस जम्म में से कोई कुछ भी नहीं उठा सकता है । किसान कटनी के बाद सेत में से गिरे हुए जनावर की बाल की छोड़ (चुन) कर ले सकता है । हाँ, फसल का एक विशेष परिचाय भी उसे मिलता है, जिसे वह मजदूरी में काटनेवालों को देता है । समुदाय फसल में से ही गाँव के बड़ई, कुम्हार, लोहार, चमार, मुंशी या फिर कारीगर या पीनीवाले अपना अपना भाग ले जाते हैं; क्योंकि वे बर-बर किसान और जमींदार का काम करते रहते हैं । बंटवारे के लिए तैयार जमाज की राशि से इधर-उधर खलरा या फिर के साथ उड़ा हुआ जम्म किसान का ही होता है । ‘विमुक्तपिरित’ भी सम्मिलित राशि से निकलता है । इन सब के बाद बची हुई राशि में जमींदार अपना भाग लेता है । धूलि या फिर के साथ मिला हुआ जम्म किसान का होता है । इस प्रकार के बंटवारे में पुवाल, मुंशा या फिर किसान का ही होता है । यह पद्धति जमींदारी-प्रथा के समय की है ।

खल्ली—(ल०) तेलहन का वह भाग, जो तेल निकाल लेने के बाद कोलू में बचा रहता है और जिसका प्रयोग पशुओं के खाने या खाद में होता है । दे०—खरी । (२) जमीन या बोर पर लिखने का उबकी मिट्टी का एक साधन, बड़ी, चक । [खली, खली, कल्ल (संस्कृ०), खली (प्र०), खली (हि०), खलि (ने०, ल०, लो०), खल (चं०, ल०), खल (बरा०)]

खलहर—(ल०)-(उ० प०) । दे०—खाल । खल+हर (< बरा) < खल्ल + धरा, खल धरा वा खल+धरा । खल्ल (ने०) खल्ल]

खलुरा—(ल०) ल०—लौर

खलसका—(कि०) गिरना, / स्थान से घटना । [मिला०—खल्लस] (०) गिरा हुआ । [खसई (प्र०), खलिबा (प्र०), खलस (चं०), खलिसा (भो०), खलना (, खल्लु (ने०), खल्लु (बु०), खल्लु (,)—टमर के अनुसार ये सभी रूप समुदाय (कमव०) = उठना—की एक रूपता में हैं । यद्यपि अर्थभेद है । ये *खल्ल (सं० भा०) के प्रतिरूप हैं । मिला०—खल्ल, खल्ल (=जाना, घूमना), खल्ल < खल्ल करना]

खलरा—(ल०) पटवारी की जैत बही, जिसमें

खाधा—(सं०) (व० भाष०)—दे०—खाद, खाध । [< खात]

खान—(सं०) (१) नये कोस्तू को बनाने के लिए बड़ई को ही खानवाली मजदूरी (व० भा० नै०) । पर्या०—खान कमाई (व० भा० नै०) (२) ऊस के कोस्तू को ठीक (दुबस्त) रखने के लिए किसान की ओर से बड़ई को प्रति कोस्तू मिलनेवाला (बो कपय का) पारि-यमिक या पुरस्कार (ता०) । दे०—पचरावण । [खात < खादिन] (३) ऊस पेरने के कोस्तू का वह जोड़ला भाग, जिसमें ऊस पेशा जाता है (सं० व० भा०) । पर्या०—घर (चपा), कुंड (वृ०), कूड़ (वृ०), हुंवा (शाहा०), हुंडो-लवा (शाहा०), हुंवा (व० भा०), हुन्वा या हुंवा (व० भा०) । (४) कोयला, कोहल आदि का उद्भव-स्थान । [खात, खानित (संस्क०), खवा खाना (ता०) = घर, < खनि (संस्क०) = खान]

खानदान—(सं०) (व० भा० नै०) । दे०—कोरिण । [खानदान (ता०)]

खान्ही—(सं०) ताड़, केले आदि फलों का हलवा (वृ०-१) । [< खन्ध्य = समूह, राशि]

खाप—(सं०) वह भूमि, जिसका भूमिकद, नवद रूप में बुकाया जाता हो (वृ० नै०) । दे०—नगरी । [(देखी०), मिला०—खाप < खपू । खापलू, (सं०) < खात-नेपा०]

खामर—(सं०) एक तरतु की जिरात (ता०-१) । देखी, मिला०—खावड़ < खर्वट]

खामल—(सं०) (१) खेत की पथरी तोड़ने के लिए खुरपी या कुवाल चलाना (चपा०-१) । (२) खुरपी आदि से गहरे कोबाई करके बाध आदि का निकालना (ता०, चपा०) । दे०—घर खुरपी सोहल] । (३) गाय, बैल आदि का एक अगह एकत्र होकर चरने को जाना (वृ०-१) । [खाम + ल (प्र०), मिला-वृद्ध]

खार—(सं०) (१) बाढ़ या वर्षा के कारण नदी आदि में हुई जलवृद्धि (व० भा०) । दे०—दाहर । (२) वह अँधी जमीन, जो बाढ़ आदि के कारण गहरी हो जाती है और जिसमें

पानी जम जाता है (व० भा०-५) । (३) खारा पानी, मिट्टी आदि । [< खार < खर]

खारी—(सं०) वह जमीन, जिसमें गंधक, चूना आदि का अधिक जमा हो (व० भा०-५, वृ०-४) । पर्या०—खरबा (व० भा०) । [खार + ई (प्र०) < खारिक < खार]

खारु—(सं०) (१)—बार-बार रोपा जानेवाला बीया (व० भा०) । पर्या०—खरहून । (२) थोरी या जल्द धान के बीज का बोधा, जो एक बार उखाड़कर रोपने के बाद पुनः उखाड़कर रोपा जाता है (व० भा० नै०) । पर्या०—खरहून (चपा०, नै०-१), खरहून (चपा०) । [खारु < उखारु < उखार + ठ (प्र०) < उखारु (विहा०), उखरना (हि०) < उखार]

खाल—(सं०) (१) बिना पानीवाली गहरी जमीन । पर्या०—खालवा, खालर (व० भा०), खलर (व० भा०) । (२) चमड़ा । दे०—चाप । [< खात, खल्ल = गीली जमीन । चमड़ा < खल्ल]

खाली काँटा—(सं०) वह काँटा या तोलने की मशीन, जिससे ऊस की खाली गाड़ियाँ तोली जाती हैं (विहा०, री०) । टि०—मिळ में गाड़ी पर लगाया गया ऊस पहले गाड़ी के साथ तोल लिया जाता है और उस मजदूर को एक पुर्ब पर मिल किया जाता है । ऊस उतारने के बाद खाली गाड़ी पुनः तोली जाती है । इस प्रकार हिसाब करके ऊस का ठीक परिमाण मालूम किया जाता है । खाली गाड़ी को तोलने का काँटा 'खाली काँटा' और ऊस से लदी गाड़ी को तोलने का काँटा 'भरती काँटा' कहा जाता है । [खाली + काँटा खाली < खल्ल, खालित, खालिज (प्र०) + कंटक]

खार्वा—(सं०) दे०—बई । [ख + वॉ < खत + वंघ]

खावा, खौवा—(सं०) (व०) । दे०—खाना, खावा तथा खौड़ । [ख + वा < खत + वंघ]

खास महाल—(सं०) वह जमीन्दारी, जिसका प्रबंध सरकार खुद करती है (ता०-१, चपा०, मग०-५, नै०-२) । [खास + महाल (ज०)]

खाहिन—(सं०) मोटे दानों का एक प्रकार का धान (व० भा० शाहा०) । [देखी०]

खिचड़ी—(सं०) (१) दाल-धावल मिलाकर बनाया गया भोजन । पर्या०—पुंगस (वृ०-४) (२) मकर-संक्रान्ति का पर्व, जिसमें नये धावल की खिचड़ी खाई जाती है (भोज०) । दे०—संक्रान्त ।

खिचड़ी—(सं०) दे०—खिचड़ी । कहा०—'कोठिला बंठि बोले वई, खिचड़ी खाके क्यों नहीं बोई' (—चाप) = छोटी कोठी पर चढ़कर वई कहती है कि उसे खिचड़ी खाकर, बर्बात मकर-संक्रान्ति के बाद क्यों नहीं बोया ?

खिचा—(सं०) (१) फसक (मकई आदि) की न पकी हुई (बुधिया) दाल (सं०, चपा०-१) । दे०—हुंदा । (वि०) (२) वह फल, जो अभी गुप्त तथा पोस्ता न हो, कोमल हो (चपा०, नै०-२, मग०-५) । [< *कण्यक < *कण (विकलने)]

खिजल—(वि०) धान का मड़ना (वृ०-१) पर्या०—खिजल । [< खि (लब्ध), मधवा < खिद < *खदलू (खिलरपणमधवाधनेवृ०)]

खिजाया—(सं०) पहली बार कूटा गया धावल, जिसमें धान और धावल मिले रहते हैं (व० भा० नै०) । दे०—मूहचूर । पर्या०—खैकड़ा (मग०-५), खसरा (नै०-२), बोकड़ा (चपा०) । [देखी०], मिला०—खिद (लब्ध) मधवा खिद्वद (= छोड़ना, मुक्त करना)]

खिनहुरी—(सं०) पुराना और बिलकुल बिछा हुआ हल । (ता०-१, चपा०-१) । दे०—खिनोरी [खिन + हुरी < *खीय + हल (?)]

खिनोरी—(सं०) पुराना तथा बिछा हुआ हल । पर्या०—ठैठी (व० भा०, व० भा०, चपा०) । ठैठा (व० भा०, व० भा०, चपा०), सुटहरा (शाहा०), खिनहुरी (ता०-१, चपा०-१), खुँटहरा (शाहा०) । [खिन + ओरी < खिनोरी < *खीय + हल (?)]

खिनोरी के जोत—(सं०) पुराने और छोटे हल से की जानेवाली जुताई (चपा०, ता०) ।

पर्या०—ठैठा के जोत (व० भा०), खुँटहरा (शाहा०) । [खिनोरी के + जोत (व०) < खिनोरी < *खीय + हल । जोत < *युक्त < *युज् । मिला०—*युज्, *युज् (भासने)] खिरदंत—(सं०) खींटर (बावण) बोया जाने-वाला एक प्रकार का धान (व० भा०) । [खिर + दंत < खिरदंत (?)]

खिरनी—(सं०) एक फल-विशेष । यह बीजे रंग का होता है और इसका फल छोटा तथा खट-रस होता है (शाहा०-१, चपा०, नै०-२) । [< *खीरिणी]

खिराज—(सं०) जमीन की मालगुजारी (ता०-१, चपा०, नै०-२) । [खिराज (ज०)]

खिलकट—(सं०) (१) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है (सं०) । दे०—खील-२ । (२) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर-आबाद जमीन (व० भा०) । दे०—खिलमार । [खिल + कट < खिल (संस्क०) । कट (प्र०) मधवा < कटल < (विहा०) < कटना (हि०) < *कृत]

खिलकट्टी—(सं०) (१) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है । दे०—खील-२ । (२) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर-आबाद जमीन (व० भा०) । दे०—खिलमार-१ । [खिल + कट्टी । मिला०—खिलकट]

खिलमार—(सं०) (१) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है । दे०—खील-२ । (२) (शाहा०) । दे०—आबाद । (३) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर-आबाद जमीन । पर्या०—नबाद खेत (सं० भा०), नौखील (मग०), खिलकट्टी, खिलकट (व० भा०) । [खिल + मार < खिल + मार < मात < मूत् (विहा०)]

खिलहरी—(सं०) जमीनवार की ओर से किसान को बोवाई मालगुजारी पर या बिना मालगुजारी के परती जमीन देने की प्रणाली (चपा०, व० भा०) । पर्या०—आसा चास (व० भा० नै०) खीजमारी (शाहा०) । [खिल + हरी (प्र०) < *खिल]

खिल्लत—(सं०) सरकार की ओर से मुद्रा आदि में की गई सेवा के बदले कम मालगुजारी



पर धी गई नृमि । दे०—शमीर । [खिल्लत (स०)]

खीची—(स०) पशुओं के द्वारा पद-दक्षित फसल (ब० भाग०) । दे०—बैंगण । [अनु०, मिश्रा— $\sqrt{\text{खूँ}}$, $\sqrt{\text{खज}}$ (=बन्धे)]

खीरा—(स०) सदा में होनेवाला हरे रंग का एक बरसाती फल, जिसे कच्चा ही खाया जाता है । पर्या०—भाक्षम खीरा = (१) बार फलवाला एक प्रकार का खीरा (बंभा०) । (२) एक प्रकार का छोटा और कोमल खीरा (साहा०) । [खीरा / *खीरक (?)] खीरो (स०) < खीरक :—(बंभा०); खिरा (स०), खीरा (हि०, ब०), खिरा (मरा०)]

खीरा—(स०) एक प्रकार का फल (बर०-१, बंभा०, नव०-५, ख०-८) । दे०—खिरवी । [< खीरा < खीरक (?)]

खील—(स०)—(१) परती जमीन (बंभा०-२) । (२) वह परती जमीन, जो पहली बार बोली जाती है । पर्या०—खुराब (ब०-ब०), खिल-कट, खिलकट्टी, खिलभार (स०, ब०-२) । (३) परती जमीन कोतने के दो वर्ष बाद का कोत (ब०-ब०) । पर्या०—पह (स०, साहा०, ब०-ब०), कनिल (ब० भाग०), पीह (ख०, ब०-ब०) । (४) प्रसूता माय, भैंस बाँध मवेशियों का पहले पहल विकास या पीले रंग का दूध (बंभा०) । (५) बाँध के अंदर का मांस-कील [< *खिल]

खील कोइल—(बृहा०) भान की बोवाई के उपरान्त बसाने के लिए बंद-आवाह या बंदर जमीन को कोइना । पर्या०—खील कोइल । [खील + कोइल < खिल + कोइल, कोइना (हि०), मिश्रा— $\sqrt{\text{कुडि}}$ (=बंकरव) अथवा $\sqrt{\text{कु}}$ (=बिभवे)]

खील तोइल—(बृहा०) दे०—खील कोइल । खाल + तोइल < खिल + तोइल < $\sqrt{\text{कुट्ट}}$ वा $\sqrt{\text{कुट्ट}}$ (उभये), तोइना (हि०)]

खील बेटाबोल—(बृहा०)—(ब०) दे०—बधाव । [खाल + बैराबोल < खिल + बैराबोल, बैराबना (हि०) < बैराब]

खीलमारी—(स०)—(साहा०) । दे०—बिकही ।

[खील + मार + ई (प्र०) < खील मार < खिल + मार]

खुटहरा—(स०)—(साहा०) । दे०—खिनीरी के कोत । [खुट + हर + आ । खुट < खूट (संस्क०), खूट, खूट (प्र०) > कोटा, खोटा (हि०) + हरी < हल]

खुटा—(स०)—(ख०, नवा, ख०-५, नव०-५) दे०—खुटा, जंभा । [खूट, खोड (संस्क०) खंड (प्र०), खूटा (हि०)]

खुटिया—(स०)—(१) (ब०-ब०, बंभा०, भाग० १, स०-२, नव०-५) । दे०—खूटी । [खुट + इय (प्र०) < खूट, खूटिका वा खोड (=खूटा, जिसमें हाथी बाँधा जाता है)] (२) (ब० भाग०) । दे०—बोबी । (३) (नवा, ब० भाग०) दे०—बड़ । [खुट + इया (अल्पा० प्र०) < खूट, खूटिका, खोड]

खुटहरा—(स०)—(साहा०-१) । दे०—खुटहरा । खुबल—(स०) कीपी-पीली बगह पर पशुओं का पहुँचकर बुझना । [खुब + ना (प्र०) < *खुद, $\sqrt{\text{खुद}}$]

खुभा, खोभा—(स०) फसल के बंटन से जनावन विकास के लिए की जानेवाली पहली बोनी (ब० भाग०, स०-२) दे०—बौर । पर्या०—खैप (बंभा०) । [खुभा, खोभा < खोद < $\sqrt{\text{खुद}}$ (=संवेचन), खूदना (हि०), खुनल (प्र०) अथवा $\sqrt{\text{खुर}}$ (प्र०) + < *खुर]

खुबसा—(स०) एक पशुनाथ पास । [देशी]

खुमूइल—(सि०) पानी बाँध के कारण लकड़ी बाँध का कमबोर, मृत्पात्र और हलका हो जाना (साहा०-२) । [देशी]

खुखुरी (स०) (१) बकई के भूटने में से माने निकालने के बाद बनी हुई छोट (ब०-ब०, साहा०, भाग०) । दे०—खैड़ा । पर्या०—हकी (सं०-५०), खुखुरी (भाग०) । (२) एक प्रकार का वाहन, जो छोटी सड़वार की तरह होता है । [(देशी), मिश्रा—खंखुर या कंकाल]

खुटहरा—(स०)—(साहा०) । दे०—खिनीरी । पर्या०—खुटहरा (साहा०-१) । (२) पशुओं का खोइना रंग (नव०-५) । [खुट + हर + आ < खूट + हल]

खुटिया—(स०) दे०—खूटिया ।

खुटियारी—(स०) ऊँस की खुट्टीवाला खेत (ख०-१) । [खुटिया + री (प्र०) < खोट]

खुट्टा—(स०)—(१) ईंकी का बहु स्तंभ, जिसपर वह टिकी रहती है (ब० भाग०, ब०-ब०) । दे०—बंभा । (२) मवेशियों के बाँधने का लकड़ी या बाँस का स्तम्भ, जो जमीन में गड़ा रहता है । (३) (प्र० स०, ब०-ब०) । दे०—खूटा । [< खूट (१) < खोड (=हाथी बाँध के बाँधने का खूटा), खूट (प्र०) । मिश्रा—< $\sqrt{\text{खूट}}$ (प्रतिघाते) —(प्र०-ब०), खूटा (हि०)]

खुट्टी—(स०)—(१) वह ऊँस, जो पहले कटे हुए ऊँस की बड़ से पंखा हुआ हो (ख०-१, बंभा०) । (२) कटी हुई फसल की बड़ । (३) लपड़ा बाँध लटकाने के लिए दीवार में बाँधी हुई कील । [खोट, दे०—खूटा]

खुट्टी खोइल—(बृहा०) हुल्ले साल के लिए कटी हुई ऊँस की बड़ को खोइ देना, ताकि फिर से उसमें पोषा उगे (ख०-१, बंभा०) । [खुट्टी + खोइल]

खुइल—(सि०) जमीन की ऊपरी सतह पर से मिट्टी या बाँस बाँध का हटाना (बंभा०-१) । [खुइ + हल + ख (प्र०) < खूट वा खूर + हल < हल]

खुरनी—(स०) कावड़ा, चोड़े कंक की कुवाक (नवा) । दे०—खौर । [खुरनी < खोदल (बिहा०), खोदना (हि०), मिश्रा— $\sqrt{\text{कुड}}$ अथवा $\sqrt{\text{खुद}}$ (=हिलना, होलना, चलना (नव०—प्र०—नो—वि० डि०)]

खुर—(स०)—(ब०, प्र० स०) । दे०—खुरी [< खूट]

खुराहा मालिक—(स०) जमींदारी में कम (खुरा) दाय रखनेवाला स्वामी (नव०-५) । दे०—खुरविहा मालिक ।

खुरिभा मालिक—(स०)—(बंभा०) । दे०—खुरविहा मालिक ।

खुरी—(स०) कावक का टूटा हुआ छोटा-छोटा टुकड़ा (बंभा०-१) । दे०—खुरी । [< *खूट, (संस्क०), < खूट (प्र०)]

खुर—(स०) ऊँस की छिड़ी, जो बलावन या बाँध के काम जाती है (सा०-१, स०-२) । [< खूट]

खुरी—(स०) बाँस, हल बाँध के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े । पर्या०—खैरौरा (ब०-ब०-साहा०), खेरखुन (ब०-ब०, बंभा०) । [खूट + ई (प्र०) < *खूट]

खुनहल—(सि०) कीपी-पीली या जमीन-जमाई जमीन या किसी हलसी बस्तु पर अनुप्य जयवा पशु द्वारा पैरों से कुचलना, जिससे उसपर पैर के चिह्न हो जाते हैं । [< *खोदन < $\sqrt{\text{खुद}}$]

खुम—(स०) बन रखने के काम

में जानेवाला एक प्रकार का भिट्टी का बड़ा बरतन (न०-ब०) । [< कुम (संस्क०), मिश्रा—कुम्प, कुम्भ = शोल बरतन (स०-बर०)]



खुर—(स०) लीपवाले लीपानों के पैर की कड़ी टाप, जो कटी हुई होती है (बंभा०-१, बिहा०, भाग०) [< खुर वा खूर । खूर (संस्क०), खुरी, खुर (सा०), खुर (प्र०) = खूर, खूर (सि०), खुरी (रोम०), खुर (बरनी), खुरि (पत्तो), खुर (बंवर) (ब०-ब०), खुर (बृहा०), खुरा (बस०), खुर (सि०), खुर (प्र०), खुरा (स०), खुर (सि०), खुर (प्र०), खुर (मरा०), खुर (स०)]

खुरकी—(स०) जमीन या किसी वस्तु फसल के साथ होनेवाली एक पास (ब०) । पर्या०—मछैती (ब०), रुबारी (सा०)—(मिश्रा—रुबारा) । [देशी, मिश्रा—खूरक = एक प्रकार का घोषा, खूटका (हि०)]

खुरखुन—(स०) पशुओं के द्वारा पद-दक्षित फसल (नवा, ब०-ब०) । दे०—बैंगण । [खुर + खून < खून, (खुर) + खून, खूनल (बिहा०), खूदना (हि०) < $\sqrt{\text{खुद}}$]

खुरचन—(स०)—(१) बरतन के खुरचने से निकली हुई शेष जमीन । (२) खुरचकर निकाली गई वस्तु । पर्या०—खसोरन (नवा, ब०-ब०, साहा०, ब०-ब०) । खसोरी (बंभा०, स०-२) । [< चरख < $\sqrt{\text{खुद}}$]

सुरपनी—(सं०) (१) दूध या मक्खन गर्म करने के पात्र की ठण्ढी में लगा हुआ अर्धव्यय परार्थ-विशेष (पट०, भा०)। दे०—ढाई। (२) सुरपने का बीजार। [सुरपन+ई (प्र०) <सुरपल (बिहा०), सुरपना (हि०) <सुरप]।

सुरदा—(सं०) फल के डंठल से अनाज निकालने के लिए की जानेवाली हथोरी (ब०-प्र०)। दे०—ढंटी दाँवक। [सुर+दाँव <सुर (भूर) वा चूद्र+दां, दमन <√दम्]।

सुरदिया मालिक—(सं०)। प० ब० ग०-५। दे०—सुरदा मालिक। [सुरदिया+मालिक <सुरदा+मालिक। सुरदा <चूद्र (ब०-प्र०), सुरा <सर्द (का०)+मालिक (का०)]।

सुरदिहा मालिक—(सं०) जमींदारी में बोझा बाव रखनेवाला स्वामी (सं० ब०, ग०-५)। पर्या०—सुरदिया, मालिक जुमबी दिरसे-वार (पट०)। सुरदाहा मालिक (ग०-५)।

सुरदिया मालिक (बं०, सा०)। [सुरदिहा+मालिक मित्रा०—सुरदिया मालिक]।

सुरदौती—(सं०) (ग०)। दे०—सुरदाइ तथा ढंटी दाँवक। [सुर+दाँती <सुर (भूर) वा चूद्र+दाँती <दांति <√दम्]।

सुरदौनी—(सं०) (१) (बं०, पट०)। दे०—सुरदाइ तथा ढंटी दाँवक। (२) कलहान बनने के समय मिट्टी को बैठाने के लिए उस जमीन पर बेलों को बसाना। [सुर+दौनी <सुर—भूर, वा चूद्र+दौनी <दमन <√दम्]।

सुरनी—(सं०) (ग०)। दे०—सुरनी तथा कौर। [सुरनी <सुरप वा चोदन <√चद]।

सुरदा—(सं०) बाव-नाल हटाने, गड़ने या फसल लग दूर संत की मिट्टी खरोचने के कार्य में आनेवाली छोई की बनी हुई सुरपी (बं०-१, ग०-५, पट०-४, स०-२, भा०)। [सुरप (स०), सुरप (भा०), सुरपा (सं०), सुरपे (स०) मूर्ति (सं०)]।

सुरपि—(सं०) (१) (स०-१)। दे०—सुरपा। [सुरपा+ई (प्र०) <सुरप]।

सुरपियान—(सं०) ऊपर-ऊपर से छिलकर बास आदि निकालने की प्रक्रिया (ब० प०) दे०—टिपनी। [सुरपा+इयाना (प्र०) <सुरप]।

सुरपियाना—(सं०) सुरपी से कोड़ा (विश्व-ऊपर-ऊपर की कोड़ाई) (ब० प०) पर्या०—कमैनी, कंरीनी (बं०, स०), कोइनी (सं० ब०), छेनी (ब० प०) वाहा०, केसौनी, कमौनी (ब० भा०, स०-२, ग०-५, पट०-४)। सुरपियावल—(फि०) सुरपी से छिलनी कोड़ाई करना। सुरपी से संत की पास-पास निकालना। (हि०) सुरपी से पास-पास आदि निकालकर साक की गई भूमि। [सुरपि+आवल (सं०) <सुरपी <सुरप]।

सुरपी—(सं०) (ब०, विहा०, भा०)। दे०—सुरपा।

सुरपेड़िया—(सं०) वह रास्ता, जो जेतों की मंड से होकर जाव (बं०-१, स०-२)। पर्या०—खुड़ाई (ब० बं०), सुरपाड़ी (सा०-१)। [सुर+पेड़िया <सुर वा चूद्र+पया (?)]।

सुरपा—(सं०) एक प्रकार की साव। कुल के की साव। पर्या०—गोसावा (पट०, ग०, सा०)। [सुरपा (का०)]।

सुरमा—(सं०) (१)—सुहावा। सूर का रंग। यह रेगिस्तान में होता है (पट०-१, ग०-५)। (२) जाट का बना एक प्रकार का भीठा साव। [सुरम (का०)]।

सुरपाड़ी—(सं०) (सा०-१)। दे०—सुरपेड़िया। [सुर+पाड़ी, वा सुर+पा+आड़ी वा सुरपा+की (प्र०)। सुर+आर वा आरी (बिहा०)]।

सुरसनिआ—(सं०) एक प्रकार का छोटा-सा मिर्चा, जो अत्यन्त तीता (कटुता) होता है (सं०-१, स०-२, ग०-५)। [सुरसनि+इआ (प्र०) <सुरसान]।

सुरहेठो—(सं०) गाव आदि के चलने से जमीन में उगनेवाला सुर का चिह्न (साहा०-१)। [सुर+हेठो (प्र०, या देवी) <सुर]।

सुरपी—(सं०) (सा०, बं०)। दे०—सुरपी। [सुरपी <सुरप]।

सुरपी—(सं०) (१) कड़ाही की पेंची में बोनी बैठने से बचाने के लिए उठे खरबनेवाला बीजार। पर्या०—सुरपा (सा०, बं०), कठसुरपी (ब०-प्र०, स०), वेइनी (पट०), डपटन (ब० भा०)। (२) दे०—सुरपा [सुरपी+ई (प्र०) <सुरप]।

सुराजरीद—(सं०) चोटी की वह प्रजाति, जिसमें नीच की चोटी करने के लिए निकले किसानों को बंदिग मूल्य तथा उचित मूल्य पर नीच का बीज देते थे, जिसका मूल्य बाद में हितार्थ के अनुसार चुका होता था। पर्या०—सुरसकी (बं०), नखिरतखानी (ब०-प्र०, स०)। [सुरा+सरीद (का०)]।

सुरसकी—(सं०) (बं०)। दे०—सुरसकी। [सुर+की <सुर (का०)]।

सुरसकी ठीका—(सं०) किसी विशेष निश्चित कर पर कुछ वर्षों के लिए की गई जमींदारी। [सुरसकी <सुर वा सुरसकी (का०) मिला०—सुरस (ब०-प्र०)+ठीका (हि०)]।

सुरससुरा—(सं०) ऊँच की मल का एक बंध, जिससे ऊपर रख अपने बंध में बसा जाता है और मिट्टी पुनः नीच के पास लीज जाती है (सी०, हि०)।

सुरसरी—(सं०) एक प्रविष्ट छोटी पीसी फली, जो स्वाद में अट-मिट्टी होती है। दे०—मकोष [सुरस+की <सुरसरी (?)], मिला० गूज-वेरी (सं०)।

सुरा—(सं०) (१) बाँस की कोठी या वह स्थान, जहाँ बाँस होता है (साहा० बं०, सा०)। (२) कपड़े का एक छोर (साहा०-१, बं०, सा०)। [मिला०—सुरा]।

सुरा—(सं०) (१) (स०, प०) दे०—सुरा और बं०। (२) यंत्रियों के बाँधने के लिए लकड़ी या बाँस का बना स्तंभ, जो जमीन में गड़ा रहता है। (बिहा०, भा०) (३)—वह स्तम्भ जिसके सहारे ढँकी बड़ी रहनी है। पर्या०—सुरा (प्र० स०, बं०-२), खंभा (प्र० स०, बं०-३), जंघा (बं० स०, सा०, बं०)।

सुराहा (बं० स०, सा०, बं०)। (४)—ऊँच के कोलू का सीधा लड़ा खंभा (पट०, ग०)। दे०—सुराहा। (५)—साठा के पिछले भाग के अंत में लगी कील, जिसपर मिट्टी आदि का भार बाँधा जाता है। पर्या०—सूँटी, गंदमेला—पट०, ग०)। सुराही (पट०), किल्ला (पट०, बं०-प्र०)। [सुरा, मिला०—सुरा, सुरा (भा०), मिला०—सुरा (प्रतिपाते)—(सं० स०)।

सुरा मानल—(बि०) वह यंत्रो। जो धिंधी के बाद पुनरे स्वामी के यहाँ जाने पर जाना छोड़ देता है। (साहा०-१, ग०-५, पट०-४, बं०, सा०)। [सुरा+मान+ल (बि० प्र०)]।

सूँटी—(सं०) (१) नीच, ऊँच आदि की हथोरी फसल, जो पहली फसल के काट लेने पर उसी की जड़ से उग आती है। पर्या०—सूँजी (ब०-प्र०, स०)। (२) ऊँच काट लेने के बाद उसके मूल से निकलता हुआ छोटा पौधा (सुरा), जो बाद में ऊँच बन जाता है (सं० ब०, बिहा०)। पर्या०—सूँटिया (ब०-प्र० स०), पनपा (बिहा०), सूँटी ऊँच (सी०)। (३) दे०—सूँटी। (४) ऊँच या किसी पौधे की जड़ या मूल (ग०, बं० भा०)। दे०—सूर। पर्या०—सूँटिया। (५) छोटा सूँटा या बीजा [सूँटा+ई (प्र०) <सूर, चूद्र। <सुरपट (भा०)—तेपा० मिला०—सूर (प्रतिपाते) (सं० स०)। सूँटी ऊँच—(सं०) दे०—सूँटी (सी०)। [सूँटा+ऊँच]।

सुरा, खोआ—(सं०) कलहान में जीवन के लिए छोटी हुई तैयार फसल (बं० भा०)। दे०—सूर। [सूर+खोआ <सूरक]।

सुरा—(सं०)—नखिरत या साइ की जड़ी के बीतर का बहुत ही मूल्यवान् गुदा (साहा०-१) [देखी]।

सुरा—(सं०) (१) वह बाजार, जिस पर अनाजार (कोठी) व्यवस्थित रहता है (पट०)। दे०—गोडा। (२) (बं० प०-साहा०) दे०—कदवार। [सूरक, <सूरक]

खेड़ी-(खं०)-(१) (पया)। दे०-खेड़ा। (२) लोढ़ो (पठ०)। (३) कोबो-बाति का एक प्रकार का अन्न। [< खात, कर्ष, गर्त, श्रेणी]

खेवट-(खं०)-(१) जमीन के मालिक का अधिकार-संबंधी कामकाज, जो जमीन की पैदावार के बाद तैयार होता है (सा०-१ चंपा०, मन०-५)। [खे + वट < खेत + बँट] (२) नाव को चलानेवाला मस्काह। [< *क्रेवट]

खेवा-(खं०) नाव से पार करने के लिए बिना जामेवाला लुक।

खेखरी के मान-(मुहा०) ऊसर जमीन (साहा०-१)। [खेखरी के + मान]

खेखसा-(खं०) एक प्रकार की बरतती कला का फल, जिसकी रसदार या सुखी तरकारी बनती है (पया)। दे०-बठेल। [देखी, मिला०-कीकस=कड़ा, कील, पतलियों की टहरी; खं०-बठेल के कांटों-जैसी लीलों के कारण ही खेखसा (कीकस) नाम पड़ा है]

खेकुहा-(खं०)-(बर०-१)। दे०-खंडा। [< *कर्व]

खेकुही-(खं०) एक प्रकार का फूल (बर०-१)। [देखी]

खेड़ा-(खं०)-(चंपा०-१)। दे०-खंडा। [< *कर्ष]

खेड़ी-(खं०) मूँग (बर०-१)। [देखी]

खेड़ा-(खं०)-(१) हरिस के ऊपर वाली बाँधने की जगह पर, उसके निचले भाग का कटा हुआ अंश। पया०-खेड़ा (गया), खेड़ी (साहा०)। खेड़ा (पठ०) खाता (चंपा०)। खादी (मं०), खेकुहा (ब० पू० मं०), खेड़ा (ब० पू० बिहा०), कादु (ब० पू० बिहा०), खेड़ा (चंपा०-१), खादी (मं०-२)। [< खात, < *कर्ष]

(२) मवेन वर्ष के शुरू (संग) से युक्त एक प्रकार का धान (मं० उ०, चंपा०-१)। पया०-खेड़ा (चंपा०-१), खेकुहा (बर०-१)। [देखी] खेड़ी-(खं०)-(१)-(साहा०)। दे०-खंडा। (२) बाँस, लकड़ी, पत्थर या ईंट आदि से

बनाई गई ऊपर बढ़ने की लोढ़ी। [< खात, < कर्ष, < श्रेणी]

खेत-(खं०)-(१) बहुजमीन, जो पहले परती हो, किंतु बाद में तीन वर्ष पहले से बाबाद हो रही हो। पर्या०-पही (चंपा०), पड़ (उ०-पू० मं०)। (२) खेती के योग्य जमीन का बिना या धीमित टुकड़ा (बिहा०, भाब०)। पर्या०-टोपरी, पारी (मं०-ब०), टोपरा (ब०), डाबर (चंपा, गया), बारी, बहिवार (ब० भाब०)। [< *खेत्र]

खेत गोबराल- (मुहा०) खाद के निमित्त खेत में पशुओं को बँटाना (ब० पू०)

खेतपथार-(खं०) मृत्वासी की मृत्त्वत्ति। दे०-खेतीवारी। [खेत + पथार < *खेत्र + प्रस्तार (= सममूँ), पथार (भा०), पथार (अस०)=वृद्धि रहित नीची जमीन]

खेतबधार-(खं०)-मृत्वासी की मृत्त्वत्ति। [खेत + बधार < खेत + पथार < *खेत्र + प्रस्तार, दे०-खेत पथार]

खेतभोज-(खं०) धान की रोपनी शुरू करने के प्रथम दिन किसान द्वारा दिया जानेवाला भोज (पू० मं०)। दे०-पहिलोप। [खेत + भोज < *खेत्र + भोज]

खेतभोजनी-(खं०)-पू० मं०)। दे०-खेतभोज तथा पहिलोप। [खेत + भोजन + ई < *खेत्र + भोजन]

खेतमास-(खं०) मूँग की बाति का एक दलहन (उ०-पू० मं०)। पर्या०-खेतमासु। [खेत + मास < *खेत्रमास (?)]

खेतमासु-(खं०) मूँग की बाति का एक दलहन (उ० पू० मं०)। दे०-खेतमास। [खेत + मासु, मिला०-खेतमास]

खेतहा कोंदड़ा-(खं०) खेत में होनेवाला कोहड़ा (पठ०-१)। [खेतहा + कोहड़ा < खेत्रीय + कुरुमाण्ड]

खेती-(खं०) खेत का काम खेत-सम्बन्धी कार्य। [खेत + ई (भा०) < *खेत्रीय]

खेतीवारी-(खं०) मृत्वासी की मृत्त्वत्ति (प० मं०)। पर्या०-खेतबधार (साहा०, पठ०), खेतपथार (चंपा०, ब० पू०, भाब०-१)। [खेती + वारी < *खेत्र + वार, वारिका]

खेती-मजदारी-(खं०) फसल या तरकारी काटने के समय कोहरियों द्वारा प्रकृत एक देवी।

[खेती + मजदारी < *खेत्र + मजदारी]

खेना-(खं०) दे०-जबना। [खेना < *खेना < *अक्षयि] दे०-अखेना]

खेप-(खं०)-१) बोलों के दोनों या किसी और काम का काम या पारी। (२)-(चंपा०)। दे०-खुवा। [< *खेप < *खिप]

खेपान-(खं०) ऊँच के रस का उतना परिमाण, जिसका एक बार में उखाका वा चकै (ब०-पू० मं०)। दे०-जाव। [खेपान < खेप (बिहा०) (= बर, क्रम) < *खेप < *खिप]

खेरी-(खं०) एक कलम, जिसके बाधक की बीर जल्दी बनती है। वह लोढ़ो की बाति काई (पू०-१)। पर्या०-खेड़ी (कहीं-कहीं)। [देखी, मिला०-कोरदू]

खेड़ा-(खं०)-(चंपा०-१)। दे०-खंडा। [देखी]

खेवट-(खं०)-(१) किसी जमींदार के किसी गाँव के हिस्से की लहमीक (सा०-१)। (२) वह कापड़, जिसमें मालिक, मकूरदार का बिरतदार के हक का इतराव रहता है, (सा०-१)। [खे + वट < खेत + वट < बँट]

खेसरा-(खं०) वह कामकाज, जिस पर खेत का गहर और संयुक्त किया रहता है। (सा०-१, चंपा०, मन०-५, पठ०-५, मं०-२)। [खेसरा-(भा०), खेसा (हि०), खेसे (मं०)]

खेसारि-(खं०)-(बर०-१)। दे०-खेवारी।

खेसारी-(खं०) एक प्रकार का दलहन, जो छोटा, किंतु तीन मोर से मोटा चिपटा, ऊपर से मट-मंका और नीतर पीका होता है। (चंपा०-१, मन०-५, पठ०-५, मं०-२, भाब०-१)। पर्या०-खतरी (साहा०), खेसारि (बर०-१)। लोको-मुकतारी, बैल खेसारी, धायन नाम, कायन काम।-मूलमामो को ताड़ी, बैलों को खेसागे, बाढ़ानों को काम तथा कायन को काम प्रिय होता है। [खेसारी < खेसकति, कुयार (हि० मं० सा०), खं०-खे + सारी < खेत + सारी < *खेत्राणि अथवा करोल्क (क + खं०) < क (= बाध या बल) + ख]

(हिंसायाम्) वा खेसा (पाके), जबना खेसु (सब्जे) वा चिपुट होने के कारण, कृषाम् (= धान = लीन) + पुट (?)। खेसारी (हि०), खेसारी (ब०), खेसारी (भा०), खेसारी (मं०)]

खेसा-(खं०) बिना रजिस्ट्री की गई जमीन-संबंधी कागज। (चंपा०-१, मन०-५, मं०-२, पठ०-५) [देखी, मिला०-खेसो (मं०)]

खेहा-(खं०)-(पठ०) दे०-खंडा। [< खात, < कर्व]

खेवा-(खं०) बड़ा टोकड़ा। [खेव + आ < खचित < *खच]

खेवी-(खं०)-(१) कोल में ऊँच के टुकड़े डालने-वाली टोकरी (साहा०, पू० मं०)। दे०-खेटी। (२) टोकरी। [खेव + ई (मं०) < खचित < *खच वा *खच (समवाय)]

खैर-(खं०)-(१) एक शनिख जैदीका वृक्ष। वह खंवा बाति के काम में जाता है। पर्या०-खैरा (चंपा०)। (२) धान के माथ काया नामवाला कला। [खैरि (संस्क०) खैरि (पा०), खैरि (भा०), खैर (हि०), खैर (कन्न०), खैर (जल०), खैर (ब०), खैर (लो०), खैरी (मि०), खैर (मं०), खैर (पू०), खैर (चंपा०), खैरि (बिहा०)]

खैरा-(खं०)-(१) धान में पतनका एक कीड़ा, जिसके कारण धान पीले रंग की हो जाती है तथा उसमें धान नहीं होता (प०)। पर्या०-खैरी (उ० पू० मं०)। [देखी, मन०-बरवाई वष के कारण < खैर < खैरि] (२) एक प्रकार का कंटोला वृक्ष। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और खंवा बाति के काम में जाती है (चंपा०-१)। [दे०-खैर-१] [खैर + आ (ब०) < *खैरि, < *खैरि]

खैरी-(खं०)-(उ०-पू० मं०)। दे०-खैरा। [देखी, मिला०-खैरा]

खोईचा-(खं०)-(पू०-मं०)। बट्टे के ऊपर की परतदार पतियाँ। दे०-काईचा। [कोशिक < कोश, < कुंघ वा *कुंघ, *खोद (= कंकवा, निःकलम)]

खोखरी-(खं०) मकई की बाल में से दाँवों को निकालने के बाद बची हुई बाँट (ब०-प० साहा०)

दे०—कोड़ी। पर्वी—बलुग्री (मग०-५) लेंदा (बं०)। [देशी, मिला०—खैरकी, कंकाल] खोच—(बं०) (१) ऊस के कोष्ठ के पेट में सुविषा के लिए लगाया गया लकड़ी का पाखंड (पू०)। दे०—रोड़ा। (२) लकड़ी से या किसी और पदार्थ से काँच कर बना जायात। [देशी, मिला०—खैर > खैर] खोचरी—(बं०) जल रकने के लिए लकड़ी की बनी हुई कोठी (बं० भाग०)। पर्या०—खोचली (मग०-५), खोच व० नु०)। [देशी, मिला०—खैर व० खैर (समवाय)] खोचली—(बं०) (मग०-५)। दे०—खोचरी। खोचल—(बं०) (१) किसी पीने की कुलनी को ऊपर से तोड़ देना (बं०-१, मग०-५, बं०-२, बं०)। (२) (बि०) (२)—कोटी हुई बस्तु (बं०-१)। [< खैर, (= कोटना) खैर (= तोड़ना) वा. खैर (बं०)] खोड़ा—(बं०) (१)—ब०-पू० बिहा०)। दे०—खोड़ा। (२) पहाड़ा [< खैर, < कर्ष, < कर्ष] खोता—(बं०) (१) एक प्रकार का फल (बं०-१)। (२)—पक्षियों का घंसेला। [देशी] खोप, खोपी—(बं०) (१) भूसा रखने के लिए लकड़ी या पत्थर का बनाया हुआ घर। बं०-२, बं०-२)। (२) बरतन के ऊपर का गोलाकार छप्पर (साहा०-१, बं०-१, ला०)। पर्या०—खोप के मधनी—बर्षा ऋतु से बचाव के लिए खोप के ऊपर लगाया हुआ छप्पर। (३) हिमालय के केशों का एक भुगार-विन्यास जिसमें वेणी भूगर्भ के लकड़ बनावट बनाई जाती है और उनमें खोप, जो पी



खोप, जो पी



खोप

(परा०), कपड़ी, कपड़ा (पू०), खोपो (बं०), खोपड़ा (बं०) (= बनी साड़ियों का बंगल)। खोपड़ा (हि०)= खोपड़ी, कपड़ा < खोप, कपड़ा] खोपड़ी—(बं०) (मग०-५, मग०-५)। दे०—खोपड़ा तथा खोपड़ी। [खोप+ड़ी (म०) मिला०—खोपड़ा] खोपी, खोप—(बं०) (म०-३०)। दे०—खोप। [खोप+ई (म०), मिला०—खोप] खोपा, खोपा—(बं०) (१) (बं० भाग०)। दे०—खोपा तथा खोप। (२) खोप के लिए खलिहान में छोटी हुई खोप फल (बं० भाग०)। दे०—खोप। (३) खोप का बना कोरा। [< खोप < खैर (पेच)] खोइया (बं०) (१) रस निकाल जाने के बाद का ऊस का डठल (बं०-२, बं०-२, बं०-२)। पर्या०—खोइया (बं०-२, मग०-५), खोइया (बं० भाग०), खैरुआ (साहा०, बं०-१), बगस बं०-१)। (२) खोप का बने के बीचका के ऊपर का छिन्ना (बं०-३०)। पर्या०—खोइया (मग०), खोइया (बं०-१० साहा०), खोइया (साहा०, बं० भाग०, बं०-१० बिहा०), खोइया (बं०-१)। (३) खोप का लकड़ रामबाग (बं०-१)। (४) ऊस चूने के बाद उसका चूना हुआ खोप भाग, जो फेंक दिया जाता है (बं०-३०)। पर्या०—खोइया, खैरुआ (बं०-३०), खोपा (बं० भाग०)। मिट्टी= खोपकर मूल से निकाला हुआ ऊस का खोप भाग। (५) किसी फल का छिन्ना (बं०-१)। [< कोशिक < कोश, < कुंठित < कुंठ वा. खोइत < खोइत < खोइत < खैर, < खोइत < खैर, < खोइत < खैर] खोइया—(बं०) (बं० भाग०)। दे०—खोइया। खोइया—(बं०) (१) मृत् के ऊपर की वस्ति (बं०)। (२) किसी वस्तु के ऊपर का स्थली छिन्ना। पर्या०—खोइया, खोइया (साहा०), खोइया (बं०-१), खोइया (बं०-१० साहा०), खोइया (बं०-१०)। पतौरा (बं०-१०), पंचो (बं० भाग०)। खलकाइया (बं०-५, बं०-५)। [< खोइत

< खैर, < कुंठित < कुंठ, < खोइत < खोइत वा. < कोशिक < कोश] खोइसा—(बं०) एक प्रकार का फल (बं०-१)। [मिला०—खोइसा] खोइसा—(बं०) पानी या मांस कादि से द्रव्य बना, मर्द, बाजड़े कादि को धुल (साहा०)। दे०—खोइसा। [देशी, मिला०—खैर (मग०) खैर (मति बंकेल्ये)] खोइली—(बं०) (१) कोठी या खोप के भीतर कुछ रखने के लिए बनाया गया छोटा-सा खोइसा, गवा, ताबा (बं०-१)। (२) काम के बगीचे में काम रखने के लिए बनी खोइकर और उससे ऊपर कुछ रखकर तथा बड़े मिट्टी से ढककर बनाया गया गड्ढा। इसमें बरतन की ओर नुई रहता है। (बं०-१)। पर्या०—खोइली (बं०) खोइली (बं०-२)। [खोइल + ई (म०) < खोइल, खोइल, < कोइल] खोइली—(बं०) दे०—खोइली-२ (बं०-१)। खोइली—(बं०) रसा (साहा०-१)। दे०—खोइली। [देशी] खोमी—(बं०) एक पत्त-काच पान (बं०-१०-१०, गवा, बं०-१)। [देशी, मिला०—खोमी (= बरतनी, खोमी गीक), खोमी, खोमी= एक प्रकार का बरतन] खोरा—(बं०) (१) इकट्ठा किये हुए जनाव की राशि (बं०-१०-१०)। दे०—खोरा। [खोय= खोय (बं०-१०-१०)] (२) पानी का घेरा। खोय का घेरा। खोय हुआ पानी (बं०-१) देशी, मिला०—खोय (बं०-१)। खोमी मिर्चा—रक काष्ठ। खोय, खोय (बं०-१)। (३) (बं०-१०-१०)। दे०—खोरा। [मिला०—खोरा] (४) खोय मचन का मिट्टी का बड़ा बरतन (बं०-२)



खोरा

खोरा—(बं०) (१) ऊस के उबाले हुए रस की रखने का बरतन (बं०-१०)। दे०—खोइली। (२) बड़ा बरतन, जिसमें कोष्ठ से ऊस का रस चूना है। पर्या०—खोरा (बं०-१०-१०), नाव (साहा०), कुंठा (साहा०, बं०-१०, बं०-१०)।

खोरा। (३) जल रकने के काम में जानेवाला एक प्रकार का मिट्टी का बड़ा बरतन (बं०-१०, गवा, बं०-१०)। (४) मृत् रखने का मिट्टी का बरतन, ताबा, बड़ा बरतन (बं०-१)। [मिला०—कुंठ, < खोइत का बना तेल या पान], खोइली (बं०) = काष्ठ की पेटी (बं०-१०-१०)। खोय < खोय। कूट वा कुंठ = एक प्रकार का बरतन। खोय या खोइल (= पान)] खोरासानी जवाइन (बं०) जलवायन की तरह का एक बरतन। [खोरासानी+जवाइन] खोय—(बं०) (१) पानी पटाने के काम में जानेवाले डेकुल के जल को बाकाओं में किया हुआ छिन्ना, जिसमें चुरी गड्ढा रहती है। (२) नाव में से पानी उपकन का एक बरतन (बं०-२)। (३) किसी वस्तु का ऊपरी भाग। (४) खोइने का छोटा कपड़ा। (५) दे०—खोय। [खोय, < खोय, < खोय, < खोय] खोइली—(बं०) (२) खोयकोव के ऊपर का छिन्ना, (बं०-१० साहा०)। दे०—खोइली। (२) खोइ के बांधों से निकाल लेने के बाद बनी हुई ऊपर की भूमी (बं०-१० साहा०)। दे०—खोइली। [खोय + ई < खोय (बं०-१०)] खोइसा—(बं०) (बं०-१०-१०)। दे०—खोय, खोय। [खोय + खोय < खोय] खोइसा—(बं०) (१) दे०—खोय। [मिला०—खोय] खोइ—(बं०) खोइने के लिए खलिहान में छोटी हुई खोप फल (बं०-१०-१०)। दे०—खोय। [< खोइय] खोइया—(बं०) (१) पत्त (बं०-१०)। दे०—खोइया। (२) (बं०-१०, गवा, बं०)। दे०—खोइया। (३) (बं०-१०)। दे०—खोइया। [< खोइत वा. खोइत < खैर]

ग

गोंद—(सं०)—(५०, भाग०-१) दे०—जीकड़।
[गोंद+त (प्र०)] जयवा <गोंद+तड
गंगा+आवर्त्त (सं०), गोंदवट्ट (प्र०)
मिला०—गङ्गाट्ट, गङ्गाट्टेय= सं० एक
प्रकार की मछली।
गोंदटा—(सं०)—(५०-५०, भाग०-१, भाग०-५,
पट०-४) दे०—अकड़ा : [गोंद+टा<गोंद
+तड, गंगा+आवर्त्त (?), मिला०—गङ्गाट्ट,
गङ्गाट्टेय]
गोंदटाहा—(सं०)—पट०, ५० भू०, भाग०-१,
भाग०-५, दे०—गोंदट्टियाहा। [गोंद+टा+हा
(प्र०)] <गोंदट्ट, गोंदवर्त्त (?), मिला०—
गङ्गाट्ट, गङ्गाट्टेय]
गोंदट्टियाहा—(सं०) कंकड़ मिली हुई मिट्टी
(पट०, गंगा, ५० भाग० भाग०-१, भाग०-५)
पर्या०—गोंदटाहा (पट०, ५० भू०), कंकड़ोटिया
(५० भाग०, भाग०-१), अकड़ाह (अ०-२)
दे० : [गोंद+टा+इया+हा (प्र०)
<गोंदट्टेय, गोंदवर्त्त (?), मिला०—
गङ्गाट्ट, गङ्गाट्टेय]
गोंदटी—(सं०)—(१)—५० भू०, भाग०-१।
दे०—अकड़ा : (२) नदी के किनारे मिलने-
वाला छोटा गोल घटनेवाला कंकड़, जिसे
पकाकर चूना बन जा जाता है (भाग०-५)।
[गोंद+टा+ई (अ०-२) प्र०] <गोंद+तड,
गोंदवर्त्त (?) मिला०—गङ्गाट्ट, गङ्गाट्टेय।
गोंदटी कपाल—(सं०)—भाग०-१। दे०—गमरी
केवाल।
गोंदवट्टार—(सं०) वह जमीन, जो किसी नदी
की धारा के घटने से निकलती है (भाग०-१,
अ०-५, भाग०-५) पर्या०—गोंदवट्टार। [गोंद+
वट्टार <गोंद (सं०)+वट्टार (का०); हि०
गं० ला०)। गोंद+वार (सं०) (?)।
वार=जयवा, विस्तृत भूमि; यवा "वार
आ पृथिव्याः"—अथ०—(बो० वि० वि०)।
गोंदवट्टार—(सं०)। दे०—गोंदवट्टार।
गोंदवट्ट—(सं०) गंगा की मिट्टी। यह दोनो रंग
की होती है (अ०-१, भाग०-२)। [गोंद+वट्ट

<गोंदवट्ट <गोंदवट्ट वा गोंदवट्ट (सं०),
<गोंदवट्ट (प्र०)। मिला०—गङ्गाट्ट, गङ्गाट्टेय
(सं०)=एक मछली]
गोंदवट्टार—(सं०) वह जमीन, जिसे नदी का बल
काट ले गया हो। दे०—गोंदवट्टार। [गोंद+
वट्टार <गोंद (सं०)+वट्टार (का०)
मिला०—सिक्क, सिक्क=भूविज्ञान के
के बाद छत्ते में बसा हुआ भूग, भूमि।
सिक्क=सिक्क, सैकत= (सं०) सिक्कामय,
जल से निकली हुई भूमि "सिक्कामयं तत्सुखिनं
सैकतं सिक्कामयम्" (अ०-५)।
गोंदवट्टार—(सं०) धान बा रबी की फसल का कूड़े-
करकट को एक स्थान पर एकत्रित करने की
प्रक्रिया (वि०)। [गोंद+वट्टार (प्र०) <गोंद]
गोंदवट्ट—(सं०) वह जमीन, जो एक बरसात से
केकर सूखी बरसात तक बिना आबाद किये
पौती जाती है और जंगली बरसात के समय
उसमें धान का बीज गिराया जाता है। दे०—
गोंदवट्टार [देशी, मिला०—गोंद
(सं०)=जयवा, गोंदवट्टार। गोंद (सं०)
जान, महिगावट्ट, मकान बनाने का स्थान।
गोंद (का०)=दाल, राशि। गोंदर=
(सं०)=धना जंगल]
गोंदवट्टार—(सं०) जल में छोड़ा पानी रहने पर
उसकी हल्की जोनाई कर देना। [गोंद+
वट्टार (प्र०) <गोंद <गोंदवट्ट (वि०)
गोंदवट्ट (वि०)।
गोंदवट्ट—(सं०) गोंदवट्ट का प्र०। गोंद
जयवा। इकट्ठा करवाना (वि०) गोंद
जयवा हुआ। [गोंद+वट्टार <गोंद (सं०)
गोंदवट्टार—(सं०) लाठा के पिछले भाग के अन्त
में लगी कील, जिसमें मिट्टी, परवर आदि का
भार बोधा जाता है (पट०, गंगा)। दे०—
गोंद। [गोंद+मेख्ता <गोंद+मेख्ता, मेख्ता
(=कील) <सिक्क]
गोंदवट्टार—(सं०) हवा से पानी बिलकर
छेत को सींचनेवाला यंत्र (५०-५०)। दे०—
जयवाहा। [गोंद+वट्टार, गोंद <गोंदारी
<गोंद वा केदार, कट्टार <कट्टार (वि०)
कट्टार (वि०) <कट्टार]।

गोंदसार—(सं०) ऊँच रोपने के पहले बीज के
रखने का गड्ढा (गंगा, भाग०-१) दे०—काद।
[गोंद+सार गोंद <गोंदारी (ऊँच का छोटा
टुकड़ा) <गोंद वा खंड, सार <शाल <शाला
अथवा गोंद <गोंद (सं०) गड्ढा (प्र०)
+सार <शाला]
गोंदसी—(सं०) चारा काटने का कोहरे का बना
टपियार, जिसमें छोटी, किन्तु कुछ भारी बेंड
लगी रहती है (५०-५० भू०)। दे०—गोंदसी।
[गोंद+सी <गोंद वा खंड+असि]
गोंदहार—(सं०) एक वृक्ष-जाति वाला (गंगा०,
गंगा, ५० भू०)। पर्या०—गड्ढार (५०-५०),
गड्ढारुआ, गड्ढारी (५०), गड्ढार (५०),
गोंदर (गंगा), गोंदर (पट०)। [देशी,
मिला०—गोंदर, गोंदर (सं०)=तृणधान्य,
गोंदरा (हि०) <गोंदाली]
गोंद—(सं०)—(१) चार मोड़ों का गन्ध किन्हीं
चार वस्तुओं का समूह। (२) काले सूतों की
एक प्रकार की माला (गंगा०) [गोंदक]
गोंदहार—(सं०) ऊँच की पहली सिंचाई (गंगा,
५०-५० गंगा०)। पर्या०—गोंदका (गंगा०,
अ०, भा०), पतंगडा (पट०), गोंदरी पटावन,
गोंदरी पटावन (५० भाग०), पहिल पटावन
(अ०-५)। [गोंद+हार, गोंद <कौट, हार
<दरल (वि०), दरल (हि०) <गोंदल
(गोंद) (?)]
गोंदारी—(सं०) (१) सींचने या बोने आदि की
सुविधा के लिए खेतों में बने हुए जमीन के
छोटे-छोटे टुकड़े (पट०, ५०-५०, भाग०-१,
भाग०-५)। दे०—कियारी। (२) (गंगा,
५० भू०)। दे०—बार। (३) पटाने के लिए
खेत में बनी छोटी ताली (५० भू०)। [गोंद
(सं०), गोंद (प्र०), गोंद, खंड वा केदार]
गोंदस—(सं०)—(१) २. अ०-१, भाग०-१,
भाग०-५)। दे०—गोंदसी।
गोंदसा—(सं०)—(१) (५० भू०) दे०—
गोंदसी। (२) करों के जाकार का एक अंग।
गोंदसी—(सं०) चारा काटने का कोहरे का बना
टपियार, जिसमें छोटी, किन्तु भारी बेंड
लगी रहती है (गंगा०, अ०-५)।
पर्या०—गड्ढारी (भाग०-१) गोंदसी



गोंदसी (५०-५० भू०), गोंदसा (५०
भू०), गोंदस भू०-२, अ०-१, भाग०-१)।
[गोंद+असी <गोंद वा खंड+असि]
गोंदवा—(सं०) कुआँ बगाने या जंगल की दीवार
बाँधने में प्रयुक्त मट्टी में पका मिट्टी का गोल
पट्टा या हट (पट०, ५०-५०)। दे०—लपड़ा।
[गोंद+उआ <गोंद वा खंड]
गोंदर—(सं०)—(गंगा)। दे०—गोंदर।
गोंदरी—(सं०) जाल, बुहारन (५० भाग०)।
दे०—जावर। [गोंद+असी <गोंद, खाद]
गोंदकटकी—(सं०) मिल की वह भट्टी, जिसमें
गंधक चलती है। इसके चूने से चीनी-मिर्चों में
चीनी साफ की जाती है। (हरि० १०,
वि०)। पर्या०—गंधकभट्टी। [गंधक
(हि०, सं०) +टकी <टैक (सं०)]
गंधकभट्टी—(सं०) दे०—गंधकभट्टी (१०)।
गंधकी—(सं०) एक छोटी हरी मक्खी, जो धान
के बीजे की हानि पहुँचाती है। (अ०-२,
अ०-५) [गंध+की <गंध। *गंधकीट]
गंधवा—(सं०) एक चढ़नेवाला कुम्भवात कीड़ा,
जो फूल लगने के पहले ही पवार आदि फसल
पर प्रहार करता है (पट०)। दे०—गंधी।
[<*गंधिक]
गंधी—(सं०) दे०—गंधी।
गंधरी—(सं०) एक प्रकार का काला धान, जो
बोने के दिन से केवल छठ दिनों में पक जाता है,
इसका चावल खाल होता है (प्र०, अ०-२)। इस
धान के बोने बाहर नहीं निकलते, बल्कि बोने
में पत्तों के भीतर ही पक जाते हैं। दे०—
साठी। [गंध+री <गंध]
गंधवा—(सं०) ऊँच की जड़ से निकलनेवाली
काबा, जिससे बीजे की हानि पहुँचाती है
(गंगा०)। दे०—गंधी। पर्या०—गंधी
(अ०-२, अ०-५)। [देशी, गोंदवा (?)]
गंड—(सं०) (अ०-५) दे०—गाय, गोर।
गंडसा—(सं०) दे०—गोंदसा।
गमरी—(सं०) कोहरे, पीतल या ताँबे का बना
पट्टा जिससे पानी रखने का पाय। दे०—
गमरी, गमर।
गमरी—(सं०), (२) वह बरतन, जिसमें पानी के रस

गरदामी—(सं०) (उ० पू० मं०) । दे०—बरदा-
बनी । [गर + दामी < *गल + दाम]
गरदाबनी—(सं०) कोल्हू के बँल की बरखन के
बारों ओर बँधी हुई रस्ती, जो पनहा और कड़ी
से संबंधित रहती है । पर्या०—गरदामी (उ०
पू० मं०) गरदानी (बं०) । [गर + दावनी
< गलदाम, गलदामन]
गरदेल—(बुहा०) खेत में उगी हुई बास को
खुरपी से निकालकर जलम करना । दे०—गर ।
गरनिकाखल—(बुहा०) (बर०-१) । दे०—गरदेल
[गर + निकालखल]
गरहर—(सं०) कुछ वा भकोड़े बागबर को
धागने से रोकने के लिए उसके मळे में बाँधा
गया लकड़ी का एक टुकड़ा वा पट्टा (उ० भाग०,
भाग २) । दे०—टेकर । [गर + हर । गर <
गल । हर (प्र०) वा < रह]
गरहरखा—(सं०) एक प्रकार की बास (बं०-१)
[मिला०—गवेधुन, गवेधुन का (हि०), (बिहा०)]
गरहा—(सं०) दे०—गड़हा ।
गरही—(सं०) छोटा गड़हा ।
गरही खरचा—(सं०) (ब० मं०) । दे०—गाई
खरच [गरही + खरचा (बेसी < गदही < गदहा
< गदहै; खरचा < खर्च (का०)]
गरौंड़ी—(सं०) पानी को खेत की सतह तक
ऊपर उठाने के लिए नबी, नहर बादि के जल-
प्रवाह के बीचोंबीच इस बार से उस बार तक
बाँधा गया बाँध (उ० प०, पद०, गवा) ।
दे०—बाँध । गर + औंड़ी < गंड (= चिह्न,
चिह्न) + औंड़ी < आङ, आर]
गरियर—(वि०) काम में बैठ जानेवाला बँल
(उ० प० शाहा०) दे०—पथरा । (गर + इयर
< गर < गड़ना; मिला०—गर, गरियर (भाग०)
गरियर—(सं०) वह बँल, जिसका रंग
मटमला हो ।
गरौंघन—(सं०) छोड़े या किसी दूसरे मवेशी के
के गले में बाँधी जानेवाली रस्ती । पर्या०
गरदाँव, गरदाँवा (शाहा०) गरदम (उ० पू०
मं०) । [गर + औंघन < गल + दामन]
गरौंघा—(सं०) बँलों की गरदन के चारों ओर

बँधी जानेवाली रोक रस्ती (पद०) । दे०—
नरघाँव । [गर + औंघा < *गलदाम, दामन]
गलइया मसीन—(सं०) वह मशीन, जिसमें
खराब तथा गंदी चीनी को गलाकर पुनः स्वच्छ
चीनी बनाने का काम होता है (री०) ।
[गलवया (बिहा०) + मसीन < मैशीन (बं०)
गलल—(वि०) वर्षा के कारण बाँहल या गला हुआ
बूट धबका कोई दूसरा धनाय (ता०) दे०—
नराइल । (कि०) (१) पानी में किसी वस्तु का
सड़ना । (२) जोड़े या विषय का विघटन ।
[गल + ल (प्र०) < गल, गलन < गृ; <
*गलति—मिला० गलति (संस्क०) गलति (वा०), गलई (जा०), गलन (कम०)
गलनु (बं०), गलणों (बुहा०), गलिया (मत०)
गला (बं०), गलिया (बो०) = किसी छेद से
निकासना । गलना (हि०), गलया (बं०),
गलपु (वि०) गलतु (बु०) मिला०—गालय
(सं०), गलणों (बरा०) < *गलति (संस्क०) से
मिल है । गलति (वा०) गदिया (मत०) = पानी
की तरह बिरना, गला (बं०) = चूना, गड़नु
(वि०), जलतु (बु०), गलणों (बरा०),
गलनु (वि०) < (बं०)]
गलाबल—(वि०) गल कि० का प्र० । खेत की
मिट्टी को खेत-ओड़कर पानी में गलाना । जोड़े
बादि वास्तुओं का पिचलावा । [गल + आवल
(प्र०) < गल < गलल < गलल < गल +
पिच गलवति (संस्क०), गल्ले गलावेइ
(भा०) गलाना (हि०) गलाउनु, गलनु (बं०),
गलान (बं०), गलणु (क०), गलणु
(वि०), गलनु (बु०), गलणों (बरा०)]
गल्ला—(सं०) (१) कलहाग
में इकट्ठा किया हुआ,
कसल के बोलों का, ढेर
(उ० प० बिहा०, बं०
२) । दे०—नाब । (२)
धनसंपत्ति, धनाज ।
[गल्ला (बं०)]
गवैई—(वि०) नाब का । [गवै + ई (प्र०)
< गवै < *ग्राम]



गल्ला

गवत—(सं०) (१) मवेशियों का खाद्य-पदार्थ, घास,
पुसाल बादि (बं०-१, शाहा०) । (२) बचान
में एक साथ बाँधकर पशुओं के खाने के लिए दिया
जानेवाला चारा (बं० उ०) । पर्या०—लेहना
(शाहा०, बं०), गौत (गवा), गौतहा (पद०) ।
[गल + त < *गवात् < *गवाय, गौत, गवत्,
घारा (हि०), घारो (बं०), गौअत्त (बं० भा०),
गवत् (बरा०), दे०—चारा, चरी (बिहा०)]
गवतघोर—(सं०) बोड़ा जानेवाला पशु (बं०
प० मं०, बं०-१) । दे०—निबोराह ।
[गवत् + घोर < गल + त + घोर < *गवाद +
घोर]
गवा—(सं०) (१) घास की रोपनी शुरू करने
के दिन-रूपक द्वारा अपने पड़ोसियों को दिया
जानेवाला मोब । पर्या०—गावा, गब (बं०),
पहिरोवा (पद०-४) । (२) घास के बाँध का
उतना परिमाण, जिसका एक बार में रोपा जाता
है । [देशी]
गवालेल—(बुहा०) पहले दिन घास का रोपना
(बं०) ।
गवै यौ खरच—(सं०) बनीधारों के बिचब में
होनेवाला एक प्रकार का खर्च (बं०) । दे०—गवाई
खरच । [गवै यौ + खरच (बेसी) < गवै यौ <
ग्राम + खरच < खर्च (का०)]
गसबन कडआ—(सं०) जिना अधिकारी हुए
की जमीन पर किया गया अधिकार (ता०-१,
बं०) । [गसबन + कडआ]
गहरा—(सं०) (१) उपजाऊ और साकसवर
मिट्टी । दे०—बरियार । (२) गड़हा, गहरा ।
[गम्भीर]
गाहीइ—(वि०) गहरा (बर०-१) । [गम्भीर]
गहूँ—(सं०) (बं०) । दे०—गहुम ।
गहुम—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती धनाज, जो स्वत-
रत वर्ण का होता है तथा जिसका बाटा काया
जाता है (पु० बिहा०) । पर्या०—गहूँ,
गहूँ (बं०) । दे०—गहूँ । [गेधुम
(संस्क०) > गेधुमो (भा०) > गेहूँ (हि०) ।
गम (बं०), गहूँ (बरा०); घऊँ, घेऊँ
(बु०); गेवी, गेवि, गेदी (कम०); गेधुम,
गेधुम, गेधुमस्तु (ते०); गेधुम, गहुम (बं०);

गहूँ (बं०); गेधुम (बिहा०); गेधुम (का०);
हिन्ता, हिताह (बर०)]
गहुमन—(सं०) (१) पीले (गेहूँ-ए) वर्ण का
पशु । दे०—पीमार । (२) एक प्रसिद्ध सीप ।
[गहुम + न < गहुम < गेधुम + वस्त्र]
गहुमा—(सं०) (१) रोपा जानेवाला एक प्रकार
का लाल-मोटा-चिपटा धान (उ०-पू० मं०,
ता०-१, बर०-१) । (२) एक प्रकार का
मवाई धनाज, जो उजला या लाल एवं गोल और
मृत्त पर चिपटा होता है । इसका बाटा या भूजा
काया जाया है । इसका पीचा लंबा होता है
और उसपर भवजिला कमल-जैसा धमन का
गुच्छ लगता है (बं० भाग०) । दे०—जनेच ।
(३) ज्वार की जाति का एक धनाज, जो छोटे
धाने तथा मटमले रंग का होता है (बं०
भाग०) । दे०—जवड़ा । [गहुम + आ (प्र०)
< *गेधुमक]
गौंज—(१) कलहाग में इकट्ठा किये हुये कसल
के बोलों का ढेर
(राशि) । पर्या०—
डाख (बं० उ०,
शाहा०, बिहा०),
गल्ला (उ०-प०) गौंज
(बिहा०), डेरी (गवा), काँड़, काँड़ा (बं०,
पू०), जम्हार (उ०-पू० मं०) । (२) कलहाग
में धबका कहीं अन्यत्र भी रखी हुई नेबारी
या पुसाल की राशि । (३) चारे के लिए
काटे धने जनेरे के बंडल की राशि (बं०) ।
पर्या०—डाख (पू०), जम्हार, काँड़ (बं०-
पू० मं०) । (४) खेतारी की कसल की राशि
(पद०-१) । [मिला०—गल्ल (बो०-वि०-कि०)]
गौंजल (वि०)—गौंजवा, इकट्ठा करना । [गौंज
+ ल < *गल्ल (संस्क०) (?) , गौंज (भा०),
गौंज (कम०), गौंजना (हि०), गौंजिबु (बु०)
गौंजले (बरा०)]
गौंजा—(सं०) (१) एक प्रकार की धावक वस्तु,
जो चिलम में बड़ाकर तथा धुकाकर रीजी जाती
है । यह वस्तु नेपाल या राजधानी में अधिक
पैरा की जाती है । इसी की जाति की भाँप
भी है, जो बँल में स्वयं होती है । (२) गौंजे



गौंज

का पीसा । [देखी, मिला०—गञ्ज (संस्क०) = एक प्रकार का पीसा । गञ्जा (स्त्री०) = साड़ी, महिलायन । गंज (प्रा०), गंजा (हि०, ने०, मल०, ने०), गंजा (बो०), गंजो (सि०) गंजो (पु०), गंजा (मरा०)]

गौमी—(सं०) एक प्रकार की मत्ता (बर०-१) । [मिला०—गञ्ज (संस्क०) = एक प्रकार का पीसा]

गौठ—(सं०)—(१) ऊँच, लकड़ी आदि का मोटा । (२) खीर के दो पोतों की पुष्क-पुष्क करनेवाली मंत्रि (सा०-१) । (३) किसी वस्तु को बाँधकर बनाया गया बड़ा बंधन । (४) कपड़े और रस्सी आदि में लगाई गई मंत्रि । (५) ऊँच, बाँध आदि के पोतों की मंत्रि (सं०-२, पद०-४, चंपा०, नाग०-१, मग०-५) । गौठवेशक, गौठ पारल (मुहा०) = गौठ बाँधना । किसी बात या घटना को याद रखना । [अंश, ग्रंथ (संस्क०) < गंठ (प्रा०), गौठ (हि०), गौठि, गौठो (ने०)]

गौठवेशक (मुहा०)—गौठ देना । किसी वस्तु या घटना को याद रखना ।

गौठपारल—(मुहा०) दे०—गौठ, गौठ देशक ।

गौहर—(सं०)—(१) एक प्रकार की चाँद, जो चान की फलक को हानि पहुँचाती है (ब० ने०, पद०, मग०-५) । दे०—गड़हर । (२) एक पल्ल-काय प्राप्त । दे०—गड़हर । [देखी, मिला०—गैयशुक (संस्क०)]

गौधी—(सं०) एक चढ़नेवाला दुर्गमदुस्त कीड़ा, जो बाल में फूल होने के पहले ही स्वार आदि लताय पर प्रहार करता है । पर्या०—गौधी, गौधवा (ब०, मग०-५), गौधी (उ०), गधुवा- (चंपा०), किरौना (ब०-प० साहा०), भेमरा (ब० मु०) । [< *गधिक, < *गधिन (संस्क०), गौधील (मरा०)]

गौव—(सं०) ग्राम, वस्ती ।

[< *ग्राम (संस्क०), ग्राम (प्रा०, प्रा०), ग्राव (रोमा०), ग्राम (इरवी), गौव (हि०), गाउँ (ने०), गाउँ (कुमा०), ग्राम (मल०), गाउँ (मल०), गौ, गौव, ग्राव (ब०, जो०), ग्रम, (सिंह०), ग्राम (काफि०)]

गौव के ठाकुर—(सं०) गाँव का स्वामी, बर्षा-दार (ब०-प० साहा०) । दे०—विमिदार । [गौव के + ठाकुर (बो०)]

गौव के खरब—(सं०) बर्षावारी के विषय में होनेवाला एक प्रकार का खर्च । दे०—गौव-खरब । [गौव + के + खरब (बो०)]

गौवघर—(सं०) पास-पड़ोस । [गौव + घर < ग्राम + गृह]

गौसी—(सं०) फाल की गिरने से बचाने के लिए कचारा के बड़े हल की मोक और फाल के बीच में ठोकी गई पक्की । [देखी, मिला०—गौमिना (हि०) = वेबल लगाना । गौमि, गमिन् (ने०) = वेबल लगाना, बोकना । गौस (ने०) = वेबल, जोड़]

गौई—(सं०) गाँव ।

गौई खरब—(सं०) बर्षावारी के विषय में होने-वाला एक प्रकार का खर्च । पर्या०—गौव के खरब, गौई खरब (बो०), साखीना खरब (ब०-प०-ने०), देही खरबा (चंपा, पु०-ने०), पसरा मात (पद०), बन्दखरब (ब० भाष०) । [गौई + खरब, गौई < गौव < ग्राम, खरब < खर्च (का०)]

गागर—(सं०) दे०—बगरी ।

गागर नीमो—(सं०) दे०—बगरी लंबी, गावल ।

गागल—(सं०)—एक प्रकार का बड़ा नींबू, जिसका फलक मोटा होता है (बर०-१, चंपा०-१, ने०-२) । पर्या०—गागल नीमो (चंपा०, साहा०) । [देखी]

गागल नीमो (सं०)—(चंपा०, साहा०) । दे०—गागल ।

गाड़—(सं०)—(१) बूँट या किसी दलहूय का बँठक, जिसे दोनों करके घुसा बनाया जाता है (ब०-प० ने०) । दे०—खैरा । २—बरहर या दूसरे दलहूयों का बँडुर या बँठक (उ०-पु०) । दे०—खिन्नी । (३) जाम, कटहल आदि फलों का बूँट । [< *गञ्ज (संस्क०), गञ्ज (प्रा०), गाड़ (हि०), गञ्जी (सिना०—इरवी), गाड़ (ब०), गस (सिंह०), गस (ने०)]

गाड़ी—(सं०)—(१) वह स्थान, जहाँ जाम, जमकद, कटहल आदि के पेड़ लगाये गये हों । दे०—

बर्गचा । (२) (बो०) । दे०—जाम के बर्गचा ।

(३) बीज की स्वारो (बिहार) से रोपने के लिए उखाड़ा गया बीजों का पीसा । दे०—बीसा । (४) भूमि पर उगा हुआ पहला बँडुर (उ०-पु० ने०, ब०-२) । दे०—खिन्नी । [गाड़ + ई (प्रत्यय प्रा०) < *गञ्ज]

गाजड़—(सं०) मूसी की आँस का एक प्रकार का मोटा कंठ, जो कच्चा और पकाकर, दोनों प्रकार से खाया जाता है (ब०-प० साहा०, ने०, मग०-५) । दे०—गजड़ा । [< *गजैर]

गाजर—(सं०)—(१) एक प्रकार की कपास, जो घर के पास बारी में उपजती है, न कि खेत में (ब०-पु० ने०, साहा०) । (२) दे०—गजड़ा, गाजड़, गजरा । [मिला०—गजैर]

गाड़ल—(सि०) गाड़ना । [गाड़ + ल (प्रा०) < गाड़ < *गर्त (संस्क०), गड़, गड (प्रा०) = छेद, गड़हा । गाड़ना (हि०), गड़नु (ने०), गाड़ा (ब०), गाड़ (बो०) = गड़हा, गड़हण (प०) = बोना, गड़हण (ल०), गाड़ो (पु०), गाड़ये (मरा०)]

गाड़ा—(सं०)—(१) ऊँच रोपने के पहले बीज रखने का गड़हा (साहा०) । दे०—गाव ।

(२) पशुओं का एक रोग । इस रोग के कारण पशुओं के सीधों की बड़ में कोपड़ निकलने लगती है (सा०-१, ने०-२) । पर्या०—परत, कोपड़ । [गाड़ा, गड़हा < गर्त वा कर्ष] (३) बैलगाड़ी (ब०, चंपा०-१) । [गाड़ + आ < गाड़ा < *गान्त्र, गन्त्री]

गाड़ी—(सं०) गाड़ी, बैलगाड़ी । पर्या०—गाड़ी, गाड़ा = बड़ी गाड़ी, गरी । [गाड़ी < *गान्त्र, गन्त्री (संस्क०), गड़ो (देवी प्रा०) गौड़ी (कन्न०), गाड़ी (हि०, ब०, बो०), गड़ु, गड़ो (ब०), गड़ु (ल०), गाड़ो (सि०), गाड़ी (मरा०, पु०) । टर्नर के अनुसार 'गाड़ी का सम्बन्ध < *गर्त (अर्थात् स्थान) से नहीं है, बल्कि < *गड़ु (= गाड़ना) से है ।'—(नेपा०) । किन्तु गाड़ी की व्युत्पत्ति < गन्त्र, गन्त्री या गन्त्रिका या से भी संभव है । दे०—गन्त्री = गाड़ी—हर्ष, अमर०]

गाड़—(सं०) घनी बोवाई । दे०—घन । (सि०)

गाड़ी वस्तु । [गाड़]

गाड़ा—(सं०)—(१) दे०—घन । (२) घना, गाड़ा । [गाड़]

गात—(सं०) एक प्रकार की घास की रस्सी, जो बोसा बाँधने के काम में जाती है (साहा०) । दे०—गठान । [दे०—गठान]

गावा—(सं०)—(१) (ब० मु०) । दे०—गैवा । (२) ठाड़ के लंबे बरतें या किसी दूसरी लंबी भारी वस्तु को दूसरी जगह पर ले जाने के लिए उसमें बंधी रस्सी के साथ लगाया गया बाँस का टुकड़ा । [देखी, मिला०—खनित्रक* > खन्ता, खईंता > गैता > गाता]

गाव—(सं०) गोपी जमीन (ब० मु०) । [गर्त, खत]

गाव, गावा—(सं०)—(१) मटर की जलपकी छीमी । (२) जलपके मटर की बनी शाक । (३) किसी तरह वस्तु की जिसकी सतह में बँटा हुआ मोटा बँस । [< *खाय (?)]

गावर—(सं०) बोधन के लिए काटा हुआ कच्चा बनाव (ब० मु०, चंपा०) । दे०—गवरा । [गाद + र < *खाय (१)]

गावा, गावा—(सं०)—(१) दे०—गवरा । (२) (क) मटर की जलपकी छीमी । (ख) जलपके मटर की बनी शाक (साहा०) । (३) पट्टे और लक के ऊपर का हरा पत्ता । [< *खाय]

गादा, गाद—(सं०) दे०—गाव, गावा ।

गादुर—(सं०) घना और मटर में लगनेवाला एक कीड़ा (ब०-प० साहा०) । [देखी]

गाभा—(सं०) (चंपा०, ने०-२) । दे०—गम्भा ।

गामिन—(सि०) गमिणी नाय आदि । [गाम + इन < *गमिणी < गम्ये, गमिनी (पा०), गमिणी (प्रा०), गामिन (हि०), गमिनि (ने०), गमिनि (कन्न०), गमिनी (रोम०), गमिणी (ब्रुमा०), गमिनि (मल०), गमिनि (ब०), गमिणी (सि०), गामन (मरा०, पु०)]

गाब—(सं०) हथ देनेवाली, सींग, पूँछ और साँसना (गलकंठ) से युक्त एक भावा मवेशी, गौ ।

उनके लिए लड़ने-झड़ने को सदा प्रस्तुत रहते हैं, इसीलिए इनकी स्थिति जैसी माभी गई है। गुदस्ता भूमि सदा के लिए एक निश्चित कर पर बंविबस्त कर दी गई है (यद्यपि कुछ जमींदार ऐसा नहीं मानते) और जमींदार की स्वीकृति के बिना ही बेची-खरीदी जा सकती है। यह एक प्रकार से सदा के लिए निजी संपत्ति होती है। यद्यपि इस भूमि के स्वामी इसे मुद्रिकल से बेचते हैं। वे कारखाने, सुखी एवं सम्पन्न होते हैं और मेमा में भी बहुतायत से बर्तते होते हैं। [गुदस्ता + दार (प्र०) < गुजस्ता (उर्दू) < गुजिस्त (फ़ा०) = दान की हुई या कर-मुक्त भूमि]

गुदस्ताधार—(सं०) दे०—गुदस्ताधार।

[गुदस्ता + दार < गुजिस्त (फ़ा०)]

गुदर—(सं०)—(१) फल काटने की मजदूरी (सा०, भग०-५)। दे०—विनीरा। [देखी, (सं०) < गुजिस्त < गुजिस्त (फ़ा०)] टि०—कटी हुई फल की २१ गाही १५ १ गाही की निश्चित मजदूरी दी जाती है (भग०-५)। (२) काटनेवाले व्यक्ति को प्रति बोता एक जाड़ी से देने पर बचा हुआ बोत का बंध (साहा०)। टि०—जाड़ी का परिमाण सर्वत्र एक-सा निश्चित नहीं है। यथा—भगली लोकोक्ति से स्पष्ट है:—‘कोई कटनिहार कैं, गुंजर सन जाड़ी।’—(साकसी) कटनिहार अपने लिए गुंजर (गुंजर)—जैसी मोटी जाड़ी बाँधता है। [देखी]

गुदारी—(सं०) फल काटने की मजदूरी (गवा०)। दे०—विनीरा। [गुदस्ता < गुजिस्त < गुजिस्त (फ़ा०)]

गुदल—(फि०) गुनगा, गचना करना, रस्ती का बँटना। (फि०) गुनी हुई, बँटी हुई। [गुन + ल < * गुण (= गुणयति)]

गुना—(सं०) (१) गुना, पणित का एक भेद। (२) रस्ती के बँटने में रङ्गनेवाली ऐंठन। [गुना < * गुण, * गुणक (सं०), गुण्य (पा०, प्र०), गोन (ड०) गुणी (फिना०), गैनु, कवनी०), गुया (व० पहा०), गुना (ने०), गुया (अस्त०), गुया (नं०, भो०), गुन, गन (हि०), गुण्य (व०), गुण्य (सि०), गुण्य (गु०, बरा०)]

गुमटी बाबू—(सं०) चीनी-मिष्ठ का एक कर्म-चारी, जिसके हस्ताक्षर के बिना ऊँच की पुर्बों का खर्चा किसान को नहीं मिलता है (बिह०, रो०, हरि०)। टि०—बब ऊँच ठोलवाकर एक कर्मचारी ऊँच का परिमाण लिखकर पुर्बों ऊँच जानवाले किसान या गाड़ीवान को दे देता है, तो वह किसान या गाड़ीवान उस पुर्बों को लेकर गुमटी बाबू के पास जाता है; वह उसपर अपना हस्ताक्षर कर देता है। यदि उसे संदेह हो जाय, तो वह पुनः उस गाड़ी की ठोक कराता है और पहली पुर्बों से उसका मिलान करता है, जिससे कि ताल में कमी-बेशी न हो। [गुमटी + बाबू]

गुमल—(फि०)—(१)—बँटक के साथ उसकी बाक रख देने पर कुछ दिनों के बाद गुलकर धानों का स्वयं छटना या उस धान का मलायन हो जाना (सा०-१, बंवा०-१, नै०-२, पू० नै०)। (२) पाक पर रखने के बाद धान आदि का और धुआँ देने पर केले आदि का पकना। [गुम + ल, गुमका (देखी) = भूसी से धाना जलन करने का काम (हि०, सा०)]

गुमलल (फि०)—(१) नीचे हुए धान की, सम्पुष्टि हुआ और धूप नहीं पाने पर, सड़ने के पूर्व की स्थिति (बंवा०-१, भग०-५, पट०-४, नै०-२, भाष०-२)। (२)—(फि०) गुमसी हुई (गुमल)। वस्तु। [गुमल + ल (प्र०) < * ग्रीष्म (?)]

गुमललल—(फि०) गुमलल फि० का प्र०। गुमललल।

गुमलल—(फि०) गुमल फि० का प्र०। गुमलल।

गुमारस्ता—(सं०) किसी जमींदार या महाजन का कर्मचारी, जो घूम-घूमकर जमींदारी या महा-जनों का सकाशा और काम देता करता है (सा०-१)। [(फ़ा०), गुमास्ता (हि०), गुमास्ता (ने०)]

गुम्मा—(सं०) दे०—गुमा और गुमा।

गुग, गूर—(सं०) ऊँच के रस को पकाकर तैयार किया गया दानेदार ठोस पदार्थ। पर्या०—गुड़ा। [गुड] टि०—गुड़ कहीं राख और कहीं चबकी के रूप में होता है, जानने-पीने के

लिए इसकी छोटी-छोटी जेली भी बनाई जाती है। जेली को मगही से ‘अदरकी’ भी कहते हैं; क्योंकि इसमें स्वाद के लिए प्रायः अदरक मिलाई जाती है।

गुदचलना—(सं०) अन्न ताप करने की चकली (उ०-पू० नै०)। दे०—चकला। गुर + चलना।

गुदहन—(सं०) ऊँच के उबाले हुए रस को ठंडा करने के लिए लकड़ी या कोहे की बनी चम्मच (साहा०)। दे०—सामिया। [गुर + दन < * गुड]

गुदम—(सं०) सक्की की बनी छोलनी, जिससे ऊँच का रस या गुड चलाया जाता है (सा०-१)। पर्या०—गुदहन। [गुर + दम < * गुड (?)]

गुदल—(सं०) धनुष के बाकार की बनी चीज, गुदल



जिसकी प्रस्था की रस्सियों की बनी रहती है और बीच में दोनों रस्सियों को जोड़ी हुए एक एक-दुसरे में बुनकर एक स्थान बनाया जाता है, ताकि उस पर गोली रखी जा सके। यह जेलों से चिड़ियाँ आदि भगाने और मारने के काम में जाता है। इसकी गोली मिट्टी की बनी होती है (बंवा०-१, भाष०-१, नै०-२)। पर्या०—गुलल। [देखी, दे०—गुलल]

गुदलल—(फि०) फल का पकना शुरू होना और मोटा होना (साहा०-१)। [गुदलल + ल (प्र०) < गुयाध, गुयाधल, गुयाध, गुयाध (?)]

गुदरी—(सं०) मिट्टी का बड़ा बरतन, जिसमें जम जने के बाद गुड़ रखा जाता है (नै०)। दे०—माट। [गुर + री < गुड + पात्र (?)]

गुदमिया—(सं०) एक प्रकार का परबल, जो बाल और छोटा होता है (बंवा०-१)। [गुदमि + मी (प्र०) < गुमि (देखी)]

गुदला—(सं०) करीब एक हाथ लंबा, सास कर रसकी की लकड़ी का बना टुकड़ा, जो बँडक (माटा) के बाल में दोनों कनकियों के बीच में जमा रहता है। इसके विना बँडक

नहीं चल सकती है। धूरिल्ली (सा०-१)। [देखी]

गुदहंडी—(सं०) गुड़ रखने का माट (व० भाष०)। दे०—होव। [गुर + हंडी < गुड + हंड (क)]

गुदही—(सं०)—(१) एक प्रकार का धान (बंवा०-१)। [गुद बां गुद < गुड] (२) फल के बोझों को बाँधने के लिए कितनी धास की ऐंठी हुई रस्ती (साहा०)। [गुर + ही < * गुण]

गुदीच—(सं०) एक प्रकार की कला, जिससे औषध बनाया जाता है। [गुदुची]

गुदुच—(सं०) दे०—गुदीच।

गुदही—(सं०)—(भग०-५)। दे०—गुदही।

गुलजाफरि—(सं०) एक प्रकार का फूल (ड०-२)। [गुल + जाफरि (फ़ा०)]

गुलजामु—(सं०) एक प्रकार का फल (ड०-१)। [गुल + जामु < गुल (फ़ा०) + जामु < जामुन = जंजु]

गुलजामुन—(सं०)—(१) एक प्रकार के फल का वृक्ष। इसका फल गोल और मीठा होता है (पट०-१)। (२) जामुन का एक भेद, जिसका फल अपेक्षाकृत बड़ा, रसदार और मीठा होता है (मिला०—कठजामुन)। (३) एक प्रकार की मिठाई। [गुल, गुलाब (फ़ा०) + जामुन < * जमू]

गुलदावरी—(सं०) एक प्रकार का फूल, जिसका पौधा छोटा तथा फूल गुच्छदार होता है (भग०-५)।

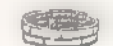
गुलदावरी—(सं०) एक प्रकार का फूल (ड०-१)। [गुल + दावरी (फ़ा०)]

गुलफा—(सं०) एक प्रकार का साध (नै०-२)। [देखी, मिला०—गुल्फ]

गुलमिरिच, गुलमिरिच—(सं०) एक प्रविष्ट तीली, काली फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है, काली मिर्च। दे०—मिरिच। [गुल + मिरिच < * गुल + मरीच]

गुलाईची—(सं०) एक प्रकार का फूल। दे०—गुलची। [गुल + चीन (फ़ा०)]

गुलाब—(सं०) एक प्रसिद्ध फूल, जो जाल और गुलाबी रंग का होता है। फूल के वृक्ष में और



संस्कृतभाषा

का होता है। जैसे—रस्ता, खर बादि।
[गैर + मजल्ला + आम (आ०)]
गैरमजल्ला खास—(सं०) वह जमीन, जिसपर
मासिक (जमींदार) का अधिकार रहता है।
[गैर + मजल्ला + खास (आ०)]
गैरमोहसी—(सं०) वह कायकारी जमीन,
जिसपर मोहसी हक नहीं मिला हो। पर्या०—
पाही (पठ०, गवा), खरिदगी (गहा०), हाल
खपारगित (उ०-पु० सं०)। [गैर + मोहसी (आ०)]
गैरबाह्या—(सं०) (सं०-२)। दे०—गैर।
[गैर + बाह्या ; मिश्रा०—गैर]
गैर—(सं०) (चपा०) दे०—गैर।
गैराह—(सं०) बीजों को चढ़ानेवाला मनुष्य
(उ०-पु० सं०)। दे०—चरबाह। [गै + वह
(प्र०), गै + वह < वह (सं०)]
गोइजी—(सं०) एक प्रकार की मछली, जिसका
मुँह और पूँछ पतली होती है (गहा०-१)।
पर्या०—गाईजी (पठ०-४, चपा०, गवा०-५),
गाईजा (चपा०, सं०-२), गैजी (भाग०)।
[देशी, मिश्रा०—गोइज]
गोगरा—(सं०) कटा में होनेवाली एक प्रकार की
तरकारी। यह हरे रंग और लंबे आकार की
होती है। (पठ०-२)। पर्या०—परोर, नेनुआ,
सोइई, तोरई, चिंवा (चपा०, गवा०-५,
पठ०-४)। [देशी, महाकोशात्की, हस्तिचोषा
(संस्क०), नेनुआ, अकी तोरई, चिया तोरई,
चिउरा, घेवा (हिं०), हस्तिचोषा, पुँधुल (सं०)
घीसले, घीसाला (गरा०), घीसोका (पु०),
तुप्परी (क०), तरि (लो०)]
गोमी—(सं०) (सं० गल०, पठ०-४)। दे०—
बाबा। [मिश्रा०—गोमी जो = गंभीर (ग०-सं०-१०)]
गोमी—(सं०) बारा बिलाने के लिए मिट्टी का
बना हुआ और धूप में सूखकर तैयार हुआ
लंबा नाव (उ०-पु०, गवा०-५)। दे०—चरम।
[देशी, मिश्रा०—गोमी, गोमी (संस्क०) =
बोरा, एक प्रकार की नाव]
गोद—(सं०) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि।
दे०—गोईका। [गो + द < ग्राम + आद्र्य
वा गो < गृह < *ग्रह]
गोड़ा—(सं०)। दे०—गोई।

गोत—(सं०) नाव का पेशाब (चपा०-१,
सं०-२)। [गो + ओत < ऊँत < मुँत < मुत्त
< मूत्र, गोमूत्र (संस्क०), < गोमुत्ति (आ०)]
गोदौरा—(सं०) (प०)। दे०—कावर।
[देशी, संम०—गो + दौरा < *गोमय + दौरा]
गोआ—(सं०) (१) (प०) दे०—कावर।
[गोमय > गोमय > गोआ] (२) काठी
का मोटा अंतिम छोर (उ०-पु०)। दे०—
हुरा। [देशी, मिश्रा०—गोआ (संस्क०),
गोफ (आ०)] (३) (उ०-पु० सं०)। दे०—
कावर। [< *गोमय]
गोआ पटाओल—(गहा०) ऊँस के बीने पर
सिंघाई किये बिना ही उसके बीच पर खार (सड़ी
पत्ती, बास आदि) देना (उ०-पु० सं०)। दे०—
कविनाओल। [गोआ + पटा + आओल (प्र०)]
गोआम—(सं०) (१) नदी, नहर आदि में नाव
बाँधने के लिए लगाये गये मनुष्य (पठ०, गवा,
गवा०-५, पठ०-४)। पर्या०—गोआम (गवा०-
५)। (२) मारुगुजारी के अतिरिक्त किसानों
द्वारा जमींदारों को समर्पित स्व-सेवा (पठ०,
गवा, उ०-पु०)। पर्या०—गोहार। [देशी]
गोआल—(सं०) मवेशियों के रहने का स्थान,
गोष्ठ (उ०-पु० सं०, चपा०)। दे०—बचान।
[देशी, मिश्रा०—गो + आल < गो + आल
< *आस्त वा बास]
गोइठा—(सं०) दे०—गोईठा।
गोईड़ा—(सं०) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि,
जिसमें गाँव की गंदगी, सड़ी-पत्ती आदि
पानी के बहाव के साथ बहाया करती है। पर्या०—
गोईड़ा, गोँड़ा, गोँड़ा, बाघ, कोदार, कोरार
(पठ०, प०), डिहंस (गहा०, पठ०, गवा),
घरबारो (पठ०, उ०-पु०), बाकी (प० भाग०)।
[मिश्रा०—गोईड़ा]
गोईड़ा—(सं०)। दे०—गोईड़ा। [मिश्रा०—गोईड़ा]
गोकुलफूल—(सं०) रोपा जानेवाला एक
प्रकार का बान (गवा)। [गोकुल + फूल
< गोकुल + फुल्ल (?)]
गोकुलसार—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार
का बान (उ०-भाग०)। [गोकुल + सार
< *गोकुलसालि]

गोबुला—(सं०) (१) बॉन की फल को हानि
पहुँचानेवाली एक कटिदार बास (प० सं०,
पठ०, गवा, उ०-पु०, पठ०-४, गवा०-५, सं०-२,
चपा०)। पर्या०—गोरबुल। (२) ऊपर वा
परती जमीन में होनेवाली और जमीन पर
कलने वाली एक कटिदार बास, जिसकी
फलियों पर टेढ़े काँटे होते हैं। [< *गोबुल]
गोबर—(सं०) चरगाह।
गोबारि—(सं०) सुरक्षित चरगाह (पठ०-१)।
[गो + चरि < *गोधर]
गोली—(सं०) बान की पहली रोपनी के समय में
कोड़े-मकोड़ों से बान की रखा करनेवाले
देवदा की मदिरा, दूध, गुँबा और तेल से
पूजने की एक रीति (उ०-भाग०)। [देशी]
गोजड़ा—(सं०) गँहूँ और चो की मिली हुई
फल; गँहूँ-चो बाँध मिला हुआ अनाज
(पठ०-१, चपा०, गवा०-५, भाग०)। [गो + जड़
< गोहू + जड़ < *गोधूम + यव]
गोजी—(सं०) पतली काठी (चपा०-१) [गो + ज
+ ई (प्र०), < *गो + अज < *अज]
गोट—(सं०) (१) पीले या काले-नीले वर्ण का
गोक दानोवाला तेलहन, जिससे कड़वा तेल
निकलता है (पु० सं०, पठ०-१)। दे०—
सरहों। (२) व्यक्ति, वस्तु, लंब। [देशी,
मिश्रा०—गुटिका (संस्क०) = गोटी, गोष (हिं०,
प०) = टुकड़ा; गोटी, गोटा (हिं०) = कपड़े
पर लगाई जानेवाली सुनहली या जहरी
बस्तु, किनारी। गोटा (प०), गोटी (सं०) =
टुकड़ा, गोटा (सं०) = प्रतिवस्तु; गोटा
(सं०) = अविमल गोटा (अस०) = परिचाय,
इकाई, गोटा (सं०) = एक, गोटा (सं०) तंबाकू
का गोला; गोटी (पु०) चाँदी का गोला,
गोटी (गरा०) गोल परवर]
गोट, गोटा—(सं०) मकई के मूट्टे में से निकला
हुआ अनाज। [देशी, मिश्रा०—गुटिका]
गोटा—(सं०) (१) शीब (उ०-भाग०)।
दे०—सीया। (२) दे०—गोट। (३) दे०—
गोट-१। (४) साँके में लगाई जानेवाली
एक प्रकार की किनारी। [देशी, मिश्रा०
—गुटिका]

गोटापल—(सं०) मकई, जनेर आदि फल की
बास का दूध (अस के रूप में) होना (भा०, प०
सं०, चपा०, गवा०-५, पठ०-४)। दे०—
हबसाएल। [गोटा + आपल (प्र०)
< आप्य (संस्क० ना० भा० प्र०), गोटा
< *गुटिका]
गोटी—(सं०) (१) मकीम की टिकिया। (२)
नील की टिकिया। (३) मिट्टी, पत्थर या
लकड़ी बाँध का छोटा गोल टुकड़ा, जिससे बच्चे
गोटी का खेल खेलते हैं। गोटी देखोल—
(गहा०) = संघर्ष के बंदबाँध में गोटी से निर्णय
करना (गवा०-५)।—गोटी बैठावल (गहा०
चपा०-१) दे०—गोटी देखोल। अपना काम
बनाना। [< *गुटिका]
गोटीघर—(सं०) नील की टिकिया बुनाने का
घर। [गोटी + घर—मिश्रा०—गुटिकापृष्ठ]
गोटी देखोल—(गहा०) दे०—गोटी।
गोटी बैठावल—(गहा०) दे०—गोटी।
गोटी—(सं०) (१) पीले या काले-नीले
वर्ण का गोल दानोवाला तेलहन, जिससे
कड़वा तेल निकलता है (उ०-भाग०)। दे०—
सरहों। (२) दे०—गोट-२। [मिश्रा०
—गुटिका]
गोठर—(सं०) दे०—गोठीर।
गोठवल—(सं०) गोयठों के रखने का घर।
[< गोष्ठ + कुल]
गोठी—(सं०) साफ की हुई रई का ढेर।
[< गोष्ठी, गोष्ठ]
गोठीर—(सं०) गोयठों का ढेर (गवा०-५,
भाग०-१)। [गोष्ठ + और, गोष्ठ < गोइठा,
< गोविष्ठा (१); उर < पू वा कुल]
गोइ—(सं०) मनुष्य, मवेशी या किसी वस्तु का
घर। [गोइ < *गोइ (ग०), गुर (सीमा०),
गोइ (सं०, कुमा०), गोर (अस०) = पेड़ का
तना, गोइ (सं०), गोइ (सं०), गोइ पिंडा
(सं०) = बड़िया। गोइ (हिं०), गोइ (प०)
= घटने। गोइ (सं०), गोइ (सं०)]
गोइपीठा—(सं०) कुर्छे के आरधार रखा गया
लकड़ी का लकड़ा, जिस पर लड़ा होकर पानी
निकाला जाता है (उ०-प०-सं०)। पर्या०—

पौठा (पट०-४) । दे०—परिचयः । [गोडू+पेटा<गोष्ठ (सं०), पोट्ट (प्रा०)=बैच, मूक । गोडू<*गोडू (प्रा०)]

गोडूवीर—(सं०) मोट खोचनेवाले बैलों के लिए कुएं के पास बना हुआ शम्भू मार्ग (सं० सं०) । दे०—दीर्घ । [गोडू+वीर, वीर < वीर < पौरी < पकोडी < *प्रतेली]



गोडूवा—(सं०) एक मछली-विशेष । इसके कई पैर होते हैं (शाहा०-१, चपा०-१, पट०-४, अग०-५) । [गोडू+वा (प्रा०) < गोडू < *गोडू (प्रा०)]

गोडूना—(हि०)—(१) चरते हुए पशुओं की इकट्ठा करना (चपा०-१) । (२) मृषि को बुलाक या मुरी आदि से कोड़ना । [गोडू+ल (प्रा०)मिला०—गौर < *गुरी (अछमने=उठाना) वा *गुण्ड, *गुण्ड (=इकना=अंतरा), गोडूना, गोडूना (हि०), गोडूना (ने०)=खोचना, घामराव विकालना, खेत भादि को साफ करना । गोडूणा (सं०)=कोटना, गोडूनी (सं०, सि०), गोडूणा (सं०), गोडूनी (पु०)]

गोडूवा—(सं०)—(१) वह आभार, जिसपर अन्ना-गार (कोठी, बकारी आदि) अवस्थित रहता है । पर्या०—बेसना (सं०-पु० सं०), बैसक (पु० सं०, सं० पु०), खूरा (पट०), कोटा (शाहा०) । (२) गेहूँ की फलक का नुकीला अंश, जो बंट के अंदर रहता है (सं०-उ०-५०) । दे०—खूरा । (३) बरतन के नीचे लगा छोटा आभार । (४) किवाड़ के नीचे लगा लकड़ी का जंका टुकड़ा । (५) व्यक्ति या कोई एक वस्तु । दे०—गोट-२ [गोडू+आ<गोडू (देशी), <*गोडू (प्रा०)]

गोडूवाइत—(सं०)—(१) गाँव में बहरा देनेवाला दुमाइ । (२) वर्षाशी में काम करनेवाला निम्न स्तर का चोकर, जो समय पर गाँव के लोगों की इकट्ठा होने की सूचना दिया करता है । [देशी]

गोडूनी—(सं०)—(१) पशुओं का नामना रोक्ने

के लिए उनके बगले दोनों पैरों को बाँधने की रस्ती (सं० भाग०) । दे०—पड़ । पर्या०—छान (पट०-४, सं०-५, चपा०) । (२) स्त्रियों या बच्चों के पैरों में पहना जानेवाला चाँदी का बना आभूषण । गोडूनी



[गोडू+आनी (सं०)<गोडू (प्रा०)] गोडूनी—(सं०) मिट्टी या पकी ईंटों का बना हुआ नाका-बँसा स्थान, जिसमें मवेशियों के खाने के लिए चारा रखा जाता है और जिसके दोनों ओर झूँटों में मवेशी बँधे रहते हैं (सं०-१) । [देशी, मिला०—गोडूनी]



गोडूनीलक्ष्मी—(सं०) एक प्रकार की कृता (वर०-१), [गोडूनी+लक्ष्मी (देशी)]

गोडूवैत—(सं०)—(१) गाँव की ओर से नियुक्त गाँव में बहरा देनेवाला व्यक्ति । पर्या०—कोत-बाक, चौकीदार । (२) दे०—गोडूवैत । [गोडू+वैत (सं०)—जैसे लोट्ट+वैत=लोट्टे । गोडू=गोडूल, अंगोखल, अंगोरमा (हि०)]

गोडूवैतक मूठ—(सं०) चौकीदार की किसान की ओर से मिलनेवाला पारिश्रमिक (सं०-पु० सं०) । दे०—चौकीदारी । [गोडूवैत+क (विभ०)+मूठ]

गोडूवैती—(सं०)—(१) चौकीदार को किसान की ओर से मिलनेवाला पारिश्रमिक (सं०-पु० सं०, चपा०, पट०-४) । दे०—चौकीदारी । (२) गोडूवैत को मिलनेवाला पारिश्रमिक । [गोडूवैत+ई]

गोवल्—(हि०) मवेशियों के खाने के लिए पानी में घास, घाना, जल्ली आदि मिलाया (शाहा०-१, पट०-४, अग०-५, चपा०, भाग०-१) । [गोव+ल् (प्रा०); मिला० गोवः (सं०)]

गोवार्—(सं०)—(१) पशुओं के खाने के बाद बचा हुआ व्यर्थ का (अस्वाद्य) घास-घुंटा आदि (पट०, अग०, सं०-पु०, अग०-५, पट०-४) । दे०—सधेर ।

(२) अनाथ निकाल लेने के बाद फलक का बंटल (उ०-५०) । पर्या०—सधेर (प०, उ०-५० सं०), निघास (चपा०, उ०-पु० सं०) निघेस (सं०-पु० सं०), झंटी (सं०-सं० चपा०, [गो+आर (सं०) <*गो+स्तार]

गोवना—(सं०) एक घास, जिसे पशु खाते हैं (पु० सं०) । [गो+घना < गोघन (?)]

गोन—(सं०)—(१) मवेशियों की पीठ पर दोनों के लिए रखा हुआ बोरा (शाहा०) । दे०—आहा । कहा०—“बैच न कूदे कूदे गोन, एह तमासे देखे कोन ।”=बैच नहीं कूदता है; उसकी पीठ पर रखा गोन कूदता है । इस तमासे को कोन देखे । अर्थात् मनष्य नहीं, मनष्य का वनमद उसके सर पर नाचता है । (२) दो स्त्रियों को बाँटकर बनाई गई रस्ती (मवा, सं०-५०) । दे०—गून । (३) वह पतली भजवृत्त बँदी हुई रस्ती, जिससे मक्काह नाव बाँधते हैं । (४) मोड़ । [<*गुप्प, <*गोप्प]



गोनवरा—(सं०) वह स्थान, जहाँ वर का वृक्षारण, राख, गोबर आदि फेंका जाता है (पु० चपा०, चपा०-१, पट०-४, अग०-५, सं०-५, भाग०-१) । [गोन+अउरा, गोन < गोमय । अउरा (सं०) वा < आवरै, कूट, पू]

गोनर—(सं०) घर के पास जमा की गई जाद की राशि (पु० सं०) । दे०—हेरी । पर्या०—गोनोर (पट०-४), गोनौरा (भाग०) । जोको—‘गोभारक गोबर दुहुदिस चिकन’ (सं०)=स्वाला की खाद-राशि दोनों ओर चिकनी होती है । [गोमय, गोमल]

गोनरीरा—(सं०) जाद, कूड़ा (सं०-पु० सं०) । दे०—आवर । [गोनर+आरा < गोमय, गोमल+कूट, आवरै, पू]

गोपालमोग—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का बाग (ववा) । [गोपाल+मोग]

गोपी—(सं०)—(१) एक प्रकार की पोली मिट्टी, जो चंदन के काम में लाई जाती है । (२) वह आम, जो चिपटा होकर समय के पूर्व पक जाता है

(ववा० (१) । गोपी (+ ववण), गोपि-चंदन (ने०)]

गोफा—(सं०)—(१) पीधों की गोपल (चना०-१) । (२) काठी के हुंरें में लगी हुई कोहे की टोपी । [<*मुम्फ वा <*मुस]

गोव—(सं०) घरे हुए धान के पीधे के स्थान में दूसरे पीधे की रोपनी (वर०-१) । [गोव < गोवन < गोमल < गर्म]

गोवर—(सं०)—(१) (सा०-१) । दे०—आवर । [<*गोमय, <*गोमल] (२) मायवा बैस का मल (बिहा०, भाग०) । [गोवर < *गोमल; टर्नर के मतानुसार < गोवैः (सं०-५०), गोवर, गोवैर (प्रा०), गोवर (ने०, कुमा०, अल०, सं०), गोवैर (को०), गोवर (हि०, प०), गौर (पु०) = बोहटे की चूर । गोवर (वरा०)=चूला गोबर]

गोबरधुमनी—(सं०)—(अग०-५, चपा०, पट०-४) दे०—गोबरविननी ।

गोबर पाँचे—(सं०) घावण वही पचनी की घेव-नाग की पूजा करने का एक उत्सव (पट०, पवा०) । पर्या०—गेहरा पाँचे (सं० भाग०) अग-पाँचे, अग०-५, पट०-४, लखपाँचे (चपा०) । टि०—इस दिन स्त्रियाँ गोबर से घरो के चारों ओर रेखा खींचती हैं और घरवालों के दोनों घरक चौकोर मंडल तथा छाप के मुँह का आकार बनाती हैं । [गोबर+पाँचे < गोबर-पंचमी, गोमल-पञ्चमी]

गोबरविननी—(सं०) अंतों या मंडान में मवेशियों के पीछे-पीछे चलकर गोबर बटोरनेवाली स्त्रियाँ (शाहा०-१, चपा०-२, अगव०) । पर्या०—गोबर चुननी (अग०-५, चपा०, पट०-४) । [गोबर+विननी । विननी < वीनल (बिहा०), विनना (हि०) < *विचिर् (‘व्यक्तीकरण’=स्पर्श करना, पृथक् करना, उठाना, बा० रूप-विभक्ति), विक्ते ।—वि+विचि (वैपा०)]

गोबरापल—(हि०)—(१) जिस खेत में अधिकता से जाद पड़ी है । दे०—सदीख खेत । (२) मल्ली में जाकर पशुओं का व्यापस में लड़ना-मिड़ना (अग०-५) । [गोबर+आपल (प्रा०) < गोमय, गोभ्र, गोबर-]

गोबरपद—(फि०) खेत में गोबर की सार देना (४८०-१) । [गोबर+आपल (४०) < गोमय, गोमल, गोबर]

गोबरपद—(सं०) पान में लगनेवाला एक रोग (१० नं०, १०) । [गोबर+ओरा (३०) < *उर्य (१)]

गोबरपद—(फि०) फसल के बीज के मरने पर उस स्थान पर पुनः दूसरा बीज रोपना । पर्या०—
ओमल (सं०), गोबर, ओमनी [गोबर+ल (३०) < गोबर+ओमल < *गर्म (संस्कृत), गम्य, गोम्य (३०)]

गोबरपद—(फि०) दे०—गोबर ।

गोभी—(सं०)—(१) ऊख की जड़ से निकलनेवाली सब्जी, जिससे गोबे को हानि पहुँचती है (३० नं०, १०) । दे०—गोभी । (२) फसल में लगने-वाला एक रोग, जो भीषण बायु गोभी के प्रभाव से होता है और जिससे गोबे में छोटे-छोटे अङ्गुर निकल आते हैं, जिस कारण वह कमजोर पड़ जाता है । (३) वह ऊख, जिसमें लवः अङ्गुर निकलता हो (अम्य, नं० ३, नं० ५, ४८०-४, ४८०-५) । दे०—गुजारी । (५) एक तरकारी, कोबी । [< *गुम्फ, * < गोजिहा]

गोभाय—(सं०)—(मग०-५) । दे०—गोभाय ।

गोयँठा—(सं०) जलावन के लिए गोबर का बनाया हुआ गोलाकार चिपटा या लंबा पिंड, जो घूप में सुखा किया जाता है (साहा०-१, ४८०-४, ४८०-५, नं०-२) । पर्या०—चिपरी (भाग०), गोइठा (अभा०) । [गोयँ+ठा < *गोमय+इष्ट, गो+विष्ठा]

गोयँठा—(सं०) दे०—गोहरा, गोयँठा ।

गोयँड़ा—(सं०)—(साहा०-१, अभा०) । दे०—गोयँड़ा । [गोयँ+ड़ा]

गोरंटी—(सं०) कुछ गोभी-उजली मिट्टी (४० भाग०) । दे०—गोरिबट्टा । [गोर+पटी < गोर+मिट्टी < *गौरमुत्तिका]

गोरखिया—(सं०)—(१) गोबों को चरानेवाला मनुष्य (मग०-५) । दे०—चरवाहा । (२) जोते जानेवाले खेत में हल में चलनेवाले बैलों



को लवकाश देने के लिए रखे गये अतिरिक्त बैलों को देखनेवाला कड़का । दे०—लववाहा । [गो+रखिया < *गोरखक]

गोरखिया—(सं०) वह बैल, जो ब बहुत लाल हो और न बहुत उजला (४८०-२) । [गोर+खिया < गोर+खीर (?)]

गोरखुल—(सं०) घान की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक काटेदार घास (१०) । दे०—बोखला । [गोरखुल]

गोरखारो—(सं०) पशुओं के बाने के बाएँ बचा हुआ मय्ये घास-भूसा आदि (४० भाग०) । दे०—खबर । [गोर+खारो < गोर+खारो < गो+स्तार]

गोरख—(फि०) किसी कच्चे फल को पकने के लिए भूसा, मल आदि में इस तरह रखना कि गर्मी के कारण वह पक जाय (अभा०-१, नं०-२) । [< *गु (निगरणे = गोबे रखना)]

गोरपौर—(सं०)—(१) ऊख के कोष्ठ के नबरीक का वह क्षेत्र, जिसमें बैल भूसा है (सा०) । पर्या०—पौर (अभा०, साहा०), पौर या पैरी (नं० ३, कहीं-कहीं, ४८०, मग०, ४० भाग०), बही (४८०), बड़हरा (४० नं०) । [गोर+पौर < गो+प्रलोही, गोक (रेकी) प्रलोही] । (२) वह स्थान, जहाँ लड़ा होकर पानी पटाने के समय रंग चलाया जाता है । पर्या०—पौर (१०), सैनार (४० भाग०) । [गोर+पौर]

गोरपौरी—(सं०) हँकी के पछुरे के नीचे का गड्ढा । पर्या०—गौरी (४० भाग०, ४८०-४, ४८०-५) । [गोर+पौरी < गोक+प्रलोही, प्रोष्ठ]

गोरवा—(सं०) वह बैल, जिसका रंग गुँजे की तरह लाल हो (४८०-१) । [गोर+वा < *गौर, < *गोल]

गोरस—(सं०) दूध, वही, जो आदि । [गोर+स < *गोरस (संस्कृत), गोरस (भा०, भा०), गुल्स (कश्मीर), गोरस (हि०), समोर, ने० कुना०), गोरस (अत०, नं०) = बही; गोरस (गु०), गोरस (मरा०)]

गोरा—(सं०)—कास्तकारी भूमि का एक प्रकार । दे०—इसम सीमा-निर्धारण के साध-साध एक निश्चित कर (राजस्व) दिया जाता है, किंतु

भूमि-परिमाण का निश्चित उत्पन्न नहीं मिलता है । सामान्य तौर से मौलिक प्रबंध-पत्र (Original Settlement) में बाँकी गई भूमि के अधिक होने पर भी उसके कर में कोई वृद्धि नहीं हो सकती है । वर्गीयार की स्वोक्ति के बिना खरीदी-बेची जा सकती है । [दे०]

गोरिबट्टा—(सं०) पौधों का जड़की निकली मिट्टी । पर्या०—गोरंटी (४० भाग०) । [गोर+इबट्टा < *गौर+मुत्तिका]

गोरिबट्टा—(सं०) ग्ला-बासि का एक संघ, जे बावः बोरे होते हैं । [संभ०—< *गौर वा < स्वार < म्नाल < *गोपाल]

गोरी केवाळ—(सं०) हल्के रंग की मिट्टी (४०-गु० नं०, ४८०-५) । [गोरी+केवाळ + गोरी केवाळ]

गोहरा—(सं०) (१) घूँटे आदि में धोरकर या ऊपर से गरमी पहुँचाकर पकाया हुआ आम आदि फल (४८०-२, अभा०-१) । पर्या०—पहुँचा (अभा०-१) । (२) उजाळ लेने के बाद घूप में आना सुखाया हुआ आम । [गोर+उठा < गोरल (सिहा०) < *गु, गोरना (हि०)]

गोहू—(सं०)—(१) बैल को छाँड़कर अन्य सभी घोषवाले पालतू मवेशी (४८०-१) । (२) पालतू मवेशी । पर्या०—गायगोहू, धूरहॉगर (४८०, मग०) । (३)—(अभा०) । दे०—गाय । [गो+हू (३०) < *गो, < *गोरूप (संस्कृत), गोरूप (भा०) = बैल, गुल्ह, गौह (रोमा०), गोरू (१० वहा०), गोरू (कुना०), गोरू (नं०), गोरू (अत०, नं०, को०), गोरू (हि०, सं०), गोरू (मरा०), गोरिया (सिहा०) = बैल । गौर (सिहा०) = बाप]

गोरुबारी—(सं०) बैल-बैल को खिलाने का काम (साहा०) । [गोरू+बारी < गो+रू (३०) वा < गोरूप+वार+ई (३०)]

गोरुटिका पयरोटी—(सं०) बारीक कंकड़ मिली हुई कुछ लाल मिट्टी । [गोरु+टिका+पयरोटी < गोर+ऑटिया+पयरोटी < *गौर+मुत्तिका+प्रस्त+बटी]

गोरैया—(सं०) एक कल्पित देवता, जो प्रायः गोहरी के देवता माने जाते हैं । कहीं-कहीं किसानों के घरवालों पर भी इनका पिंड बना होता है (४८०-४, मग०-५, अभा०) ।

गोल्बंर—(सं०) गोल-गोल आकार का । [गोल्बंर < गोल+बंर (३०)]

गोल्बंर कटुआ—(सं०) वह कटु, जिसका आकार गोल होता है (४८०-१) । [गोल्बंर + कटुआ]

गोल्बंर लोवा—(सं०) गोल आकार का नींबू (४८०-१) । [गोल्बंर + लोवा]

गोल्बंर—(सं०) ईंट आदि से बांधने के पहले कुएं का खोदा गया बड़ा गोल ढाँचा (मग०) । दे०—बड़ । [गोल्बंर < गोल]

गोल—(सं०)—(१) ईंट आदि से बांधने के पहले खोदे गये कुएं का बड़ा गोल ढाँचा (४०-५० साहा०) । दे०—बड़ । [गोल] (२) (हि०) पीलापन लिये हुए लाल रंग का पशु (४८०-१) । पर्या०—गोला (भाग०) । [< *गौर, (संभ०) < *गोला = (नैसर्गिक, यह धातु बैल की तरह लाल होती है)]

गोल—(सं०)—(१) शायों का समूह (सा०-१, मग०-५) । दे०—दोर । (२) पीलापन लिये हुए लाल रंग (अभा०-१, मग०-५, नं०-२) । (३)—(हि०) पीलापन लिये हुए लाल रंग का पशु (अभा०-१) । [गौर, गोल = (नैसर्गिक) = एक प्रकार की लाल धातु]

गोलकी—(सं०) काकी मिच (४८०-१, ४८०-५, मग०-५) । (२)—(हि०) गोल आकार की वस्तु । (३) लाल रंग की गाय आदि । [गोल्की+ई < गोल्क, मिच < मरीच]

गोल्गाल—(सं०) ईंट आदि से बांधने के पहले खोदे गये कुएं का बड़ा गोल ढाँचा (संभ० साहा०, ४८०-४, मग०-५) । दे०—बड़ । [गोल्+गाल (अनु० लब्ध) < गोल]

गोल्गाल—(सं०)—(१) लाल रंग का पशु (मग०-५) । दे०—गोल । (२) एक प्रकार का लड़ा साम, मोनिया साम । (मग०-५) । [गौर, गोल्गाल = (नैसर्गिक)]

गोलमंटा—(सं०) बैंगन का एक भेद, जो गोल होता है। दे०—बैंगन। [गोल + मंटा < गोल, मंटा (बैंगनी) वा < मृत्ताक]
 गोलमिरिच, गुलमिरिच—(सं०) एक प्रसिद्ध तीली गोल काफ़ी फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है; काफ़ी विष। दे०—मिरिच।
 पर्वा०—मरीच (वर०-१), मरिच (बं०)। [गोल + मिरिच < गोल मरीच]
 गोलरी—(सं०) रबी की धान का पका हुआ टुकड़ा, जो पीटने-छाड़ने पर भी बनाव के बंध के साथ रह जाता है। पर्वा०—गोलुआँ (बन०-५)। [देशी]
 गोला—(वि०)—(१) पीकापन किये हुए गोल रंग का मवेशी। दे०—गोश। [< *गौर < *गोला (संस्कृत=एक गोल रंग की प्रसिद्ध वस्तु)]
 (२) (सं०) एक प्रकार की कपास (मु०)। [गोला=काश रंग]
 गोलावा—(सं०)—(१) एक प्रकार का गान। इसे कुलफे का साथ भी कहते हैं (वर०, गया, ला०, पद०-१)। दे०—गुरफा। (२) किसानों में डोंगी बानेवाली गोल कील, जिसकी ऊपर-बाकी दोधी ऊमाकार और बीच होती है (वर०-५, बन०-५)। [देशी]
 गोली—(सं०)—(१) गुरु रखने का बड़ा बरतन, बड़ा फुंदा (मु०-१)। (२) पीकापन किये हुए गोल रंग की धान बादि सावा मवेशी। (३) बाल बादि रखने के लिए गोलाकार छोटी कोठी पर्या०—जबरा (बवा, बं०)। [गोल + ई < *गोलक]
 गोखौर—(सं०)—(१) ऊँच का रस उबालने और गुरु बनाने का घर (वाहा०)। दे०—गुडीर। [गोल + खौर < *गुड + वाट] (२) ऊँच वेरने तथा गुरु बनाने का स्थान (वाहा०)। दे०—कोस्तुभार।
 गोबार—(सं०) दे—ग्वार।
 गोसाका—(सं०)—(१) गीबों के रहने का मकान। दे०—गोबार। (२) गीबों के रहने का सार्वजनिक स्थान, वहाँ जपंध गान, बैठ जादि रहे जाते हैं। पिजरापोस। [गो + साका < *गोशाल]

गोहट—(सं०) बेंड़ को कोड़ना या छांटना (बं०, ला०-१)। आदि छांटक (पुहा०) = बेंड़ को छांटकर उसपर मिट्टी डालना, पुहा०—गोहटा फेंकना (पद०-५, बन०-५)। [देशी]
 गोहमा—(सं०) छांटकर बोवा जानेवाला एक प्रकार का धान (बं० भाष०)। [गोहम + आ (साध० प्र०) < *गोहम < *गोघूम]
 गोहसाठी—(सं०)—(१) गेंद का छंटा (वर०-५)। (२) बनाव निकालने के साथ बचा गेहूँ का छंटा। [गोह + माठी < गोहूम + माठी < गोघूम + मृत्तिका]
 गोहरा—(सं०) बकावन के लिए मोहर का बनाया हुआ लंबा टुकड़ा, जो धूप में सुखा लिया जाता है। पर्वा०—बपुआ, गोपठा, गोयेंडा (वर०-५)। [गो + हरा < हल्ल, हल्ल (हि० ल० ला०)]
 गोहरापल—(वि०) धूप में से निकालकर पशुओं को गाँव की मोर के चाना (बं० मु०)। दे०—निकासक। [गोहर + आपल (प्र०) < *गो + हर]
 गोहरौर—(सं०) मोठे का घेर (वाहा०-१)। दे०—नेठौर। [गोहरा + और (प्र०)]
 गोहारम—(सं०) वह जमीन, जिसमें राँव का लंबा पानी बहकर जाता है (वाहा०)। [गोह + आम (प्र०) वा आम < स्थान, गोह < गृह < *गृह < *गोष्ठ]
 गोहार—(सं०)—(१) मालगुमारी के बठिरिक्त किसानों के द्वारा जमींदार को समर्पित स्वदेवा। दे०—गोमान। (२) सम्मिश्र कप से हल्ला करना। (३) छड़ों के लिए हल्ला हुआ मनुष्यों का समूह (वर०-५, बन०-५)। (४) मार्गना करना। [देशी]
 गोहाक—(सं०) गीबों के रहने का मकान (प्र०, वर०-१, लं०-१)। दे०—गोहार। [गो + हाल < *गोशाल]
 गोहुस—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती बनाव, जो पीताम्ब (बादामी) बर्ण का होता है और जिसका बाटा जाया जाता है (बं०-५०, उ०-मु० लं०,

वर०-५, बन०-५)। दे०—गेहूँ। [गोघूम (संस्कृत), गोहूम (प्र०)]
 गोहूँ—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती बनाव, जो पीताम्ब (बादामी) बर्ण का होता है और जिसका बाटा जाया जाता है (बं०, वर०-५, बन०-५)। दे०—गेहूँ। [गोघूम]
 गोआँ—(सं०)—(१) गाँव का स्वागो, जमींदार (वाहा०)। दे०—विमिहार। (२) एक गाँव का रहनेवाला (बाव०, वर०)। [गो + आँ (प्र०) < आम; मिश्रा०—ग्रामस्थी]
 गोआँ—(सं०)—(१) एक प्रकार का लकीर गोंधुर, जो लसे की गाँव में बैठकर हजर-उजर बहला हुआ गान के पीबों को छाता चलाता है (बं० लं०, वर०, गया)। [गुच्छ (?)] (२) वह जमीन, जो बड़ी की चारा से कटकर पानी में फिर जाती है। दे०—बसना। (३) पीबों का छोटा बंडुर, जो बड़ से बचवा पीब के टूटने पर फिर वह से निकलता है। (४) पीबों की एक मूठा से छोटी परिचित राशि। [देशी]
 गोआँ—(सं०) वह जमीन, जो बड़ी की चारा से कटकर पानी में फिर जाती है। दे०—बसना। [देशी]
 गोआँ—(सं०) गाँव के राख की उपजाऊ मृत्ति (वर०-५, बन०-५)। दे०—गोएँडा; दे०—गोँदा]
 गोव—(सं०) पशुओं का धूप। पर्वा०—गोव, मूव (बं०), गोव (बं०)। [गो + ओव < *गो + मूत्र]
 गोव्री—(सं०) उचाइकर रोपने योग्य धान के पीबों। लेख=धान का रोपा समाय या प्रारंभ करना। —के नहाइल—खेत में रोपा होते ही यहाँ के पानी से बोझी का नहाना। [गुच्छ]
 गोठि—(सं०) सुखा हुआ मोहर (उ०-मु० लं०)। दे०—उमारा [< *गोष्ठ < *गोष्ठ]
 गोव—(सं०)—(१) दे०—गोव। [गो + व < *गो + मूत्र] (२) बचान में एक साथ बाँधकर पशुओं को बंधा जानेवाला चार (बवा, बं०)। दे०—बचव। (३) पशुओं का मरस (वर०-५, बन०-५, बं०)। [गो + ओव < गवाय]

गोवदेल—(पुहा०) पशुओं को खिलाना, खवत देना (वर०, गया, पद०-५, बन०-५)। दे०—साभी-पानी करण। [गोव + देल]
 गोवहा—(सं०)—(१) (वर०)। दे०—गवत। (२) गाँव या गवत देनेवाला व्यक्ति। (३) बरसाती कलक, जिसे पशुओं को खिलाते हैं। [गो + ओवहा < गवाय]
 गौर—(सं०)—(उ०-मु० लं०)। दे०—गोतर [गो]
 गौरिका—(सं०) एक प्रकार का कैला, जो मसोले काकार का और मोटा होता है (बं०-१)। [देशी]
 गौरिआ मासभोग—(सं०) एक बचतनी गान, जो छंदे और गोक पर बोझा-सा काका होता है (ला०-१)। [गौरिया + मासभोग]
 गौरिया—(सं०)—(१) पीना का एक भेद (ला०)। पर्वा०—रकषा (ला०)। (२) एक प्रकार का गीब (वर०-१)। (३) एक प्रकार का कैला (वर०-१, बं० तथा अन्य०)। [देशी, संम० < *गौर]
 गोरी—(सं०) चारा निकालने के लिए मिट्टी का बना और धूप में सुखा हुआ लंबा नाच (मवा)। दे०—बरण। [मिश्रा०—गोश, गोशी]
 गोरीसंकर—(सं०) एक शाक-विशेष। इसका पत्ता सूजायी और जास रंग का होता है (वर०-२)।
 गोसाट—(सं०) गीबों के रहने का मकान। पर्वा०—गोसाका, गोहार (प्र०), गैहरा (उ०-मु० लं०), वरकोज (बं०-५ वाहा०)। गोगाह (वर०, गया, ला०, वं०)। [गो + साट < *गोशाल]
 गोसिची—(वि०) वह बैठ, जिसके दोनों सोंग बीच में बाकर जुड़े हैं (बं०-५ लं०)। दे०—विण बुझा। [गो + सिच < *गो + मूत्र]
 ग्वार—(सं०)—(१) गाँव बरानेवाला व्यक्ति। (२) गरीर; एक जाति-विशेष। [व + ग्वार < गो + आर < गो + पाय, गोपाल (प्र०)]



गोसिची

घ

घेंघरी—(सं०) बने और उबार की राह में लपने वाला एक कोड़ा (साहा०)। पर्वो—घोंघरी, खरका (भाग०-१), घघरी, घघरा (व०-४)। घड़ला—(सं०) दे०—देला। घघरा लेंबो—(सं०) बड़ा-बड़ा, करीब एक-एक सेर तक का फलनेवाला बीजू। इसका छिलका मोटा होता है और भीतर में जाँक रहती है (व०-१)। पर्वो—गागर-नीमो, गागल नीमो (बंवा, साहा०)। [घघरा+लेंबो] घघरी—(सं०) हुँगा या बोकी के निचले भाग में डेलों को चर्च करने के लिए बनाया गया लंबा गड़ा (गद्दा, (२० भाग०, भाग०-१)। पर्वो—घाई (सं० २० भाग०, भाग०-१), लड्डा (२० भाग०), लड्डा (कहीं-कहीं), लड्डा (व०-४)। [देसी, मिला० घघर (संस्क०), घाकर (भा०)=चर्चर ध्वज, कोबका पका, बघारी] घटबड़—(सं०) जनावर जाति का घटना-बड़ना। मूल्य का उतार-बढ़ाव। [घट+बड़, घट-बड़ (हि०), घट-बड़ (सं०)] घटल—(सि०) घटना, कम होना। (सि०) बड़ा हुना। घटल-बहुल (वी०)—बड़ा-बड़ा, कम-बहुल। [घट+ल (प्र०) < घट < घट्ट (भा०) = गिरना, गाठ (बस्ती), गट्टन, गेट्ट (कल०) = नपवाँत; घट (५० गृहा०) = छोटा, छोड़ा, घटखो (कुमा०), घटनु (सं०), घटना (हि०), घटिना (बल०), घटा (बं०), घटखा (बं०), घटखा (ल०), घटखा (सि०), घटखु (गु०), घाटखो (बरा०)] घटही—(सं०) वह भाग, जो घाट पर रहती है। [घट+ही (प्र०) < घाट < घट्ट] (सि०) निम्न धोनी का, घटिया। [घट+ही (प्र०) < घट < घटल] घटावल—(सि०) घटल किया का प्र०। घटाना, कम करना। जनावर जाति का मूल्य घटाना। [घट+आवल (प्र०) < घट < घट्ट (भा०), घटाना (हि०), घटाउनु (सं०), घटखो (कुमा०), घटाइना (बल०), घटाउखा (बं०), घटाइखु (सि०), घटाइखु (गु०), घटाविखो (बरा०)]

घटिवा—(सि०) निम्न स्तर की बस्तु। निम्न धोनी का जनावर जाति। पर्वो—घटिहा। घटिहन—(सं०) (१) निम्न प्रकार का सस्ता जनावर; ऐसा कोई बस्तु, जो पीछे जाने पर अधिक पानी सोखता है और बीघरा के पच नहीं पाता। पर्वो—घटोहन। (२) चैरी अनाज (भा०-१)। [घट+इ+हन, घटना (हि०), हन < हन < कन्य, का घट+हन (प्र०)] घटिहा—(सि०) दे०—घटिया। घटोहन—(सं०) दे०—घटिहन। [घटो+हन] घड़ा—(सं०) दे०—वेला। [घड़ा < घट्ट, घट्टक (संस्क०), घट्टक (भा०), घडगा, घडग (भा०), घड़ा (हि०, बं०-बं०), घार (बल०)=होड़ी, घड़ी (सि०), लोडो (गु०), घडा (बरा०)] घड़ारी—(सं०) (१) धोने या धोने जाति की सुविधा के लिए बने हुए बगीच के छोटे-छोटे टुकड़े (बंवा)। पर्वो—गाड़ारी (भा०-१)। दे०—किवारी। [घट्टा, घट्ट] (२) कुएँ पर लगे बंभों की दो काबियों के बीच में पड़ी धुरी पर नाचने-वाली चिरमी (गु०)। पर्वो—गाड़ारी (२०-२०५ वं० वृ०), चिरमी (बंवा०, २०-२० वं०, व०-४, २०-४, २०-४), गद्दा (२०-४, २०-४, २०-४), घुरमी (व०), नकरा (बंवा०, २०-४, भाग०-१)। [घघर] घन—(सं०) (१) किसी चीज का घना रहना (बंवा०-१, भाग०-१)। पर्वो—घना (व०-४)। (२) बनी बोलाई। पर्वो—गाढ़, गाढ़ा, सँजोर (बं० उ०), घन बोझल (गृहा०)=जनावर का घना बोना। (३) लोहारों का बड़ा हथौड़ा। [घन (संस्क०), घन (भा०), घण (भा०), घन (हि०), घन् (सं०), घन (कव०)=लकड़ी का बल्का, घण (कुमा०), घण (बं०), घण (गु०), घण (बरा०)] घनगिरह—(सं०) बनी गिरहोंवाला बाँस (बंवा०-१, भाग०-१)। [घन+गिरह < घन+ग्रिह]



घनबहा—(सं०) कोलू में घेरने के लिए ऊँच लपानेवाला (२० भाग०, २० वृ०, भाग०-१) दे०—गोरेबाह। [घन+बहा < घानी+बहा (प्र०) बचवा < बह, घानी < घाटन (संस्क०), घायन (भा०), घान (=संस्क०)] घनबाह—(सं०) दे०—घनबहा (व०, गवा)। [घाटन (संस्क०), घायन (भा०), घान (=संस्क०)] घनबाहा—(सं०) ऊँच को घेरते समय उसे हाथ से ठकसानेवाला बाँस। कभी-कभी यह बाँस भी हाँकता है (२० भाग०, भाग०-१)। दे०—गोरबाह। [घन+बाहा < घानी+बहा < घानबाह] घनबोझल—(गृहा०) जनावर का घना बोना। दे०—घन। घमहौरी—(सं०) (१) एक प्रकार का कल (२०-१)। (२) गर्म के दिनों में बारीर में होने-वाला एक चर्म रोग, जिसमें घमड़े पर कुंमियाँ हो जाना करती हैं। [देसी, घमह+औरी < घ्रीष्मवटी (?)] घर—(सं०) (१) ऊँच या तेज घेरने के कोलू का वह कोबका भाग, जिसमें ऊँच पीसा जाता है (बंवा०)। दे०—घान। टि०—आमकल ऊँच का कोलू तेज-कोलू-जैसा नहीं होता है, लोह के तीन तिलिङ्गों का बना होता है। (२) समुद्र के निवास करने का स्थान। (३) कोठरी। [< गृह, घर (भा०, भा०), घर (हि०, वं०, ल०, बल०, लो०), घर (सि०), घर (गु०, बरा०)। < गृहोरो (भारो०)=भाग, गर्मी—ठनैर] घर करल—(गृहा०) (१) बल या किसी जीवार का बचने स्थान पर स्थिर हो जाना। (२) किसी बीमारी का बल नहीं छूटना (बंवा०-१)। (३) घर कर लेना, स्थिर होना। (४) किसी स्त्री का परपुरुष से स्वाहा कर लेना (बंवा०)। [घर+करल] घरौया—(सं०) घर में पैदा हुई तथा पाकी-पोती हुई गाव (साहा०-१, भाग०-१)। [घर+गैया] घरदुआह—(सं०) दे०—घरबार।

घरबार—(सं०) गृहस्थी, परिवार। [घर+बार < गृह+द्वार वा < गृह-परिवार, घरबार (हि०, वं०), घवोर (बं०), घरबार (सि०), घरवार (गु०), घरवार (बरा०)] घरबारी—(सं०) (१) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि (भा०-१)। दे०—गोर्दड़। (२) घर में रहनेवाला गृहस्थ, न कि सन्ध्याही। (३) घरबार का कार्य। [घर+बारी < गृहवाटिका (?), गृह+बार] घरमुँहा—(सि०) घर की ओर तेजी से जाने-वाला बैल, गाय जाति पशु (बंवा०-१, भाग०)। [घर+मुँहा < गृहमुख] घाँटी—(सं०) मवेशी की गर्दन में बाँधी जाने-वाली घंटी (बंवा०-१, भाग०-१)। [घाँटी < घाँटिका (संस्क०), घंटीआ (भा०) घंटी (हि०), घोंकें (बं०), घालो (कुमा०) घंटा (सं०), घंटा (ल०), घंटी (सि०) घाँट (बरा०)] घाई—(सं०) हुँगा या बोकी के निचले भाग में डेलों को चर्च करने के लिए बनाया गया लंबा गद्दा (२० भाग०, भाग०-१)। दे०—घघरी। [घाई < खाई < खाति (?)] घाघ—(सं०) (१) पूर्वकाल का प्रसिद्ध नविष्य-दर्शी कवि। (२) किसी कार्य में क्षति निपुण व्यक्ति। घाट—(सं०) (१) नदी, तालाब जाति का वह स्थान, जहाँ से समुद्र या जलनगर पंचक वा भाग जाति से पार करते हैं जवना जहाँ से व्यापार की वस्तुएँ पार की जाती हैं जवना स्नान करने तथा कपड़ा धोने का स्थान। (२) हल, हुँगा जाति में बनाया गया लड्डा (व०-४) (सि०) बज्ज में कम (बंवा०)। [घट्ट (संस्क०), घट्ट (भा०), गाठ (कव०), घाट (हि०, कुमा०, नं०, वं०, बल०, बं०, लो०), घाट (सि०), घाट (गु०, बरा०), संम०—< घाटा (संस्क०),—ठनैर]



घात—(सं०)—(१) चतुराई और दृष्ट कृष से किसी वस्तु की प्राप्ति का प्रयास। इसका प्रयोग वायुता, ईर्ष्या और कभी-कभी लज्जित स्पर्श में भी होता है। घात लगावला, घात में बैठल (मुहा०) = किसी वस्तु जवना सफलता की प्राप्ति के लिए अवसर की प्रतीक्षा करना, साक में बैठना। [घात]

घात में बैठल—(मुहा०) दे०—नाल।

घात लगावला—(मुहा०) दे०—घात।

घान, घानि—(सं०)। दे०—घानी।

घानी—(सं०)—(१) ऊँच की काटी हुई टुकड़ियों का वह परिमाण, जो कोल्लू में एक बार में घेरा जा सके। (२) कोल्लू, जता आदि में एक बार दिया जानेवाला अन्न का परिमाण (बिहा०, भाज०)। [घान, घाटन (संस्क०), घायण (भा०), घाली (हि०), घान् (ने०), घानी (बं०) = टोक का कोल्लू]

घाम—(सं०) (१) घूर। (२) शरीर के निकला हुआ पसीना (भाज०-१)। [काम < *कर्म]

घाम—(सं०) अनुप्य या पशु-पक्षी के शरीर में उत्पन्न रक्त जवना सरन के अन्तर्गत आता है। [< *घात (संस्क०), घात (बा०), घाम (भा०), घाम (हि०), घाट (ने०), घाट (कुमा०), घा (अस०, बं०, बो०), का, घाट (पं०), ग्राट (सि०), घा, घाय (पु०), घाय, घाय (भरा०)]

घास—(सं०) घुन। जेव में जनावर के जकाया स्वयं उत्पन्न होनेवाले दूसरे पीये। पर्या०—घासपास, घुमपाँवर (अ०-पं०), घू (बं०), घिरिण (पठ०-४, मय०-५)। [घास (संस्क०), घास (बा०, प्रा०), घास (हि०), घाँस (ने०), घास (रोमा०), घास (बरबो), गस (अस०), गस (३० गहा०), घास (कुमा०), घाँह (अस०), घास (बं०), घास (बो०), घाह (पं०, ल०), गाहु (सि०), कास (पु०), कास (भरा०)]

घिबड़ा—(सं०)—(बं०)। दे०—घिबरा, घिबरा।

घिबरा—(सं०) एक बरसाती तरकारी, जो कटा में फलती है और जाकार में लगी होती है (बं०)। पर्या०—घिबड़ा (बं०), नेनुआँ, तरोई, परोद, परोल (बं० बं०); वेरा (बर०)।

घिबड़ा-वा—(सं०) वह भाग जिसके आने में जी के जैसा स्वाद हो (पठ०-१)। पर्या०—

घिबड़ाही (अस०-५), घिबड़ा (बं०)। (बि०) जी-जैसा स्वादवाली वस्तु। [घिबड़ा + हवा (अ०) < *घृत]

घिबड़ाही—(सं०)—(अस०-५)। दे०—घिबड़ा।

घिबड़ाही कटुआ—(सं०) वह कटु, बिड़का स्वाद जी-जैसा हो और जो काफ़ी चिकना हो (पठ०-१, पठ०-४, मय०-५)। [घिबड़ा + ही (अ०) + कटुआ]

घिबड़ा—(सं०)—(बं०)। दे०—घिबड़ा।

घिबड़ा—(सं०) दे०—घिबरा, घेबड़ा।

घिबरा—(सं०)—(१) एक बरसाती तरकारी, जो कटा में फलती है और जाकार में लगी होती है (बं०)। पर्या०—घिबड़ा, घिबरा, घिबड़ा (बं०)।

घिबराघोई—(सं०) दे०—घेबड़ा।

घिरनी—(सं०) बंने की दो कामियों के बीच पड़ी घुरी पर नाचनेवाली बहारी (पठ०, बं०, पया, पठ०-५, मय०-५, पठ०-५, मय०-५)। दे०—बहारी। [ग्रहणी, घूर्णी, घूर्णि (?)]

घिबड़ा—(सं०) गुनागुना भाव का एक खेद (बर०-१)। [क्लि + ह्रा (वाप० अ०) < की < घृत]

घुँघनी—(सं०)—(१) मट्ट की जवपकी मूनी हुई बाज (बं० बं०)। दे०—होरा। (२) बना, मटर या किसी अन्न को मिगोर तथा तेल या घी में उककर बनाया गया भोज्य पदार्थ। [कूँ + कनी < *घृत + भीर्य < *घृ (अस०-५) (?)]

घुँडी—(सं०)—(१) लकड़ी का वह गहरा बरतन, जिसमें डोंकी के मूल से घान कूटा जाता है (पठ०)। दे०—बोहरी। (२) सेवेतियों के बोधन की रस्ती या कढ़े। (३) बोधन आदि गहनों में छोर पर बनी हुई धोल, नोकदार नाँद। [मिला०—कण्डिनी = बोधन, कण्डिमुकुलम्]

घुन्ना—(सं०) फल, जनावर आदि फलियों का गुच्छा। [घुच्छ]

घुनल—(सि०) किसी वस्तु में घुन लवना।

पर्या०—घुनाएल। (बि०) घुन लवा हुआ (बाह०-१, भाज०-१)। पर्या०—घुनाएल (बं०)। [घुन + ल (अ०) < घुन < घुच्छ]

घुनाएल—(सि०)—(बं०)। दे०—घुनल।

घुमाव—(सं०)—(१) लकड़वाह के मार्ग का मोड़ (बं०, अ० घु० बं०, भाज०-१)। दे०—मोराभी। (२) घेंव की नोक का मोड़। (३) हँवा या हल की धोल का मोड़। (४) रास्ते आदि का मोड़। [< *घूर्ण्य (संस्क०), घुम्म (भा०), घूमना (हि०)]

घुमावला—(सि०) घुमल सि० का अ०।

घुमाला, घाड़ी-हल के बीच आदि को एक तरह घुमाला। [< घूर्ण्य (= घूर्णयति ?) (संस्क०), घुम्म (भा०), घुमाना (हि०), घुमट्या (पं०), घुमाइया (सि०)]

घुरकट्टा—(सं०) ऊँच की लकड़ी फल को काटने-वाला (अ० भाज०)। दे०—जैनेड़ीहा। पर्या०—खुटकट्टा (पठ०-४, मय०-५, भाज०-१)। [घुर + कट्टा < घूर < कूर < कृत + कट्टा < *कृत]

घुरघुरा—(सं०)—(१) एक कीड़ा-विशेष। (२) एक बीमारी-विशेष (कंठमाका) (बाह०-१, पठ०-४, मय०-५, भाज०-१)। [घुर्रुर]

घुरनी—(सं०) बंने की दो कामियों के बीच की घुरी पर नाचनेवाली घिरनी (पठ०)। दे०—बहारी। [ग्रहणी, घूर्णि (?)]

घुरी—(सं०) दोषी की वह रस्ती, जिसके द्वारा प्रवाण रस्ती में ह में बाँधी जाती है (पठ०, मय०)। पर्या०—मेंहरी (पठ०, मय०, पठ०-४, मय०-५), डोड़ा (अ० भाज०)। [देशी, मिला०—ग्रन्थि > घुँडी]

घुरौड़ा—(सं०)—(पठ०-४)। दे०—घूर।

घुलल—(सि०)—(१) उरल पदार्थ में किसी दूसरी वस्तु का मिलना। (२) भाग आदि कलों का पककर गुलाबन होना। (बि०) मिला हुआ, घुला हुआ। [घुल + ल (अ०)]

घुसावला—(बि०) घुसल सि० का अ०—घुसाला, प्रवेश करना।

घुष्पा—(सं०) भूदों के ऊपर का केशों-जैसा गुच्छा (अ०-पं० बाह०)। दे०—जूवा।

पर्या०—मोष (भाज०-१), मोषा (बं०)। (बि०) वह व्यक्ति, जो दूसरे की बातें सुनकर भी जाया करता है, कुछ बोला नहीं (पठ०-४)।

घून—(सं०) अन्न और लकड़ी को जानेवाला एक कीड़ा। [घुय]

घूनल—(सि०) दे०—घुनल।

घूमल—(सि०) घूमना, चक्कर काटना, घाड़ी या हल के बीच को एक तरह घुमाला। [< *घूर्ण्य (?) , घुम्म (भा०), घूमना (हि०), घुम्मु (ने०), घुम्नो (कुमा०), घुमाइया (अस०), घुमा (बं०), घुमाइया (बो०), घुमट्या (पं०)]

घूर—(सं०)—(१) घूम को लोचकर बनाया गया छोटा गढ़ा, जिसमें लकड़ी, बाज, सूखा मोहर आदि को जलाकर बाज में प्राचीन लोग भाग लाते हैं। पर्या०—कोर, कौड़ (पं०), घुरौड़ा (पठ०-४)। कोको—“वज्र जव हय, घूर घुलाव”—किसी का घर जल रहा हो और वह घूर घुलावे, जवत् बड़ी विपत्ति के प्रति लापरवाह होकर छोटे जलर को घूर करने के लिए सचेष्टता दिखलाना। (२) जाव का गढ़ा (बिह०, भाज०)। पर्या०—जाह के गढ़ा, खादर के गढ़ा। (३) जाव (बं० अ०-पं०)। दे०—बावर। [कूट]

घूर काटल—(सि०) ऊँच काटना (अ० भाज०, भाज०-१)। दे०—छोकल। [घूर + काटल (अ०)]

घुरी—(सं०) कारखाने में गहों को काटकर छोटा करने का औजार (सा०-१)। पर्या०—बघरिया (पठ०-४)। [देशी]

घूस—(सं०) किसी वस्तु की प्राप्ति जवना कार्य की सफलता के लिए संबंध व्यक्ति को अनुचित और पर दिया जानेवाला द्रव्य। [गुह्याशय (हि० ल० ला०)]

घूसल—(सि०) घूसना, प्रवेश करना, किसी नुकीली चीज का बंदर जाना। [घूस + ल (अ०), घूस, घूसना (हि०), घुसला (पं०), घुस्तु (ने०), घुसवें (पु०), घुसले (भरा०)]

घेंव—(सं०)—(१) लक में उपजनेवाला एक प्रकार का पोषा, जिसका सबका बंडल गरीब लोग खाते हैं। (२) गरदन। [देशी]

चेङुमार—(सं०) एक प्रसिद्ध ओपवीय पोषा, मृगजुमारी। [चे+कुमार < कि+कुमार < *धृत्कुमारी (संस्कृत), कोकुमार (हि०)]
 चेखल—(फि०) चेना, बाड़ करना, किसी वस्तु की रखा के लिए बाँधें मोर बाड़ लगाया। [चे+ल (सं०) < चे, चेना (हि०), चेरीवा (सं०), चेरा (सं०), चे (सं०) = परिस्मिन्, चेखा (सं०), चेखा (हि०), चेखु (हि०), चेखु (सं०), घाखे (मरा०), संम० < *किति—टनेर]
 चेरा—(सं०) (१) नेवारी या बकावन भादि रखने के लिए बनाया हुआ चरा (सं०), नै० : दे०—चैरा। (२) पशुओं के रहने की जगह, गोठ। दे०—चैरा। (३) पशुओं की रोककर रखने के लिए बनाया गया चैरा (सं०)। दे०—चैरा। (४) पत्नी, नहर भादि में पानी को ऊपर उठाने के लिए धारा के इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (सं०-सं०, भाग०-१)। दे०—बाँध। (५) जंग, कुलवारी या बास के जंग को सुरक्षित रखने के लिए बाँध, लीबास भादि से बिरा स्थान (सं०-४, सग०-५)। [चेखल (बिहा०), चेना (हि०) < ग्रह < अग्र] (६) (वर०)। दे०—चिउरा।

चेरान—(सं०) (१) नेवारी या बकावन भादि के रखने के लिए बनाया हुआ चैरा (सं०, सं०, भाग०, सं०)। पशुओं—चोरान (साहा०), चेरा, डाठ (सं०, सं०), डाठ (सं०), पलठ (सं०)। (२) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया चैरा (सं०-सं०)। पशुओं—चेरानी (सं०-सं०), चारी, बेंद (सं०), चोरान (सं०-सं०), चेरा (सं०), छापा (सं०-सं०), हिराँव (सं०-सं०, सग०-५, सं०-२)। [अग्रय]
 चेरानी—(सं०) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया चैरा (सं०-सं०, भाग०-१)। दे०—चैरा। [अग्रय]

चेराबल—(फि०) चेरक फि० का प्रे०। चैरा, बाड़ लगाना। [चेरा+आल (सं०) < चे, चैरा (हि०), चैरा (सं०) चेरा (सं०)]
 चेवड़ा—(सं०) तरोई की भाति का एक फल, चिड़की तरहकारी बनती है। दे०—तरोई।

चैरा—(सं०) (१) वह बरतन, चिड़के के रस को उबालने के पहले इकट्ठा किया जाता है (सं०-सं०, सं०, भाग०-१)। दे०—नाद। (२) कुँरे से पानी निकालने या रखने के लिए मिट्टी का बना बड़ा (सं०-४, सग०-५, सं०-२)। दे०—चड़का। [< *घट, घटी, < *घटीर]



चैरा

चैरा—(सं०) (१) वह बरतन, चिड़के के रस को उबालने के पहले इकट्ठा किया जाता है (सं०-सं०, सं०, भाग०-१)। दे०—नाद। (२) कुँरे से पानी निकालने या रखने के लिए मिट्टी का बना बड़ा (सं०-४, सग०-५, सं०-२)। दे०—चड़का। [< *घट, घटी, < *घटीर]

चौघर—(सं०) माने की ओर निकलकर चूने हुए सींगोंवाला बैल (सं०, भाग०-२)। दे०—चौघा। [देखी—मिला—चौघ = मन्व-वर्ती बकवास (सं०-सं०, सं०-२), चूँचरा (हि०), < घुमटना < घूर्णन]

चौघरा—(सं०) (सं०-सं०, भाग०-२, सग०-५)। दे०—चौघर।

चौघरी—(सं०) बने की ओर आर की बाज में उबलनेवाला एक कीड़ा। दे०—चौघरी। [देखी, चौघा (हि०)]

चौघा—(सं०) (१) बर्षा से बचने के लिए ताड़ के पत्तों की बुनी हुई एक प्रकार की बरसाती, जो सिर से लटकती हुई होती है (बना, सग०-५) [चौघा < चौघा < घुमटना (?)] (२) जल-भाति का एक छोटा जलजन्तु, जिसके बाह्यकोष से पूरा बनता है (भाग०-१, सग०-५, सग०-५, सं०-२)। पशुओं—चौघा, चैठा, चैठा (सं०) (सं०-सं०)। दे०—चौघा। [चौघ (सं०-सं०, सं०-२)]

चौघाड़ी, चौघाटी—(सं०) छोटी भाति का चौघा।

चौघी—(सं०) बर्षा से कपड़ा बचाने के लिए जल के ऊपर के छोर को बांधकर बनाई गई बोझनी (सं०-सं०, भाग०-१, भाग०-१)। [चौघी < चौघी < घुमटना (?)]



चौघी

चौघवा—(सं०) माने की ओर निकलकर चूने हुए सींगोंवाला बैल (साहा०)। दे०—चौघा। [चौघ+वा (सं०)]

चौघा—(सं०) माने की ओर निकलकर चूने हुए सींगोंवाला बैल (सं०-सं०, सग०-५, भाग०-१)। पशुओं—चौघा (सं०-सं०), चौघवा (साहा०), चौघर (मरा०), चौघरा (सं०-सं०, सग०-५)। (२) (सं०) जल उठाने के लिए मिट्टी की बड़ी कटिया (साहा०)। [घुमटना]

चौघी—(सं०) माने की ओर मुँह सींगोंवाला बैल या दूसरा मवेशी (बिहा०, भाग०)। यह उत्तम मवेशी का माना जाता है। 'चौघी देखे कोहि पार, बँकी कोले बेंहि पार।'—मान = चौघी बैल को उस पार देखकर मशी के इसी पार से (पयों की) बँकी कोल देनी चाहिए। [देखी, मिला—कुच्छि (= घुमा हुआ)]

चौघल—(सं०) घुमाया, घुसेदना (सं०-१, सग०-५, सग०-५, सं०-२)। [< घुमटना (सं०-सं०), घुमटना (मती)]

चौघा—(सं०) (१) (सं०-सं०)। दे०—चौघा। (२) ताजरे का कईबार फूल (सं०-सं०, साहा०)। पशुओं—आवा (सं०-सं०), कुलको (सं०-सं०)। [घुमटना]

चौघल—(सं०) बँकीवाड़ी पर रखने के लिए बाँध, चौराई भादि का बना पर्दा (सं०-१, भाग०-१)। [चौघ+लौ < घुमटना]

चौघसा—(सं०) बाना-सहित भूसा (सं०-१)। [देखी]

चौघाड़ी—(सं०) एक प्रकार का घान (सं०-१)। [देखी]

चौघी—(सं०) (१) (सं०-सं०, भाग०-१, सग०-५) दे०—चौघी। पशुओं—चौघी (सं०-सं०, साहा०), घुकी (सं०-सं०, सग०-५)। [चौघ+

ई < चौघ < घुमटना] (२) ताड़ के पत्तों का जल भादि की बनी लकी बरसाती या बोझनी (सं०-१, भाग०-१)। [चौघ+ई]

चौघल—(सं०) चौघ के माने का एक धारा, जो ब. से मिलता-जुलता होता है (सं०-१)। पशुओं—जई। [चौघ+जई]

चौघसीन—(सं०) वह बैल, जिसका सीना चौघ की तरह हो (सं०-१, भाग०-१, सग०-५, सग०-५)। [चौघ+सीन < चौघा+सीना]

चौघा—(सं०) सवारी करने का एक प्रसिद्ध घोषाया मवेशी। [चौघा < चौघक (सं०-सं०), चौघक (सं०), चौघक (सं०), चौघा (हि०), नै०, सं०, सं०, सं०), चौघी (सं०), चौघी (सं०), चौघा (मरा०)]

चौराई—(सं०) मोट के मुँह के बने की ओर खुले रहने के लिए, धारदार कटियों से बनी हुई टेढ़ी लकड़ी। पशुओं—चौराई। [देखी]

चौरा—(सं०) (१) चौरा, मिला। जल भादि जल पदार्थ से किसी वस्तु को तरल करना। (२) लटिया भादि को रस्सी से बुनना। [चौर+ल (सं०) < चौर < *चौर (सं०-सं०), < *चौर < घुमटना (परिवर्तन), घुमटना (परिवर्तन), घुमटना (परिवर्तन)]

चौरान—(सं०) नेवारी या बकावन भादि रखने के लिए बनाया हुआ चैरा (साहा०, संता०)। दे०—चैरा। (२) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया चैरा (सं०-सं०)। दे०—चैरा। (३) घुसा भादि रखने के लिए बाँध (सं०-सं०) जैसा बड़ा टोकरा (सं०-सं०)। [अग्रय]

चौरानी—(सं०)। दे०—चौराई।

चौका—(सं०) एक प्रकार का साथ (सं०-१, सग०-५)। [देखी]

चौद—(सं०) (१) फलों का गुच्छा (सं०-१, भाग०-१, सग०-५, सग०-५, सं०-२)। (२) वह ताड़, जिसके साल-सर ताड़ी निकले। (३) केलों का गुच्छा। [गुच्छ]

चौर—(सं०) (१) वह ताड़ का पेड़, जिससे बरसात में ताड़ी निकलती है। [देखी, मिला—घुमटना (परिवर्तन)] (२) फलों का गुच्छा (सं०-१)। (३) केलों के फल का पूरा गुच्छा। [गुच्छ]



चौर

शुद्धि-पत्र

शुद्ध	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	१९	कंकरीली	ककड़ीली
१	१	२१	दे० अँकड़ाह (विहा० आज०) (विहा०, आज०)। दे०-अँकड़ाह	
१	२-१	२	हँकड़ी, (३) अनाज में पाया जानेवाला छोटा कंकड़।	अनाज में पाया जानेवाला छोटा कंकड़। पर्या०-हँकड़ी।
१	२	२७	[अँकर+हँ<अँकरा, दे०-अँकड़ा] [अँकर+हँ(प०)<अँकरा]	
१	१ १६ के बाद	अँकुर (सं०)-(भाग०-१) दे०-अँकुड़ा।
२	१ २६ के बाद	..	---	अँकुस (सं०) दे०-अँकुसी-२।
२	२	३७	अञ्जित् [वृषा	अञ्जित्। सूआ
३	१	१८	अँगवँग	अँगवँग
३	१	३२	अँगरवाह	अँगरवाह
३	१	३४	अँगार	अँगार
३	२	३२	[अमकड़ा-वा, (अँगोड़ी+हा)] [अँगोड़ी+हा<अमकड़ा+वाह]	
३	२	३७	द० मु०	द० मु०
४	१	१८	(चंग०-मुँ १०-१,	[चंग०-१, मुँ०-१,
४	२	११	दे०-अँजोरिया [अँजोरिया	[अँजोरिया,
५	२	२५	रेंडी	रेंडी।
५	२	३७	अँचकी रात्रि	अँचकी = रात्रि
५	२	३९	गंडादार	गंडादार।
५	२	२५	बैलो	बैलों
६	१	२९	ढार ढाल	ढार<ढाल
६	१	३९	उष	उष्
६	२	२	पट०-४)	पट०-४)।
६	२	१२	हँ>	हँ<
६	१	१६	छराही	पर्या०-छराही
६	२	२५	(भाग-१) दे०-पँजा	(भाग०-१)। दे०-पँजा।
७	१	३	करता है। (द०-पू० मै०)	करता है (द०-पू० मै०)।
७	१	२१	(अ+काल)	(अ+काल)
७	१	३६	उत्खनन उत्खनन	उत्खनन
७	२	४०	दे०-अखेना	दे०-अखेना

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	१	६	(आ०)	(आज०)
७	२	२	(द० में)	(द० में)
७	१	१४	(द० भाग०) दे०—फाजिल	(द० भाग०) । दे०—फाजिल ।
७	१	३५	(१)	(?)
७	१	३९	(१)	(?)
७	१	१९	साओल	साओल
७	१	२०	(प०), कनियौ	(प०), कमियई, कमिया
७	१	२१	लगुआजन	लगुआजन (सामा०) =
१०	१	११	अग्रबलि	अग्रबलि
१०	२	२९	वार ! अगोरनिहार	वार ।
११	१	२	अमोद	अमोद
११	१	१२	अमोद	अमोद
११	२	६	वर्तनः—	वर्तन
११	२	१५	(सं०)	(सं०)
११	२	२६	की	का
११	२	२६	(सं०—१)	—(सं०—१)
१२	१	१६	ओदपुष्प	ओदपुष्प
१२	१	२४	अद	अद
१२	१	२५	(अदाई) अदर्ध + हि	अद ई (= अदर्ध + हि)
१३	२	६	अच	[अच
१३	२	१०	अच	[अच
१४	२	१४	(चरवाहा)	(चर + वाहा)
१५	२	२९	कुटहा	कुटहा <
१६	१	२७	अम्बी [अ + वई	अम्बी । [अ + वई <
१६	१	२८	बीज, —	बीज <
१६	२	९	[अववाव]	[अववाव
१७	१	१२	(सं)	(सं)
१७	२	अठतीसवीं पंक्ति उनचालीसवीं पंक्ति के बाद रहेगी ।		
१९	१	३५	ऊर उपठा	ऊर उठा
१९	२	१४	[अ + गला]	[अ + लगा]
२०	२	१४	दानवाली	दानवाली
२२	२	१२	अंदाज	अंदाज
२२	२	१५	वृत्त	वृत्त

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२	२	२५	[मिला०	; मिला०
२३	१	३६	(बि०,	(बि०,
२३	२	२८	गौंझाही	गौंझाही
२३	२	३६	अर्धदि	अर्धदि
२४	२	१	(सं०)	(सं०)
२५	१	२८	लोको	लोको०
२६	१	२२	है : (पर० १)	है (पट०—१) ।
२६	१	३४	इकट	[इकट
२६	१	३५	(मो० बि० डि०) ।	(मो० बि० डि०)]
२६	१	३९	सरकंडा]	सरकंडा
२६	२	१७	(अ०) [(अ०)]
२७	१	७	(म०)	(म०),
२७	१	३७	(मा०)	(पा०)
२७	१	५	(मा०)	(पा०)
२८	१	१२	मिला०	मिला०
२८	१	१३	√कम	√कम्
३०	१	११] उच	[उच
३०	२	३२	गवेन	वेगन
३३	१	३	(सं०)	(सं०)
३६	२	२०	का—	का
३४	१	१४	हुआ (सं०);	हुआ । (सं०)
३४	१	३१	जानेवाली की	जानेवाली
३४	१	३२	धारावाहिक	की धारावाहिक
३५	१	१२	(?)],	(?)]
३५	२	१	मि०	मिज्ञा०
३७	१	१५	[केतारी	केतारी
४२	२	२१	(शा०—१)	(शा०—१)
४२	२	३४	अंकड ।	अंकड
४३	१	९	(सा०, शाहा०)	(सा०, शाहा०),
४३	२	१७	() सरकंडा,	(३) सरकंडा
४३	१	२३	धुंवा	धुंवा
४४	२	३२	कैता	[कैता
४४	२	३९	(संस्क०) ।	(संस्क०)]

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५	२	१२	तम्बाक	तम्बाकू
४५	२	३८	पट०-१-४	पट०-१, पट०-४,
४७	१	२८	गहरी	गहरा
४७	२	७	पर्या	पर्या०
४९	१	२४	करना)	करना
४९	१	२५	हुआ	हुआ)
४९	१	३०	संम०	संम०
५२	२	९	✓कृती कृती	✓कृती
५३	१	१	कदवा	[कदवा
५३	२	८	संम०	संम०
५४	२	छठी पंक्ति के बाद जोड़िए		कनखजूरा (सं०) दे०-कनगोबर ।
५४	२	२२	के	का
५४	२	३३	कनबोहा (संपा०)	कनबाहा (संपा०) ।
५५	१	१०	उ० वि०)	(उ० वि०)
५५	१	१५	दे—	दे०
५७	शीर्ष	टिप्पणी—	कपास—कपूसियत	कपास फुटल—कपूसियत
५७	२	२८	(गं उ०)	(गं उ०) ।
५८	१	६	खाली) । [खाली)—
५८	१	२५	कास्टेबुल्लो	कास्टेबुल्लो
५८	२	३	ममरियाल	कमरियाल
५८	१	१२	कमरिक	कमारिक
५८	२	३१	खार०,	खार०,
५८	२	३३	(मा०) गडा (हिं)	(मा०), गडा (हिं)
५८	२	४०	माथी	माथी
५९	१	८	कर्मन्	< कर्मन्
५९	१	१३	अजिता	अजित ।
५९	१	१८	अगवाक	अगवक
६०	२	२०	(विहा०)	(विहा०)
६०	२	२५	काला	काला ।
६१	२	१५	(भिगोना संम०	भिगोना संम०
६१	२	४०	(१)-(सं०)	(सं०)-(१)
६२	१	४०	किनारा]	किनारा
६२	२	१४-१५	आज०) [कराह+ई] (२)	आज०) । (२) दे०—कराह ।
			दे०-कराह (अल्पा०	[कराह+ई (अल्पा०

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३	१	२०	विहा०,	विहा०,
६४	१	३०	(सं०)	(सं०)
६५	१	२०	(सं०)	(सं०)
६६	२	१४	रात ।	रातल
६६	२	१६	टा	कंटा
६६	२	२५	खी	रस्सी
६६	२	३२	कि०)	(कि०)
६७	१	२९	घस	घास
६७	२	३४	(सं०)	(सं०)
६८	१	३	अथ	अंथ
६८	१	५	अत	अंत
६८	१	१३	हॉवने	हॉकने
६८	१	२२	जिरा	जिख
६८	१	३४	कदो	कादो
६८	२	१८	तल	ताल
६९	१	६	प-बाह	पकबाह
६९	१	२५	(शाहा०)	(शाहा०)
६९	१	३०	बन	बान
७२	२	९	कुँआ	कुँआ
७६	१	३१	(बं)	(बं०),
७७	१	२९	का	को
७७	२	३६	पं० खूह, (पं० कं०)	खूह (पं०, लं०),
८०	२	९	✓कविक, *✓कविका	< कविक, * < कविका
८०	२	२४	कवाला	केवाला
८१	१	९	का	की
८१	१	१२	क+सौर	के+सौर
८२	१	८	(बं)	(बं०),
८२	२	१	काहरी	कोहरी
८३	२	१६	(विहा०)	(विहा०),
८४	१	३३	(सं०)	(सं०)
८६	१	४	(सं०)	(सं०)
८६	२	३	(सं०)	(सं०)
८७	१	५	(सं०)	(सं०-१) ।

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८८	१	८	व्यक्तिमय	व्यक्तिगत
८८	१	१५	(मु०-१,	(मु०-१,
८९	१	२८	कौरा जाएल	कौरा जाएल
९२	२	३६	मेदि०	मेदि०
९३	२	२३	खन्ना	खत्ता
९३	२	२४	खाद	खाद
९४	१	३३	पा०),	पा०),
९५	२	२१	काडू	काडू
९६	२	३२	बाँस	बाँस
९७	१	१९	बैसन	बैसन
९७	१	२०	तम्बाकू	तम्बाकू]
९७	२	३०	का बन	का
१००	शीर्ष टिप्पणी—	खान्नी	खान्नी	खान्नी
१०१	१	२०	(पा०)	(पा०)
१०१	२	१५	विहा०	विहा०
१०२	२	१८	जमीन । चमड़ा	जमीन ।
१०२	२	१९	छे खल्ल	छे खल्ल
१०३	शीर्ष टिप्पणी—	खिचड़ी खिल्लत	खिचड़ी खिल्लत	खिचड़ी खिल्लत
१०३	"	२१	< सीद	< सीद
१०३	२	६	एक	एक
१०३	२	१९	कटल <	कटल
१०४	१	३५	खील	[खील
१०६	१	२५	आटे	आटे
१०७	१	१९	ठीका]	ठीका
१०७	२	२५	मिट्टी	मिट्टी
१०७	२	१६	,नः	पुनः
१०७	२	१९	(अंकुर)	(अंकुर)
१०८	१	१८	खेखला	खेखला
१०९	२	२१	(व०)	(व०)
१११	१	२५	१)	(१)
१११	१	२८	(मु०-१)	(मु०-१) ।
११२	१	६	मछली ।	मछली]
११२	२	७	लेने	लेने

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११२	२	२८	त्रि०	त्रि०
११२	२	२९	करवाना	करवाना ।
११३	१	१७	गँडा	गँडा
११३	१	२०	गँडादार	गँडादार
११४	१	४	काब ना	का बना
११४	१	२३	(शाहा०-१)	(शाहा०) ।
११५	१	३१	डिम्बी,	डिम्बी ।
११५	२	१९	बीचो	बीचो
११६	१	२	(मो० वि० डि०)	(मो० वि० डि०)]
११७	१	११	[(१)	(१)
११७	२	२	गोआ	पर्या०—गोआ
११७	२	४	पर्या०—गदही	गदही
११७	२	३५	गु०)	गु०)]
११८	१	६	(मुहा०)	(मुहा०) =
११८	१	३९	(मुहा०)	(मुहा०) =
११८	२	८	पन मिला०	मिला०—
११८	२	१०	या	।
११८	२	१६	चंग० । देव	(चंग०) । दे०
११८	२	२०	एल	एल
११९	१	२४	बीचो-बीच	बीचो-बीच
११९	१	३०	घास-फूस । गरदेल,	घास । गरदेल
११९	१	३२	गरदेल	गर निकालना ।
१२०	१	६	पू० मै०)	पू० मै०),
१२०	१	२२	(देशी)	(देशी)
१२०	१	२६	बीचो-बीच	बीचो-बीच
१२०	१	२८	गर	[गर
१२०	१	३१	(गर	[गर
१२०	१	३२	(आब०)	(आब०)]
१२०	२	२१	(नेपा०)	(नेपा०)]
१२०	२	२७	✓गल +	✓गल ।
१२०	२	२८	पिच् गालयलि	गालयलि
१२०	२	२८	गाले	गालेई,
१२१	१	२१	जमींदारी	जमींदारी

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२२	२	३८	(दं०),	(दं०),
१२४	१	२	(संख्य)	(संस्क०)
१२६	२	२५	(२) — (वि०)	(२) — दे० — गुमल (वि०)
१२६	२	२५	हुई (गुमल)	हुई ।
१२८	१	१५	✓ईर	✓ईर
१२८	१	२६	✓ईर	✓ईर
१२८	२	४	लगी हुई हुई	लगी हुई
१२८	२	१७	चूर्ण	चूर्ण]
१३१	२	११	(पं०)	(पं०)
१३१	२	३५	✓इ]	✓इ
१३३	१	२५	गोय	गोट
१३३	१	३१	(वि०)	(वि०) =
१३३	१	३२	(गु०)	(गु०) =
१३३	१	३३	(मरा०)	(मरा०) =
१३३	२	१९	गोटो	गोटो
१३३	२	३१	(१)	(?)
१३४	२	३३	जैसे	जैसे
१३५	२	१	(चं० (१) ।	(चं० — १) । [
१३५	२	१४	(हि०, पं०),	(हि०, पं०),
१३७	१	१५	केवाल +	केवाल <
१३८	२	४	फेंकना	फेंकल
१३९	१	३१	लेल =	— लेल =
१३९	२	१६	गौरिया	गौरिया
१४०	१	२६	घुटना	घटना
१४०	२	१५	लडो	घडो
१४२	१	२४	का,	पा,
१४२	२	२४	किव	चिव
१४२	२	२४	< की	< की
१४४	१	२	< कि	< पि
१४४	१	३	कीकुमार	पीकुमार
१४४	१	९	घरणो	घेरयो
१४४	१	९	किरति	चिरती
१४४	१	२७	पलठ	परबठ
१४४	१	३८	(वै०)	(वै०),

कृषि-कोश

सम्पादक

डॉ० विश्वनाथप्रसाद

अनुसन्धान-सहायक

श्री श्रुतिदेव शास्त्री : श्री राधावल्लभ शर्मा



बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना-४